নৈবেদ্য

নৈবেদ্য

मेरा निवेदन

उपन्यास की रचना समाज और उसके व्यक्ति की कथा से होती है। रीति-नीति और मनोभावना को व्यक्त करना ही कथा-साहित्य का तात्पर्य और माध्यम है, जिसमें सामाजिक, नैतिक और मानसिक क्रान्ति का दिग्दर्शन सहज में किया जा सकता है। इस प्रकार साहित्य के इस अंग का एक विशिष्ट महत्त्व है। यह लेखक के ज्ञान और अध्ययन पर निर्भर है कि वह अपनी कथा में किस प्रकार के चरित्र-चित्रण उपस्थित करता है। निःसन्देह, कथा के पात्रों में लेखक बोलता है, उसकी भावना बोलती है। यदि लेखक का हृदय उदार नहीं, उसका मानवीय पक्ष विस्तृत और अनुभूतिपूर्ण नहीं, समाज और सांस्कृतिक जीवन के प्रति भी उसकी आस्था नहीं, तो यह प्रायः निश्चित है कि उस लेखक द्वारा लिखी गई कथा की आत्मा प्रेरणामयी और जीवनयापिनी नहीं होगी; उसमें कोई अदृश्य कला हो तो हो, जीवन की ज्योति नहीं होगी।

प्रस्तुत रचना इसी दृष्टिकोण पर आधारित है। कला की बारीकी और मानवीय भावनाओं का सूक्ष्मतर विवेचन, भले ही पाठक को इस रचना में न दीख पड़े, परन्तु युग-युगों से यह मानव जिस अभिव्यक्ति और चेतना से पूरित बनकर, अपने इतिहास का निर्माण कर सका है, उसकी उन लीलाओं की पुनरावृत्ति इस उपन्यास में अवश्य दिखाई देगी। इस धरती पर चलने वाला इन्सान जिस आस्था में अपने को लगाता है, आदि-पुरुष के समान, समर्पण का भाव प्रदर्शित करता है, उन्हीं सब मान्यताओं में से एक-दो का चित्रण इस उपन्यास की कथा में किया गया है। अपने जीवन में लेखक ने जो कुछ समझा, देखा, उसीको लेकर हिन्दी पाठक के सम्मुख उपस्थित हो गया है। एक व्यक्ति के रूप में जैसा कुछ जनता-जनार्दन से प्राप्त हुआ, वही उसके चरणों में अर्पित कर दिया गया।

देर से, कदाचित् आदि काल से ही, मनुष्य के जीवन में नारी का विशिष्ट स्थान रहा है। वह आदमी का जीवन सँवारती है, पखारती है, प्रेरणा प्रदान करती है। परन्तु वही नारी जब स्वयं अपने अस्तित्व को खो बैठे, तो तब, शून्य से अधिक वह कुछ नहीं रह जाती। यही प्रस्तुत कथा की परिणति है।

उमेश प्रकाशन के संयोजक मेरी इस पुस्तक को अपने पाठकों के समक्ष रखने को प्रस्तुत हुए, इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ।

श्रीराम शर्मा 'राम'

ए० १७१, किदवई नगर,
नई दिल्ली-३

एक

शार्दूल के समान, दौड़ता हुआ जयन्त उस द्वार पर पहुँचा और सामने बिछी चारपाई को लक्ष्य कर, धीर भाव में बोला, "मैं तुझे मरने नहीं दूँगा, अंजना !"

अंजना चारपाई पर पड़ी थी। उसने सिर से पाँव तक चादर ओढ़ रखी थी। नीचे धरती पर उसकी वृद्धा माँ और पिता बैठे थे। माँ धरती की ओर निहार रही थी और पिता का मुँह ऊपर आकाश की ओर उठा हुआ था। वह वृद्ध जैसे अपनी बूढ़ी आँखों से नियति के उस विषम और रहस्य-भरे व्यापार को समझ लेना चाहता था कि जिसे वह अब तक अपनी बुद्धि के स्तर पर नहीं उतार पाया था। निस्सन्देह, वह अज्ञात पथिक के समान जीवन-पथ पर भटक गया था। किन्तु जब जयन्त वहाँ पहुँचा, उसका स्वर सुना, तो बलात् दोनों का मुँह उसकी ओर उठ गया। गाँव के पण्डित के लड़के को समझ लेना उस क्षण उन्हें भी आवश्यक प्रतीत हुआ। किन्तु वृद्ध कुछ कहे, उससे पूर्व ही, अंजना ने अपना मुँह खोल दिया और पास आये जयन्त की ओर देखकर निरे आहत हुए स्वर में कहा, "मेरा मरना अशुभ नहीं होगा, जयन्त बाबू ! धरती का बोझ हल्का होगा। मेरे माँ-बाप को भी···"

जयन्त ने कहा, "नहीं, नहीं, मरना किसी का शुभ नहीं।" वह बोला, "सुनती हो, इस धरती पर जो भी प्राणी आता है, वह नियति का प्रसाद है, भगवान की भावना से पूर्ण। सो, ऐसी ही एक तू है ! सच, अंजना ! तेरे मानस में भी भगवान है, भावना है।"

अंजना ने बात सुनी और ठण्डी साँस के साथ अपनी आँखें नीचे धरती पर बैठे अपने माता-पिता पर टिका दीं। उसकी आँखों में कातर याचना थी और उनका दुःखी जीवन मानो सम्मिश्रण की गंगा-यमुना उस धरती पर आ टिकी हो।

लेकिन जयन्त ने कहा, "बोल तो, तुझे क्या हुआ ! अभी घर प
सुना तो दौड़ आया। माँ ने बताया कि तू खेत में काम करते-करते बेहो
हो गई···तुझे उल्टी···"

अंजना के पिता का नाम चेतराम था। वह 'चेता' के नाम से प्रसि
था। उसी ने कहा, "पण्डितजी ! धूप की गर्मी, पेट खाली, फिर क
मेहनत···"

जयन्त ने कहा, "हाँ, हाँ, यही।" वह बोला, "यह अंजना भी मे
नत अधिक करती है। तभी तो ऐसी लगती है, इस भरी जवानी में
हाँ, कोई कह सकता है कि अंजना जवान है····यह तो यौवन की भ
दोपहरी में ही···"

साँस भरकर माँ ने कहा, "भैया, गरीब बाप की बेटी है···छो
जाति की ··अछूत···"

एकाएक क्षुब्ध बनकर जयन्त ने कहा, "कैसी बात करती हो, अंज
की माँ ! क्या इस आयु में भी भगवान को नहीं मानतीं ! गरीब बन
और अछूत जाति में पैदा होना कोई पाप नहीं। तुमने आज तक न
समझा, तो अब तो समझ लो, इस धरती पर कोई अछूत नहीं, को
अन्त्यज नहीं।"

अंजना का पिता मौन बैठा था। उसने घुटनों पर मुँह रख लि
था। तभी जयन्त की ओर अपना मुँह उठाया और साँस भरकर बोल
"यह तुम्हारी बात हो सकती है, गाँव की नहीं। पण्डितजी, हमारा क
ही नहीं छीना गया, जीने का अधिकार भी छीन लिया गया है।"

जयन्त अभी तक खड़ा था। अंजना ने माँ से कहा, "जयन्त ब
को बैठाओ, माँ ! चटाई बिछा दो।"

जयन्त ने कहा, "नहीं, मैं जाऊँगा। खाना खाने बैठा था कि च
आया। बोल अंजना, अब कैसी है तू।" चेतराम ने जो बात कही उस
वह क्षुब्ध बन गया। मानो उस वृद्ध ने एक ऐसे सत्य का उद्घोष कि
कि जिसे वह स्वयं मानता था। अतएव, वह स्वयं पीड़ित बन गया।

तभी अंजना ने कहा, "मैं ठीक हूँ। वैसे आज शाम को तुम्हा
पाठशाला में न जा सकूँगी।"

जयन्त ने कहा, "हाँ-हाँ, आज न आना। मैं आऊँगा।"

उसी समय जैसे अवसर पाकर चेता ने कहा, "न, पण्डितजी ! भला तुम क्यों कष्ट करो । ज़रूरत पड़ी तो मैं आ जाऊँगा ।"

अंजना की माँ ने कहा, "हाँ, भैया ! इस गाँव के लोग तो जो कुछ हैं, वह तो तुम जानते ही हो । एक की दस बात बनाते हैं । हम गरीब हैं न, कमज़ोर हैं, तो हमारी छोटी-सी आबरू की छीछालेदर करना भी लोग पसन्द करते हैं । और मैं जानती नहीं क्या कि तुम दयावश ही इस अंजना को चार अक्षरों का ज्ञान करा रहे हो । तुम तो पुण्य का काम करते हो, पर ये लोग · गाँव के आदमी···राम बचाये इनसे, सभी को चोर और कपटी मानते हैं ।" उसी समय अवसर पाकर चेता बोला, "उस दिन नरपत चौधरी कहता था कि गाँव की चौपाल पर बात चली कि गाँव के पण्डित का लड़का जयन्त और मेरी लड़की अंजना··हाँ, पण्डितजी ! मारते के हाथ पकड़े जा सकते हैं, कहते की जबान नहीं ! और फिर हमारी साख क्या !"

एकाएक क्षुब्ध बनकर, जयन्त ने कहा, "नरपत कहता था ? वह दुष्ट···"

साँस भरकर चेता ने कहा, "पण्डितजी ! गरीब के लिए सभी कुछ कहा जाता है । और फिर हम अछूत··जमाना भले ही बदल गया हो परन्तु हमको देखने वाली निगाहें क्या बदली हैं ? हमारी बहिन-बेटी की लाज भी लोग गलिहारे का कंकड़-पत्थर मानते हैं । उसे उछालना पसन्द करते हैं ।"

क्षीण स्वर में अंजना ने कहा, "बापू, तो जयन्त बाबू से क्या कहते हो ! इन्हें क्या सुनाते हो । सब जानते हैं ये ।"

जैसे आतुर बनकर, चेता ने कहा, "हाँ, हाँ, यह पण्डितजी भी जानते होंगे ।" उसने साँस भरी और कहा, "पर इनके पिता तो नहीं जानते । वह तो गाँव के पण्डित हैं, धर्म-गुरु हैं । कल जब उनके कानों में गाँव की यह बात पड़ेगी तो फिर वे क्या चुप रहेंगे । वे अपने घर में ही··भैया, तुम हम पर दया करो और उसका फल बुराई में पाओ, यह क्या हमारे लिए सुखकर रहेगा ?"

जयन्त ने कहा, "मैं इसकी चिन्ता नहीं करता कि कौन मुझे क्या समझता है । मुझे अपना रास्ता दिखाई देता है ।"

किन्तु व्यग्र भाव में चेता ने फिर कहा, "तुम तो आदमी हो, भैया पर यह अंजना तो···यह अछूत की लड़की···यह गरीब माँ-बाप की· कल इसका ब्याह भी करना है, पण्डितजी ! इसे दूसरे घर जाना है ।"

उस समय जयन्त का मुँह ऊपर आकाश की ओर उठा हुआ था चेता की बात सुनी तो उसने पूर्ववत् अवस्था में साँस छोड़कर कह "इस हीन भावना ने तुम्हें ऊपर नहीं उठने दिया। सदा कायर बना रखा।" वह झटका-सा खाकर चेता की ओर देखकर बोला, "चौध चेतराम, इस धरती पर अधिकार दिया नहीं जाता, लिया जाता है। तुम्हा ऐसे विचार रहे, तो निश्चय ही, तुम्हें जीवन का सूर्य नहीं दिखाई देगा मैंने जब सुना कि तुम्हारी अंजना एकाएक बीमार पड़ी है, बेहोश है तो दौ आया। पर मेरे कारण तुम लोक-चर्चा का विषय बनो, यह मैं भी पसन् नहीं करूँगा। अब नहीं आऊँगा," यह कहते हुए जयन्त लौट पड़ा।

यह देख अंजना ने एकाएक आतुर बनकर पुकारा, "जयन्तज जयन्त बाबू···"

किन्तु जयन्त रुका नहीं, वह चला गया।

यह देख, जैसे मर्माहत बनकर अंजना ने पिता की ओर देखकर कह "बापू, कुछ सोचकर तो बोला करो ! साधु-स्वभाव सरीखे जयन्त बा से तुम्हें ऐसे नहीं कहना था · इतना कठोर नहीं ··"

चेता ने कहा, "बेटी, यह बात कहनी ही थी। आज की तरह व कभी भी कटु लग सकती थी।"

माँ ने कहा, "बेटी, तू लड़की की जात है, जिस धरती पर चलत है उस पर अंगारे बिछे हैं। देख-बूझकर ही ज़िन्दगी के दिन पूरे कर पड़ते हैं।"

अंजना ने कहा, "माँ, मैं ऐसा नहीं मानती। यह तो सभी के लि है। इस धरती पर जो निर्धन, हीन और कायर हैं, वह सब यही समझ हैं। जयन्त बाबू ने मुझे एक दिन बताया था कि जाति की हीनता कारण लोग स्वतः ही अन्धकार की ओर बढ़े जाते हैं।"

माँ ने कहा, "बेटी, तू अभी अज्ञान है। ये बड़ी कौम वाले कित शैतान हैं, भला इसे तू ··"

चेता ने कहा, "मंगलू की लड़की का छह मास तक पता नहीं चल

था । और जब सुराग मिला, तो उसका बाप लड़की की ठण्डी लाश ही पा सका था।"

अंजना ने कहा, "बापू, पाप की बात मत सोचो। अन्धेरे की ओर मत देखो। प्रकाश को लक्ष्य करो। अपने को हीन मत मानो।"

चेता ने कहा, "बेटी, अब मैं बूढ़ा हूँ, दुर्बल हूँ।"

माँ ने कहा, "अंजना, अब हमारा साथ ही कितने दिन का है ! तुझे अपने पैरों पर ही ज़िन्दगी का रास्ता पार करना है।"

अंजना ने बात सुनी तो अपनी राय ज़ाहिर नहीं की। उसके मन में केवल एक बात थी कि वह अवसर पाये, तो जयन्त बाबू के पैरों में जा पड़े और क्षमा माँगकर कहे, मेरे बापू ने जो कुछ कहा उसका ध्यान न करना। किन्तु इतना करने में भी वह अशक्त थी। उसका दिल पहिले से अधिक धड़कने लगा था। उसकी आँखें स्वतः ही अन्धेरे से आच्छन्न हो गई थीं।

दो

गाँव के पण्डित ज्ञाननाथजी का जयन्तकुमार इकलौता पुत्र था। जिसको योग्य बनाने के लिए पण्डितजी ने शक्ति से अधिक पैसा व्यय किया। वह कुलीन परिवार का सम्भ्रान्त व्यक्ति बने, यही उनका ध्येय था। डाक्टरी परीक्षा का अन्तिम चरण पूरा करके जयन्त घर आ गया था। परीक्षाफल अभी नहीं निकला था। उसे भरोसा था कि वह पास हो जाएगा। फलस्वरूप, गाँव में आते ही उसने दो कार्य आरम्भ किये, एक वयस्कों को पढ़ाना और दूसरा लोगों का रोगोपचार करना। गाँव में ही जयन्त ने एक छोटा-सा दवाखाना खोल लिया था जहाँ प्रायः सभी को निःशुल्क दवा दी जाती। अवस्था यह थी कि वह बीमार को दवा तो निःशुल्क देता ही, यदि व्यय के लिए रोगी के पास पैसा न होता,

तो वह भी देने का प्रयत्न करता था। इस बात पर पिता-पुत्र में मतभेद था। जयन्त के पिता पण्डित ज्ञाननाथ पुत्र की इस परम्परा को देख प्रायः झल्लाते और पत्नी तथा पुत्र को सुनाते, पुत्र यदि ऐसा दानी रहा तो घर में कुछ नहीं रहेगा ··रोटियों का भी अभाव हो जाएगा ··

अनेक बार जयन्त की माँ कल्याणी पुत्र को समझाती। वह पुत्र के मन की उस परम्परा को रोकने का प्रयत्न करती। लेकिन उसी समय, उस परिवार के विवाद का प्रमुख विषय बन गई, वह अंजना! वह गाँव के चेता चमार की लड़की थी। कुछ वयस्क लड़कियों के साथ जब वह प्रथम दिन जयन्त के पास किताब के पहले शब्दों का पाठ लेने आई, तो तभी, जयन्त ने उसका नाम जानना चाहा। अंजना ने बताया, अंगूरी, जिसे सुन जयन्त ने तुरन्त कहा, नहीं नहीं, तुम्हारा नाम अंजना है और कुछ नहीं। लेकिन, उस प्रथम साक्षात्कार में, जयन्त को उस अंजना में जो अलौकिक प्रतिभा और माधुर्य की छाया दिखाई दी, निःसन्देह वह उसे अन्यत्र नहीं दिखाई दी। यद्यपि वह अभी तक किसी युवती के सम्पर्क में नहीं आया था, परन्तु नगर के जीवन में रहते हुए उसने अनेक वर्ष कालेज के पठन-पाठन में बिताये, तो वहाँ की छात्राओं को देख, वह सहज ही इस बात की तुलना करने में समर्थ था कि यह अंजना उन सभी में श्रेष्ठ है, सरल है, मन की साफ और भावनामयी है। उस प्रथम मिलन में, अंजना के बदन पर अच्छे और साफ वस्त्र नहीं थे, परन्तु उसके कौमार्य की वह अपूर्व शोभा, यौवन का तेज, निश्चय ही यह कहने में समर्थ था कि मेरा भी अस्तित्व है, एक महत्त्व है। किन्तु घूरे पर पड़े मोती के समान जब वह किसी की भी दृष्टि में नहीं आया, तो जैसे वह अपने-आप ही मलिन बनता जा रहा था। अंजना का मन स्वतः ही अपनी गरीबी और हीनता के कारण अस्तित्वहीन होने लगा था। उसमें उत्साह नहीं था। जैसे जीवन के प्रति अनुराग ही न हो। उसने बरबस ही अपने को पत्थर मान लिया था।

लेकिन उस दिन जब जयन्त दिन के खुले प्रकाश में अंजना के घर जाकर लौटा, तो अभी वह घर आकर अपने कमरे में चारपाई पर पड़ा ही था कि माँ उसके पास आई और बोली, "तू कहाँ गया था, जयन्त! क्या उस चमार की लड़की अंजना के घर?"

बात सुनी तो चकित भाव में जयन्त ने माँ की ओर देखा। उसी अवस्था में उसने कहा, "हाँ, गया तो था माँ !" उसे यह अच्छा नहीं लगा कि माँ ने उस अंजना को 'चमार की लड़की' से क्यों सम्बोधित किया।

किन्तु माँ अपने पुत्र से ऐसा साफ और रूखा उत्तर सुनने के लिए तत्पर नहीं थी। उसे ऐसी आशा भी नहीं थी। उसके मन में बात थी कि शायद यह जयन्त उससे अंजना के पास जाने की बात छुपा लेगा। लेकिन जब उसने ऐसा नहीं किया तो माँ ने तुरन्त ही कहा, "बेटा, तू अपने घर की प्रतिष्ठा नहीं देखता। अभी एक आदमी आया और तेरे पिताजी को बता गया कि तू उस चमार के घर गया था। बोल तो, क्या यह तेरे लिए शोभनीय था ?"

बात सुनते ही जयन्त झल्ला उठा, "तो इसमें हुआ क्या, माँ ! मैंने कौन-सा पाप किया ! अंजना अब मेरे लिए अपरिचित नहीं है, पढ़ने आती है। सामाजिक रूप से वह मुझसे आत्मीय सम्बन्ध बना चुकी है। सुना कि वह खेत पर काम करते हुए बेहोश हो गई, उसे उल्टी भी आई, सो, मुझे जाना ही था।"

फिर भी उस नारी ने अपने मन का रोष प्रकट नहीं किया। क्योंकि जवान लड़का था, नये युग का प्रतीक, इसलिए उसने नीतियुक्त बनकर कहा, "बेटा, गाँव में सौ दोस्त हैं, सौ दुश्मन। अब तू पढ़कर गाँव में आ गया है तो लोग जलते हैं, कुढ़ते हैं। लोग चर्चा करते हैं कि पण्डितजी का लड़का उस चमार की लड़की···"

एकाएक चारपाई से खड़े होते हुए जैसे चीखकर जयन्त बोला, "माँ, गाँव के आदमी मूर्ख हैं, बेहूदे हैं !"

किन्तु माँ ने अपने उस उद्धत बने और क्रोध में आये पुत्र की बात पर ध्यान नहीं दिया। उसने जयन्त की अन्तिम बात लेकर स्वयं रोष प्रगट किया, "तू चार अक्षर पढ़ गया है न, तो ऐसा सोचता है। और यह नहीं जानता कि गाँव के लोग भी आदमी की भलाई-बुराई की बात समझते हैं। यहाँ के लोग पत्थर नहीं हैं, पाप-पुण्य को मानते हैं। तू समझता है, शहरों में ही बुद्धिमान रहते हैं। यह न भूल, गाँवों से ही शहराती रोटी पाते हैं·· तन का कपड़ा···"

लेकिन जयन्त माँ की बात सुनने के लिए वहाँ खड़ा नहीं रहा। वह बाहर चल दिया। सचमुच, उसके मन में रोष था, प्राणों में कम्पन। मकान के दूसरे पार्श्व में उसका दवाखाना था, वह वहीं पहुँच गया। उस समय दिन ढल रहा था। धूप तेज़ थी। धरती गरम तवे के समान जल रही थी। उन दिनों देर से किसान आशामयी दृष्टि से आसमान की ओर ताक रहे थे, किन्तु वर्षा के आसार नहीं दीख रहे थे। कभी-कभी बादल आते भी तो चले जाते। जब जयन्त अपने दवाखाने में आकर बैठा तो वह चाहता था कि वहाँ अकेला रहे। वह समाज और व्यक्ति की हीनता पर खुले दिमाग़ से सोचना चाहता था। परन्तु उसी समय पड़ोसी मलखान वहाँ आया और जयन्त को कुर्सी पर बैठा देख ऊपर आसमान की ओर लक्ष्य करता हुआ एकाएक बोला, "बाबू, आज लगता है कि पानी आयेगा। वह देखो, दूर पश्चिम में एक काली बद-रिया उठी है, वह बढ़ती आ रही है। आज गर्मी तेज़ है। हवा भी बन्द है।"

जयन्त ने बात सुनी तो मौन बना रहा। वह अपनी राय नहीं दे सका। मानो आसमान से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। वह धरती का है, उसी से सम्बन्ध है। और धरती का आदमी त्रस्त है, दुःखी है, इसलिए कि आदमी ही आदमी का शत्रु · हाँ, कितने हथियारों से आदमी की हत्या की जाती है···जाति का हथियार···धर्म और पैसे का हथियार··· वह बेचारा चेता, वह उसकी बेटी अंजना···

किन्तु वह जवान, अल्हड़ और विनोदी स्वभाव का मलखान जयन्त को मौन और गम्भीर देख, फिर बोला, "क्यों, कोई बात है, मन में ?" उसने हाथ में ली हुई लाठी का कोंदा धरती पर मारा और कहने लगा, "ज़रूर तुम्हारे मन में भी वही बात है, जो मेरे मन में है। चौपाल में चली हुई बात तुम्हारे तक न आई हो, भला क्या बात। पर कहे देता हूँ ऐसे लोग कीड़े हैं, सड़े हुए नाबदान के ! कोई भला काम करे, तो लोग उसमें भी बदबू पाते हैं···निरे पाप के पुतले !"

किन्तु आश्चर्य, जयन्त तब भी चुपचाप बैठा रहा। वह बाहर खुले आकाश में उठते हुए रुई के समान आते-जाते बादलों को देखने लगा।

मलखान बोला, "भैया जयन्त, तुम ठीक कहते हो, यह मनुष्य दूसरों

का पाप ही देखना चाहता है, पुण्य नहीं। सचमुच, सड़ाँद में पड़ा कीड़ा दुर्गन्ध ही अनुभव करता है।"

एकाएक जयन्त ने कहा, "तो बात क्या इसमें आश्चर्य का विषय क्या रे, मलखान ! कुत्ते भौंकते हैं और हाथी चला जाता है। हमारे समाज की यही परम्परा है।"

मलखान ने कहा, "हमारे गाँव के लोग नासमझ हैं। ईर्ष्यालु हैं। चार आदमी जहाँ बैठें तो दूसरे की बुराई करते हैं। पर गाँव के आदमी तुम्हें भी कुछ कहेंगे, मैं ऐसा नहीं समझता था। अब तो देखता हूँ कि तुम्हारे चरित्र पर भी…"

आतुर स्वर में जयन्त ने कहा, "यह स्वाभाविक है, समाज समझता है कि अमुक व्यक्ति उसकी जमात का है। उस पर अपना अधिकार मानता है। व्यक्ति-विशेष को अपना कहने का अधिकार रखता है। गाँव का आदमी मुझे कुछ कहे तो मैं आपत्ति नहीं करता, लेकिन लोग जिस क्षुद्रता का प्रदर्शन करते हैं, उसे देखकर तो…"

मलखान ने कहा, "यही दुर्गुण है, भैया ! हमारे जीवन का यही पाप है।"

जयन्त ने बात सुनी तो तीखे भाव से मुस्करा दिया। वह प्रस्तुत बातचीत से छूटना चाहता था। क्योंकि जो क्षोभ उसके मानस में था, वह बाहर न आये, यही उसे रुचिकर था। लेकिन मलखान जैसे बहुत कुछ कहने और सुनने आया था, इसलिए जयन्त की ओर ध्यान न देकर बोला, "भैया, हमारा समाज पगड़ी उछालता है। इसी बात पर तो आज जगधर मेहतो से मेरा झगड़ा हो जाता। उसने दस आदमियों के बीच में कहा कि पण्डित का लड़का जयन्त उस चमार की लड़की अंजना से…"

मानो चंचल बनकर जयन्त ने उसकी बात रोक दी और कहा, "हाँ, हाँ, यह कोई नई बात नहीं रे, मलखान ! ऐसा भी कहा जाता है, सुना जाता है, देखा जाता है, बस !"

लेकिन इतनी देर में तो मलखान के चेहरे पर रोष झलक आया। वह क्षुब्ध बनकर बोला, "नहीं, नहीं, यह सब झूठ है, किसी और की बात हो तो मान ली जाए पर तुम्हारी नहीं। बोलो, मैंने क्या तुम्हें समझा-बूझा नहीं ?"

सहज भाव से जयन्त ने कहा, "सभी के समान, तुम्हारा भी भ्रम हो सकता है।"

अपने स्वर पर ज़ोर देकर मलखान ने कहा, "मैं उस जगधर मेहतो को पहचानता हूँ। वह बड़ा ईर्ष्यालु है। गाँव की धरती में विष के बीज बोता है। अब समझता है न कि पण्डितजी का लड़का सब ओर प्रतिष्ठा पाता है, गाँव के लड़कों में सबसे अधिक पढ़ा-लिखा है, तो यही···"

जयन्त बोला, "नहीं मलखान, जगधर मेहतो भी अच्छा आदमी है। उसने बात सुनी, तो कह दी। ऐसे ही कहा जाता है। इस समाज ने यही सीखा है।"

मलखान बोला, "ऐसे तो गाँव में कोई भी सुधार का काम नहीं होगा। जब आज तक लोगों की बुद्धि पर पर्दा पड़ा रहा तो आगे भी पड़ा रहेगा।"

सुनकर जयन्त ने साँस भरी और अपना मुँह फिर आकाश की ओर उठा दिया।

उसी समय मलखान कहने लगा, "जयन्त भैया, मैं अनपढ़ तो हूँ परन्तु इस संसार में क्या कुछ होता है, उसे समझ पाता हूँ। उस दिन जब मैं खेत पर पानी दे रहा था, तो तभी, चीख सुनी तो दूर पर देखा कि एक साँप मेंढ़क को मुँह में दबाये हुए था। मेंढ़क चीख रहा था। उस समय मेरे मन में तो आया कि हाथ में लिया हुआ फावड़ा उस साँप पर दे मारूँ, पर तभी मन में बात आई, इस धरती पर सभी साँप हैं, काटते हैं, फुँफकारते हैं।"

जयन्त ने कहा, "मलखान भाई, मनुष्य इसी प्रकार अपनी बुद्धि का उपयोग करता है। कहीं साँप बनता है, और कहीं देवता।"

मलखान बोला, "नहीं, साँप ही बनता है, यह आदमी!"

जयन्त सूखे भाव से मुस्करा दिया, "हाँ, शायद ऐसा ही है!"

मलखान ने कहा, "चेता चमार अपनी बिरादरी में गरीब ज़रूर है परन्तु सभी का सम्मान पाता है। ईमानदार समझा जाता है।"

जयन्त ने कहा, "सदा के समान आज भी तांबे और सोने में अन्तर करना ही होगा। सत्य क्या छिप सकेगा?"

मलखान बोला, "अनपढ़ और गँवार आदमी वह चेतराम ऊँची बात

करता है। भक्ति के भजन गाता है। नीतियाँ बताता है।"

उसी समय जयन्त के मन में बात आई कि रात-दिन वह चेता को नग्न-प्राय देख एक दिन उसे चादर देने लगा था, किन्तु उसने नहीं ली थी और कह दिया था कि किसी और को दे देना, मेरा गुज़ारा होता है, ज़िन्दगी का रास्ता कटता है। तभी जयन्त ने सहज ही अनुभव किया कि यह चेतराम जो ऊपर से निर्धन और दीन दिखाई देता है, मन से अमीर है; यह कोई अभाव अनुभव नहीं करता। यह सुखी है। अतएव, जब मलखान ने अपनी बात कही तो वह बोला, "निस्सन्देह, उस वृद्ध चेतराम में कुछ अलौकिक गुण हैं। वे अभूतपूर्व हैं। वह ऊपर से गरीब भले ही हो, पर मन से अमीर है।"

मलखान बोला, "एक दिन चेतराम ने मुझसे कहा था कि इस संसार में जो दुःख है, पीड़ा है, वह अपने मन से उपजती है, बाहर से नहीं। मनुष्य का शत्रु उसका मन है, कोई और नहीं।"

जयन्त ने कहा, "बूढ़ा ज्ञानवान है। उसका अन्तर्मन प्रकाश से आलोकित है। धैर्य और शीलता चेतराम के प्रधान गुण हैं।"

उसी समय एक बालिका दौड़ी हुई वहाँ आई और बोली, "मेरी माँ को तेज़ बुखार है। कराह रही है।"

जयन्त उस बालिका को नहीं जानता था। किन्तु मलखान ने बताया कि यह तो जगधर मेहतो की लड़की है। उसने जयन्त की ओर देखकर कहा, "तो जाओगे, उसके घर ?"

जयन्त खड़ा हो गया और बोला, "हाँ, हाँ, क्यों नहीं ! जब मैं रोग का उपचार करता हूँ तो मुझे रोगी के पास जाना ही चाहिए।"

मलखान ने कहा, "किन्तु वह जगधर तो ··"

जयन्त ने बीच में मलखान की बात रोक दी और कहा, "न, न, ऐसी बात मत कहो, मलखानसिंह !" उसने लड़की से पूछा, "तेरी माँ को उल्टी तो नहीं हुई ?"

लड़की ने कहा, "उल्टी हुई है।"

जयन्त बोला, "रात की बासी रोटी खाई होगी, धूप में गई होगी, नादान !"

मलखान बोला, "भैया, रात की बासी रोटी भी मिल जाये तो

गनीमत है। मैं जानता हूँ, मेहतो की हालत अच्छी नहीं है।"

जयन्त ने कुछ दवा जेब में डाल ली और बोला, "सभी की यही अवस्था है। यह कंगाल देश है। इस धरती का इन्सान दुर्बल है, पीड़ित है। इसे दया चाहिए, इन्सान की ममता।"

मलखान ने कहा, "पर यह कोई नहीं मानता। साँप के समान उसे दूध दो, तो बदले में काटता है। हाँ, भैया, इन्सान ज़हरीला है, जानवर है।"

जयन्त ने बात सुनी तो कड़वेभाव से मुस्कराया। वह लड़की के साथ चल दिया। मलखान भी अपने घर को मुड़ गया। जाते-जाते उसने कहा, "भैया जयन्त, मुझे तुम्हारी यही बात अच्छी लगती है। तुम्हारा दुश्मन भी मित्र है।"

जयन्त ने बात सुनी तो हँसकर आगे बढ़ गया। कुछ देर में वह जगधर मेहतो के घर पहुँच गया। देखा कि जगधर बीमार पत्नी के पास बैठा है। वह उदास है। उसकी बड़ी लड़की और लड़का भी माँ के पास खड़े हैं।

तभी बीमार की नब्ज़ और छाती देखकर जयन्त ने उसके ऊपर पड़ा कपड़ा हटवा दिया और कहा, "बुखार की गर्मी में इतने कपड़े की ज़रूरत नहीं। उसने दवाई दी और कहा, बुखार तेज़ है, चिन्ता की कोई बात नहीं, शाम तक उतर जायेगा।"

किन्तु जगधर तब भी सिर झुकाये बैठा था। वह जैसे मन में कुछ लिए था। यह देख जयन्त बोला, "मेहतो, तुम उदास हो। उठो, जाओ बाहर बैठो। यह दवा लो। शाम को बताना। मैं फिर आऊँगा।"

जगधर ने कहा, "भैया, इस दवा का पैसा?"

"ओह, तुम भी अजीब आदमी हो, जगधर मेहतो! मैं गाँव का हूँ, तुम्हारी भी गोद में खेला हूँ, तो क्या दवा के पैसे लेकर मैं शोभा पाऊँगा? और जानते हो कि मैं किसी से कुछ नहीं लेता।"

उसी समय कराहकर जगधर की पत्नी ने कहा, "बेटा, तेरा राम भला करेगा।"

जयन्त ने कहा, "हाँ, ताई! मुझे तुम्हारा आशीष चाहिए। मेरे लिए यही सबसे बड़ा धन है। मुझे जगधर मेहतो का आशीर्वाद चाहिए।

वह मेरे ताऊ हैं, बुजुर्ग हैं। तुम्हारी सेवा करना मेरा धर्म है।"

मेहतो ने कहा, "जयन्त भैया, मैं गँवार हूँ, जानवर हूँ। मैं भला किस योग्य हूँ!"

कठिन स्वर से जयन्त बोला, "नहीं, नहीं, तुम समर्थ हो। तुम्हारे हृदय में भी भगवान बोलता है। वह पाप-पुण्य को समझता है।" यह कहते हुए जयन्त ने मेहतो की बड़ी लड़की को देखा और कहा, "अच्छा, यह पारो, अरे, अब तो यह बड़ी हो गई। बुजुर्ग बन गई। कभी हम दोनों साथ खेलते थे। आपस में लड़ते थे।"

पारो ने कहा, "हाँ, जयन्त भैया, हम साथ खेलते थे। तालाब पर मिट्टी के घरोंदे बनाते थे।"

मेहतो ने कहा, "जयन्त भैया, यह पारो अगर बच्ची होती, तो ठीक था। या भगवान ही इसे उठा लेता, तो शुभ था। इसने औरत की ज़िन्दगी क्या पाई, इसका सभी कुछ नष्ट हो गया। वर्ष भर हुआ कि यह विधवा···"

"अरे, ऐसा हो गया, इस पारो के साथ! राम-राम!" तभी जयन्त ने देखा कि उस पारो के हाथ सूने हैं। उनमें काँच की चूड़ियाँ नहीं हैं।

मेहतो ने कहा, "भैया, यह पारो ज़िन्दगी की भरी दोपहरी में तो लुटी ही, इसके ससुराल वाले भी इसे डायन समझने लगे। वह कहते हैं, पारो शुभ नहीं है। इसी ने हमारा लड़का डस लिया है। अब वह इसे अपने घर रखने के लिए भी तैयार नहीं हैं।"

उसी समय पारो की माँ ने कहा, "मुझे पानी दो! यह पसीना···"

जयन्त ने कहा, "पसीना पोंछ दो। अब बुखार उतर जायेगा।" उसने साँस भरी और कहा, "भगवान ने इस पारो के साथ अच्छा नहीं किया। इसका तो जीवन बिगड़ गया।"

मेहतो ने कहा, "जाने किस जन्म का फल भोग रही है, यह पारो।"

जयन्त लौट पड़ा। उस मकान से निकल वह तेज़ी के साथ चलने लगा और जब वह अपने स्थान पर पहुँचा, तो देखा, वहाँ देर से अंजना का पिता चेतराम बैठा हुआ था। वह उदास और उनमन बना हुआ था। उसे देखते ही जयन्त उसकी ओर बढ़ गया।

तीन

पण्डित ज्ञाननाथ और उसकी पत्नी कल्याणी के समक्ष उन दिनों केवल एक ही समस्या थी जो कि उन्हें रात-दिन परेशान करती। वह पुत्र का विवाह करना चाहते थे। यद्यपि पण्डितजी विवाह के विषय में अपना अलग मत रखते थे। वह विवाह को गौण मानते थे। परन्तु कल्याणी का विचार था कि लड़का जवान हो गया है, अब पढ़-लिख भी गया है, इसलिए विवाह होना चाहिए। इस विषय में उसका एक निजी स्वार्थ भी था। वह अब वृद्ध हो चली थी। पुत्र की बहू आये, घर सम्भाले, यही उसकी आकांक्षा थी। पड़ोस में नन्दी की माँ जब अपने पोते को लेकर कल्याणी के पास आकर बैठती तो उस फूल सरीखे खिलते बच्चे को देख, बरबस ही, उसके मन में बात पैदा होती कि क्या ही अच्छा होता कि वह भी अपना पोता खिलाती! उसे गोद में लेकर बैठती और अपना मन बहलाती!

किन्तु समस्या यह थी कि लड़की वाले आते, पण्डित ज्ञाननाथ से बात करते और लौट जाते। कदाचित् इसका एक कारण तो यह था कि पण्डितजी अपने पुत्र का सम्बन्ध जिस प्रकार के घर में करना चाहते थे वह नहीं मिल रहा था। उनकी आकांक्षा थी कि जब उन्होंने अपने जीवन-भर की कमाई पुत्र को पढ़ाने और योग्य बनाने में लगा दी है, तो वह राशि पुत्र के विवाह में प्राप्त होनी चाहिए। उनके विचार में जयन्त की बहू सुशील, सुशिक्षित और सुन्दर तो हो ही, किसी बड़े घर की भी होनी चाहिए। किन्तु इन गुणों के साथ पण्डितजी को पैसा भी चाहिए और दहेज भी चाहिए। लेकिन ऐसा संयोग मिल नहीं रहा था। फलस्वरूप, सर्वगुणसम्पन्न बहू को प्राप्त करना सुगम नहीं हो रहा था।

लेकिन उस दिन जब गाँव के चेता चमार के घर जयन्त के जाने की बात गाँव में फैली, वह चर्चा पण्डितजी और कल्याणी के कानों में भी पड़ी, तो तब निश्चय ही, पण्डितजी का मन चिन्ता से व्यग्र हो उठा कि लड़के का विवाह कर ही देना चाहिए। सदा की भाँति यह बात उस दिन भी स्वयं कल्याणी ने उठाई। उसने कहा, "तुम जिस रुपये-पैसे और दहेज की बात लेते हो, वह तुम्हें नहीं मिलेगा। पैसे वाला कंगाल,

भिखारी के घर में अपनी लड़की नहीं देगा। उसने पण्डितजी के मर्म-स्थल पर चोट की, "अपनी आदत के अनुसार यहाँ भी लालच करोगे, तो घर बिगड़ जाएगा। पुरखों की प्रतिष्ठा जाएगी···यह पाला-पोसा लड़का···"

बात पण्डितजी को चुभ गई। जैसे उनके सम्मान पर चोट की गई हो। तुरन्त ही उनकी भवें तन गईं, माथे में बल पड़ गये। तभी उन्होंने अपनी बात कही, "कल्याणी, इस जयन्त को योग्य बनाने के लिए मैंने सभी-कुछ किया है। भगवान से भी यही प्रार्थना की। इस पर भी लड़का कुमार्गी बने तो मैं कुछ नहीं कर सकूँगा। मैं उसे त्याग दूँगा। मैं ब्राह्मण हूँ, लड़के के लिए चमार से सम्बन्ध नहीं करूँगा।" वह बोले, "मैं यह भी समझता हूँ कि गरीब घर की लड़की योग्य नहीं होगी और न सुशिक्षित ही।"

कल्याणी बोली, "घर के लिए बहू चाहिए, किसी दफ़्तर में जाकर क्लर्की करनेवाली नहीं।"

इतनी बात सुनी तो पण्डित ज्ञाननाथ चिढ़ गये। वह बोले, "तुम्हें इतनी समझ नहीं? पढ़ी-लिखी होतीं तो जानतीं कि आज के युग में इसकी क्या विशेषता है। और तो और, तुम्हारा लड़का भी ऐसी लड़की पसन्द नहीं करेगा। उसे भी योग्य पत्नी चाहिए, घर में घूँघट काढ़कर बैठने वाली गुड़िया नहीं।"

कल्याणी ने कहा, "मैं अपने जयन्त को जानती हूँ। मैंने उसे पैदा किया है, उसे समझती हूँ।"

इतनी बात सुनकर पण्डित ज्ञाननाथ सूखे भाव से हँस दिये। बोल नहीं पाये। यह स्पष्ट था कि वह पत्नी की बात से सहमत नहीं हुए।

किन्तु कल्याणी ने फिर तीर छोड़ा, "मैं जानती हूँ, तुम्हें पैसा चाहिए।"

रुक्षभाव से पण्डितजी ने कहा, "यह आकांक्षा निरर्थक नहीं है, सारवान है। जयन्त को अब डाक्टरी की दुकान करनी है। जितनी बड़ी और सजी हुई दुकान होगी, वैसे ही ग्राहक आकर्षित होंगे। और इसके लिए पैसा चाहिए, इस दुनिया में जीवन बिताने और प्रतिष्ठा के हेतु धनरूपी सम्बल चाहिए, कल्याणी!"

इतना सुन-पाकर कल्याणी बरबस चिढ़ गई। वह बोली, "तो तुमने लड़के को इसीलिए पढ़ाया कि दूसरे के लिए बोझ बने! दूसरे के पैसे पर अपनी ज़िन्दगी चलाये···राम-राम! यही पढ़ा है तुमने अपनी धर्म-पुस्तकों में! इस पण्डिताई में यही समझा है! सुनो, मैं कहे देती हूँ, लड़का अपने पैरों पर चला है और चलेगा। किसी बड़े घर की बेटी से विवाह करके उसका दास नहीं बनेगा। डाक्टरी करे या फकीरगीरी सब-कुछ अपनी शक्ति पर कर सकेगा। मेरा लड़का किसी पैसे वाले की लड़की का गुलाम नहीं बनेगा।"

बात सुनते ही पण्डित ज्ञाननाथ ने निर्मम और कठोर भाव से पत्नी की ओर देखा। जैसे उन्होंने सहज ही समझ लिया कि यह कल्याणी माँ तो बन गई परन्तु उसके योग्य नहीं। और वही उनको मूर्ख बताती है उनके विचार और जीवन को व्यर्थ कहती है। इतना समझ उन्होंने चाहा कि कल्याणी से कह दें कि तुम माँ तो बनीं पर उसकी वास्तविक स्थिति नहीं पहचानी। माँ के जीवन की दार्शनिकता नहीं समझी बच्चा किस प्रकार योग्य बने, ऐसी समझ नहीं आई। और मैंने पिता बनकर उस उत्तरदायित्व को निभाया है। इस घर और पुत्र के लिए मुझे और क्या करना है, यह समझना मेरा काम है, तुम्हारा नहीं। किन्तु पण्डितजी ने मन में आई बात कल्याणी से नहीं कही। उन्होंने नया विवाद खड़ा करना पसन्द नहीं किया। क्योंकि जो समस्या उनके मन में थी वह भी कम घिनौनी और हल्की नहीं थी। उस दिन गाँव के कई व्यक्तियों ने उनके मुँह पर कह दिया था, पण्डितजी, चेत जाओ तो अच्छा है नहीं तो आप जानते हैं, जवानी में आदमी सभी कुछ कर गुज़रता है। वह चेता की लड़की अंजना भी जवान है, सुन्दर है। हाँ, आग फूंस का मेल होगा तो घर ही फुंकेगा, सभी कुछ भस्म हो जायगा उसमें तुम्हारे पूजा-पोथी के पन्ने भी जल जाएँगे।

निस्सन्देह, पण्डित ज्ञाननाथ के मनःप्रदेश में लोगों से सुनी बात आँधी की तरह उठ रही थी। वह उन्हें अशान्त बना रही थी। कल्याणी जो कुछ कह रही थी वह बात भी सत्य से दूर नहीं थी क्योंकि विवाह और धन एक परिभाषा में नहीं आते। यदि पुत्र के लिए सुन्दर और चतुर पत्नी चाहिए तो फिर यह आवश्यक नहीं कि धन उसकी पूर्ति करेगा

यह भी हो सकता है कि धन आ जाए और पत्नी कुरूप, कुलक्षिणी हो। इसलिए कल्याणी से मन को चुभनेवाली बात सुनकर भी उन्होंने इस तर्क को सर्वथा मान्य समझा कि पुत्र का विवाह होना चाहिए। फलस्वरूप, उन्होंने कल्याणी से कहा, "हाँ, हाँ, इस वर्ष में अब विवाह कर देना है। मुझे चिन्ता है।"

कल्याणी बोली, "अब जो भी ब्राह्मण आये उससे बात कर लो। लड़की देख लो।"

पण्डित ज्ञाननाथ ने कहा, "जयन्त भी तो पसन्द करेगा। उसी की इच्छा पर तो विवाह का मण्डप सज सकेगा।" इतना कहा और सूखे भाव से उन्होंने कल्याणी की ओर अपना मुँह कर दिया।

कल्याणी बोली, "जयन्त क्या पसन्द करेगा? वह क्या देखेगा? केवल लड़की की सूरत ही तो देख सकेगा। पर यह तो तुम्हें समझना पड़ेगा कि खानदान कैसा है, माँ-बाप का समाज में कैसा स्थान है? सम्बन्ध करते समय यही तो देखा जाएगा।"

पण्डित ज्ञाननाथ ने साँस भरकर कहा, "कल्याणी, आजकल कुछ नहीं देखा जाता। ऐसे समझा भी नहीं जा सकता। आज तो जिसके पास चार पैसे हो गये वही समाज में श्रेष्ठ बन गया। चाहे वह चोर हो, डाकू हो या खूनी।"

कल्याणी ने कहा, "ऐसा सभी के लिए है। मुँह के उजले और पेट के काले प्रायः दीखते हैं। मैं पूछती हूँ, एक तुम्हीं..."

क्षुब्ध बनकर ज्ञाननाथ ने कहा, "कल्याणी..."

किन्तु कल्याणी की आँखों में हँसी थी और होठों पर मुस्कान। तुरन्त बोली, "हाँ, ऐसे ही तो कोई अपनी बुराई नहीं सुन सकता। जब अपने पर बात आई तो तुम्हारे मन पर कैसी चोट लगी! ऐसी ही सबकी बात है। सभी ओट में शिकार खेलते हैं। कहने को पण्डितजी हो तुम, धर्म के ग्रन्थ पढ़ते हो पर किसी को चार पैसे देकर कैसा कसकर सूद लेते हो? कोई सौ रुपये की चीज गिरवी रखने आता है तो उसके हाथ पर पूरे पचास भी नहीं रखते। तुम भी लोगों की विवशता का लाभ उठाते हो। बताओ तो क्या यह पाप नहीं? आज तुम्हारा लड़का पढ़-लिख गया है तो उसे सुदर्शनी हुण्डी समझते हो। किसी बड़ी

दुकान पर भुनाना पसन्द करते हो। मैं कहती हूँ, यही सबसे बड़ा अधर्म है। इन्सानियत का खून !" कहते हुए कल्याणी का स्वर गम्भीर पड़ गया।

इतना देख-सुन, पण्डित ज्ञाननाथजी खड़े हो गये और साँस भरकर वहाँ से जाते हुए बोले, "तुम नहीं समझोगी, नहीं जान सकोगी, और न ही इस जिन्दगी का मर्म समझ सकोगी ! औरत हो न तुम ! निरी मूर्ख।"

कल्याणी ने अत्यन्त कातर और निर्मम भाव में जाते हुए पति को देखा और उसी की पीठ पर अपनी आँखों को पसार दिया। उसी समय उसने ऊपर आसमान की ओर देखा और जैसे एक बार फिर जीवन में यह समझना चाहा कि उस आसमान के ऊपर भी कुछ है—कोई भगवान—अथवा मनुष्य के समान यह आसमान भी केवल खोल है, खोखला है।

उसी समय जयन्त घर में आया। देखते ही कल्याणी बोली, "अरे अब तू कैसा हो गया है, जयन्त ? देख तो, दिन ढल गया और तूने निराहार रहकर ही इतना समय काट दिया। बोल तो, आज कहाँ गया था ?"

जयन्त थका हुआ था, उसके पैरों में धूल भरी थी। पसीने से लथपथ, चारपाई पर बैठते ही वह पड़ गया। यह देख कल्याणी पंखा उठा लाई और हवा करने लगी। तभी ठंडी हवा का झोंका खाकर जयन्त बोला, "माँ, मैं वही कार्य सम्पादित करने गया था जिसके लिए तूने मुझे पैदा किया। बोल तो, कभी कहा था न तूने कि एक बालक पाने के लिए तुमने शिव की आराधना की थी। उसीने वरदान रूप में तुझे यह जयन्त दिया।"

कल्याणी बोली, "हाँ, हाँ, मैंने वरदान तो पाया। तू मिला। पर बेटा, ऐसा भी क्या कि तुम्हें न खाने की और न सोने की सुध है। बोल तो, आज कहाँ गया था ?"

जयन्त बोला, "माँ, भगवान ने मुझे ऐसे ही रास्ते पर डाल दिया है। यह डॉक्टर का पेशा बड़ा कठोर है। वह हमीरपुर गाँव है न, मुझे आज वहीं जाना पड़ा। वहाँ आने-जाने में मेरे शरीर को कष्ट तो हुआ

पर मन को जो सुख मिला वह भी अभूतपूर्व रहा। एक जवान लड़के को हैज़ा हो गया था, हर्ष है कि मेरी दवा से वह बच गया। पता है वह जिस माँ का लड़का था वह विधवा है ? बेचारी, अपने हाथों में पड़े चाँदी के कड़े बेचकर पाँच रुपये लाई और मुझे देने लगी। पर मैंने तो उसका आशीष पाया, रुपया नहीं।"

कल्याणी ने साँस भरकर कहा, "तूने ठीक किया बेटा, सच ! गरीब विधवा का वही एक लड़का सहारा होगा। उसके मन ने ज़रूर तुझे आशीष दिया होगा।"

जयन्त उठकर बैठ गया और बोला, "माँ, वह आशीष गहरा था, सच्चे हृदय से निकला था।"

कल्याणी ने कहा, "चल, अब हाथ-मुँह धोकर रोटी खा ले।" वह बोली, "बेटा, शरीर का भी ध्यान रख। खाने-पीने की सुध न छोड़।"

जयन्त ने मुस्करा दिया और लोटे में से पानी लेकर मुँह-हाथ धोने लगा। जब वह रोटी खाने बैठा, तो तभी कल्याणी के मन में बात आई कि कितना बड़ा अन्तर है इन दोनों में। पिता पण्डित है, दान लेता है, सूद पर रुपया चलाता है और बेटा उपकारी बना है। दीन-दुखियों की पीड़ा में अपने को खपा देना चाहता है।

उसी समय जयन्त बोला, "सच माँ, इस मनुष्य में बड़ी पीड़ा है, कसक है, टीस है ; जिसे देखो वही अभाव से भरा है।"

कल्याणी ने साँस भरकर कहा, "हाँ, बेटा ! यही अवस्था है। अभावों के जीवन में फँसा इन्सान क्या सुख पाता है ? सब ओर ज़हरीला धुआँ घुटा है। आदमी तड़प रहा है।"

जयन्त ने कहा, "माँ, मेरा निश्चय है कि अपनी डॉक्टरी का पेशा गाँवों में चलाऊँगा, शहरों में नहीं। शहरों में तो बहुत डॉक्टर हैं।"

माँ ने कहा, "पर बेटा, यहाँ पैसा कहाँ है ? तेरे पिता तो चाहते हैं कि तू किसी शहर में··"

जयन्त बीच में बोल पड़ा, "माँ, पिताजी माया के चक्कर में हैं। उसी का चिन्तन करते हैं। मुझे तो लगता है कि पिताजी व्यर्थ ही पूजा-पाठ का प्रपंच रचते हैं ; माला फेरते हैं। उनके मन में तो धन की लालसा है। रात-दिन उसी की कामना करते हैं।"

पुत्र से सुनी बात कल्याणी को अच्छी ही लगी क्योंकि वह बात उसके मन की थी परन्तु उस समय केवल यह ही बोली, "बेटा, तेरे पिता भी जो कुछ चाहते हैं वह अपने लिए नहीं बल्कि तेरे ही लिए। वह तो कहते हैं कि तू बड़ा आदमी बने ; सुख की ज़िन्दगी बिताये।"

जयन्त ने कहा, "माँ, सुख वह है जो अनुभूति से पूर्ण हो। यह ज़रूरी नहीं कि धन पाकर ही सुख प्राप्त हो।" अब तक वह खाना खा चुका था और जाने के लिए खड़ा हो गया था।

कल्याणी ने कहा, "अरे, बस ! कुछ भी नहीं खाया !"

जयन्त बोला, "मुझे उस बीमार की माँ ने दूध पिला दिया था, माँ ! बेचारी स्नेहमयी थी तुम्हारी सरीखी थी।"

जयन्त चारपाई पर पड़ गया। कल्याणी ने स्वयं खाना आरम्भ किया। वह भी भूखी थी। जयन्त के कारण नहीं खा सकी थी। तभी चारपाई पर पड़े हुए जयन्त बोला, "माँ, जब मैं पढ़ता था तो मेरे मन में भी यह बात थी कि डॉक्टरी से खूब रुपया कमाऊँगा ; एक के चार बनाऊँगा। बँगला, मोटर, नौकर..."

माँ ने हँसकर कहा, "तो बेटा, अभी क्या हुआ ?"

जयन्त ने कहा, "न, माँ ! मेरा वह अरमान अब नहीं रहा। अब तो मुझे लगता है कि मेरा कर्त्तव्य प्राणों में कोलाहल पैदा करता है, मुझे बार-बार सम्बोधित करता है। माँ, इस धरती पर कितनी पीड़ा है, मानव-समाज में कितना अभाव है। इसका मुझे अभी ही पता चला है। लगता है कि मैंने सफर का आरम्भ ही अब किया है।"

कल्याणी बोली, "वह भी अभी पूरी तरह नहीं, बेटा ! विवाह बाकी है। जब बहू आ जाएगी, जीवन तो तब आरम्भ होगा तेरा !"

इतनी बात सुनी तो जयन्त फिर उठकर बैठ गया और बोला, "माँ, इस विवाह की बात को महत्त्व मत दो। अभी मुझे चलने दो ; रास्ते पर आगे बढ़ने दो।"

कल्याणी बोली, "बेटा, मैं बूढ़ी हो गई हूँ। कभी भी इस घर से जा सकती हूँ। मैं चाहती हूँ कि मेरे जीते-जी तेरी शादी हो जाए और वह इस घर को सम्भाल ले तो मैं इस भार से मुक्ति पा जाऊँ।"

जयन्त हँसा, "माँ, घर तो बनते और बिगड़ते हैं। ज़िन्दगी के

साधन कभी भी जुटाये जा सकते हैं। जानती तो हो कि जब तेज़ आँधी चलती है तो सैकड़ों घर उसमें उड़ जाते हैं। उनकी परम्पराएँ नष्ट हो जाती हैं। जातियाँ और देश मिट जाते हैं, माँ ! फिर इसका मोह क्यों !"

कल्याणी ने कहा, "अरे, तू अधिक पढ़ गया है न, सो ऐसी बात करता है। पर मैं इतना कहाँ जानती हूँ। मैं तो इस गाँव के बाहर भी नहीं देख पायी।"

जयन्त बोला, "माँ, नियति का चक्र जब चलता है तो कुछ भी शेष नहीं रहता।" उसने कहा, "उस दिन मुबारिकपुर गाँव में मैं जिस बीमार को देखने गया था, उसका विवाह कुछ दिन पूर्व ही हुआ था। पर वह ऐसा बीमार पड़ा कि बच नहीं सका। वह मर गया। उस घर में वह एक ही लड़का था। उसकी पत्नी को मैंने देखा तो लगा कि अभी विवाह की हल्दी भी उसकी नहीं उतरी थी। लड़का भी सुन्दर था।" उसने साँस भरी और बोला, "किसी का कुछ पता नहीं, माँ ! आज जब आया, तो रास्ते में एक गाँव के बाहर दो चिताएँ जल रही थीं। वहाँ स्त्री-पुरुष एकत्र थे। उनमें कुछ रो रहे थे। तो मैंने सोचा, यही है इस संसार का स्वरूप। और उसी गाँव में से मुझे अंग्रेज़ी बाजे का स्वर सुनाई दिया। किसी के घर बारात आई होगी ; विवाह की रौनक हो रही होगी।"

कल्याणी चौके से उठकर जयन्त के पास आ गई। वह बोली, "हाँ, बेटा ! यही सब है इस दुनिया में ! देख तो, फिर भी आदमी जीवित है। चेतना से भरा है। मौत अपना काम करती है तो इन्सान अपना। दोनों का काम चलता रहता है।"

जयन्त ने कहा, "माँ, अजीब विषम और कठोर व्यापार है यह ! देखता हूँ तो आश्चर्य होता है ; साँस रुकता है।"

कल्याणी ज़ोर से हँसी, "असल में तू अभी इस दुनिया की रीति से दूर रहा है। अब सभी कुछ देखेगा और अनुभव करेगा।"

जयन्त ने सुनकर करवट बदल ली और सोने का प्रयत्न करने लगा।

चार

अंजना जब बीमार पड़ी तो सुगमता से उठ नहीं सकी। उसके उपचार में जयन्त को अधिक परिश्रम करना पड़ा। समीप के नगर से एक और डॉक्टर की सहायता उपलब्ध की गई। मानो वह जयन्त का परीक्षाकाल था। स्थिति यह बन गई कि कहने वाले कह रहे थे, विविध प्रकार के आक्षेप कर रहे थे, परन्तु जयन्त अपने रास्ते पर चला जा रहा था। उसके पिता पण्डित ज्ञाननाथ ने भी इस बात का विरोध किया कि वह चेता चमार की लड़की के पास न जाए, उसका उपचार न करे। परन्तु जयन्त एक दिन भी नहीं रुका, वह इस प्रकार की किसी बात में बल नहीं पा सका। मानो समाज का कथन जर्जर था, विषैला था। इसका फल यह हुआ कि वह अपेक्षाकृत गम्भीर और चिन्तनशील बन गया। जयन्त घर में तभी जाता जबकि उसे भोजन करना होता अथवा रात में सोने के समय आता। वह प्रायः अपने दवाखाने में रहता या जंगल के किसी सुनसान स्थान में चला जाता। उन्हीं दिनों जयन्त को समाचार मिला कि वह अपनी परीक्षा में पास हो गया है।

जब यह समाचार उसने अंजना को जाकर सुनाया तो उस अशक्त बनी सुन्दर बाला ने अपना दुर्बल और गरम हाथ जयन्त के हाथ पर रख दिया और कहा, "जयन्त बाबू, तुमने डाक्टरी परीक्षा तो पास कर ली परन्तु यह समाज के विरोध की परीक्षा भी पास कर लोगे तो जानूँगी। इस अग्नि-पथ को भी तुम पार कर सके तो तुम्हें देवता से भी ऊपर मानूँगी।"

अपनी उस लम्बी बीमारी में अंजना ने उस दिन ही, प्रथम बार समाज के विरोध की बात कही थी। यद्यपि जयन्त ने चेता और उसकी पत्नी से कह दिया था कि अंजना को गाँव की चर्चा का कोई ब्यौरा न दिया जाए परन्तु जब उसे सभी-कुछ ज्ञात हो गया तो उस समय जयन्त को लगा, सचमुच, समाज का यह अग्नि-कुण्ड जाने कितने निरीह और बेबस प्राणियों को भस्म कर चुका है। युग बदल गया है पर इस गाँव की धरती का इन्सान अभी ज्यों-का-त्यों बना है।

इसलिए जब उसने अंजना की बात सुनी तो वह मौन रह गया, जैसे

कठोर हो गया हो। किन्तु अंजना ने अपने दुर्बल हाथ से फिर उसका हाथ कसकर पकड़ा और कहा, "मैं जो कुछ नहीं जानती थी, कहना और समझना नहीं चाहती थी, वह सब तुमने मुझे बता दिया। मुझे आज सुबह ही माँ ने बताया कि तुम मेरे रोग के डाक्टर तो बने ही, मुझ रोगी के सेवक भी बने। माँ कहती थी कि मेरा मल-मूत्र···"

उसी क्षण जयन्त ने कहा, "छोड़ो, छोड़ो ! यह बताओ, अब कैसी तबीयत है ?"

किन्तु अंजना के मुँह में जो बात आ गई थी, वह कहनी ही थी, अतएव बोली, "माँ ने मुझे सभी-कुछ बता दिया है। तुम्हारे माता-पिता का विरोध···गाँव का···"

जयन्त ने कहा, "अंजना, जीवन में यह सभी-कुछ चलता है ; सुनना पड़ता है लेकिन चलने वाला चले ही जाता है।"

तभी अंजना ने ठण्डी साँस ली और कहा, "यह मेरा दुर्भाग्य है, जयन्त बाबू ! बदनसीबी है। सचमुच, यह मेरी ढिठाई है। आसमान के चाँद को पकड़ने की जुर्रत भला मुझ सरीखी चमार की लड़की···"

"ओह, मूर्ख अंजना ! चुप रह ! कम बोल !" यह कहते हुए जयन्त गम्भीर हो गया। तभी उसे लगा कि जैसे उस यौवनमयी बाला की ओर से उसे निमन्त्रण का खुला आवाहन था। अपनी भाषा में उस दुर्बल अंजना ने एक चैलेंज भी दे दिया था।

किन्तु अंजना ने फिर कहा, "मैं कितना कहती हूँ कि मेरे कारण अपने समाज को नाराज़ करना उचित नहीं। तुम्हें उसी घर में रहना है ; उसी समाज में।"

लेकिन जयन्त बोला, "अच्छा, अच्छा, सुन ली तेरी बात। समझती तो है कि यह मेरी निजी बात है। सभी के समान मैं भी अपना नफा-नुकसान समझता हूँ।"

यह बात जैसे अंजना को रुचिकर नहीं लगी। वह तुरन्त बोली, "तो मेरा क्या कोई अधिकार नहीं ? मेरी बात की कोई महत्ता ही नहीं ?" यह कहते हुए वह उदास बन गई।

"ओह, नादान लड़की !" जयन्त तुरन्त बोला, "मैं कहता हूँ, यह परेशानी मुझे स्वयं उठानी है, तुझे नहीं। यह कर्तव्य की बात है ; मेरे

चिन्तन की बात है !"

अंजना बोली, "मेरा बापू कहता था कि लोग तुम्हें यहाँ आने से रोकते हैं, तुम्हारे पिता भी ! तब क्यों आते हो ? यह तो देखते ही हो कि यह अंजना अछूत है।"

जयन्त बोला, "अंजना, अब तेरा रोग चला गया है। इसी से लड़ती है, ऐसी इच्छा व्यक्त करती है, बड़ी चालाक है तू !"

अंजना सहज भाव से मुस्कराई, "यह अधिकार भी मुझे तुमसे मिला है, जयन्त बाबू ! आखिर मेरा है कौन इस दुनिया में कि जिससे लड़ सकूँ, अपने मन की कुछ कह सकूँ। पर सुनते हो, मैं यह कभी पसन्द नहीं करूँगी कि मेरे कारण तुम्हें कष्ट मिले, अथवा लोक-चर्चा का पात्र बनना पड़े।"

जयन्त खड़ा हो गया और बोला, "अच्छा, अब चलूँगा। ये बातें फुरसत में सुनने की हैं, फिर आऊँगा।" यह कहते हुए वह चल दिया। अभी वह चमारों के उस पुरवे से बाहर नहीं निकल सका था कि तभी तीन-चार चमारों ने उसे रोक लिया। एक ने कहा, "डाक्टर जी, अब कैसी है अंजना !"

जयन्त ने सीधे स्वभाव से कह दिया, "अब ठीक है।"

किन्तु उसी समय एक दूसरा व्यक्ति बोला, "नकली बीमारी गई, अब असली बीमारी है।" इतना कहा और वह स्वतः ही-ही-ही करके हँस दिया।

इतनी बात सुनकर जयन्त ने उसकी ओर देखा और क्षुब्ध बनकर बोला, "क्या बात ?" वह उसकी ओर बढ़ गया।

वह व्यक्ति बोला, "हाँ, पण्डितजी, जवान लड़की का रोग क्या जल्दी जाता है ? वह सरसाम बन जाता है, त्रिदोष हो जाता है, वात, पित्त और कफ़···" वह हँस दिया।

जयन्त का दिमाग झनझना उठा। तैश से उस व्यक्ति के मुँह पर तमाचा मारकर बोला, "बद शऊर··· बेशर्म···" वह वहाँ से चल दिया।

तमाचा ज़ोर का पड़ गया था। अतः वह व्यक्ति तिलमिला गया। डर भी गया। उसके साथी ने कहा, "मूर्ख, ऐसे कहा जाता है ? यों एकदम···"

उस व्यक्ति ने कहा, "मैं इस पण्डित के बच्चे को तमाचा मारने का मज़ा चखाऊँगा।"

दूसरे ने कहा, "हाँ, नहीं तो, चोरी और सीनाज़ोरी।"

तीसरा बोला, "हम गरीब हैं न, तभी ये बड़ी जाति वाले हमारे घरों में ही सेंध लगाते हैं···हमारी बहन-बेटी··"

जिसके तमाचा लगा था वह बोला, "मैंने इस पण्डित की बीच गाँव में पगड़ी न उछाली तो मेरा नाम चेतू नहीं।" और वह तभी एक ओर को बढ़ गया।

यह घटना प्रातः के समय घटी थी और दोपहर तक गाँव भर में फैल गई। पण्डित ज्ञाननाथ और कल्याणी के कानों में भी यह बात पहुँच गई। उस दिन जयन्त को गाँव से बाहर जाना था इसलिए उसका दवाखाना बन्द था। किन्तु सचाई यह थी कि जयन्त बाहर जिस काम से जा रहा था, नहीं जा सका। वह अपने मकान के ऊपरी पार्श्व में जाकर बिस्तर पर जाकर जो पड़ा, तो पड़ा ही रहा। एक बार कल्याणी ने जाकर भी देखा, तो वह सो रहा था।

लेकिन जब दोपहर बीता और दिन उतर चला तो कल्याणी फिर जयन्त के पास पहुँची, जाकर देखा कि वह जाग रहा था। उसे देखते ही कल्याणी ने कहा, "आज क्या बात है, बेटा! रोटी नहीं खायेगा क्या?"

जयन्त ने कहा, "नहीं, माँ! आज सिर दुख रहा है।"

कल्याणी बोली, "सिर तो दुखेगा ही! छोटी कौम को मुँह लगाना कभी अच्छा नहीं होता। आज गाँव भर में चर्चा है कि तेरा उन चमारों से···"

जयन्त बोला, "माँ! यह सभी बकवास है। मेरी निगाह में कोई छोटा नहीं, आदमी स्वयं छोटा है। ये बड़ी जाति वाले सबसे अधिक निकम्मे हैं, धूर्त्त हैं और कमीने हैं।"

कल्याणी बोली, "तेरे पिताजी कहते थे कि तुझसे किसी ने कुछ कहा था।"

जयन्त झल्ला पड़ा, "नहीं, माँ! मुझसे कुछ नहीं कहा गया। जिसने कहा, उसे सबक़ मिल गया।"

"हाँ, यही तो। तूने चैतू चमार के मुँह पर थप्पड़ मारा था। और जानता नहीं कि वह बदमाश है, कई बार का सज़ायाफ्ता है।"

"तो हुआ क्या!" जयन्त ने कहा, "बदमाश तभी तक बदमाशी दिखाता है जब तक उसका अस्तित्व स्वीकार किया जाए। वह चैतू क्या है, मुझे पता है।"

कल्याणी ने साँस भरी और कहा, "बेटा, अपने दुश्मन बनाना बुरा है।"

जयन्त तेज़ स्वर में बोला, "इस दुनिया में सभी कुछ चलता है, माँ! लोग जब आग में स्वयं कूदना चाहें तो कौन रोक सकता है।"

कल्याणी वापस चली गई और नीचे जाकर घर के कामों में लग गई। उसी समय जयन्त उठा और स्वयं भी नीचे चला गया। मुँह धोया। शीशे के सामने जाकर सिर के बाल ठीक किये। जब वह बाहर जाने लगा तो कल्याणी ने फिर टंकोरा, "अरे, कुछ खायेगा नहीं?"

जयन्त ने कहा, "इस समय नहीं, माँ!" वह चला गया। अभी वह अपने मुहल्ले से बाहर निकला ही था कि सामने से आता हुआ मलखान नज़दीक आ गया। वह पास आते ही बोला, "आज कहाँ गये थे, जयन्त भैया? मैं कई बार आया और लौट गया।"

जयन्त ने कहा, "तबीयत खराब थी, घर में सो रहा था।"

मलखान बोला, "राम-राम! मैंने तो समझा था कि तुम शहर गये हो। अब कहाँ चले?"

जयन्त ने कहा, "जंगल में।" वह बोला, "हरे-हरे खेत देखूंगी, ठण्डी हवा लूँगा। दिमाग़ स्वस्थ करूँगा।"

मलखान ने कहा, "मैंने सुना है कि..."

जयन्त तुरन्त उसका अभिप्राय समझ गया। बीच ही में बोला, "सब झूठ है। तिल का ताड़ है।"

"नहीं, भैया!" मलखान बोला, "मैंने कइयों के मुँह से सुना है। चमारों के पुरवे में गया, तो वहाँ भी ..."

जयन्त ने सहज भाव से कह दिया, "कुछ बात होती है, कुछ बनाई जाती है।" यह कहते हुए वह आगे बढ़ गया। उसने मुड़कर कहा, "शाम को मिलना, मलखान! दवाखाने में आना।"

मलखान ने कहा, "अच्छा।" और वह स्वयं भी आगे बढ़ गया।

किन्तु वहाँ से जयन्त जंगल में नहीं गया, वह सीधा चमारों के पुरवे में पहुँच गया। अवसर की बात थी कि जब वह उस जाति की चौपाल के पास पहुँचा तो देखा वहाँ कुछ आदमी बैठे थे। उनमें चैतू भी था। जयन्त सीधा उस चौपाल पर चढ़ गया। उसे देखते ही सभी व्यक्ति खड़े हो गये। उनमें से एक वृद्ध ने कहा, "आओ, पण्डितजी, पायलागन ! विराजो !"

जयन्त चारपाई पर बैठ गया। तभी उसने चैतू की ओर देखकर कहा, "हाँ, भाई चैतू, अब बताओ सुबह तुम्हारे मन में क्या था ? तुम यही चाहते हो न कि मैं तुम्हारे मुहल्ले में न आया करूँ ?"

उसी समय वृद्ध ने कहा, "पण्डितजी, हम शर्मिन्दा हैं। सुबह चैतू ने जो कुछ कहा वह हमारे लिए सबसे अधिक दुःख का विषय है। आप हमारे सिरताज हैं। हमारा दुःख-दर्द समझने वाले हैं।"

जयन्त ने कहा, "देखो भाई, मैं आज समाज का लांछन अपने ऊपर ले रहा हूँ। एक शब्द में कहूँ, तो जहर का घूँट पी रहा हूँ। पर मैं यह नहीं समझ सकता था कि जिनके लिए मैं अपने माँ-बाप, बिरादरी की प्रतारणा पाऊँ, उन्हीं से मुझे ऐसा सुनना पड़े।"

उसी समय चैतू आगे आया और जयन्त के पैर पकड़कर बोला, "बाबू, मैं क्षमा माँगता हूँ।"

जयन्त ने कहा, "नहीं-नहीं, तुम्हें अपनी बात कहने का अधिकार है। परन्तु अफसोस यह है कि जिस प्रकार बड़ी जातियाँ तुम्हें समझती हैं उसी तरह तुम भी···निस्संदेह, तुम मुझे अपना समझते तो बैठकर बात करते, वस्तुस्थिति से अवगत होते। तुम्हारा शायद ख़याल है कि मैं उस चेता की बेटी अंजना का प्रेमी बनकर यहाँ आता हूँ।"

एक व्यक्ति बोला, "राम-राम भजो, बाबूजी ! हम यह नहीं मानते पर बड़ी कौम वाले यही कहते हैं; प्रचार करते हैं। वे ही तुम्हारे शत्रु हैं।"

जयन्त ने कहा, "मैं उनके मन की भावना को पहचानता हूँ। पर जब तुम्हारे निकट आया हूँ तो देखता हूँ कि तुम भी उसी हीन भावना के दास हो, उसी कीचड़ में फंसे हो।"

चैतू ने कहा, "गाँव में यही चर्चा है, जंगल के खेतों में भी यही बात चलती है।"

जयन्त ने अपने स्वर पर ज़ोर देकर कहा, "मुझे पता है लेकिन इसका इलाज क्या है ? बोलो, मैं गाँव छोड़ दूं ? लोगों की इस चर्चा से डर जाऊँ ?"

उन सभी व्यक्तियों की एक स्वर से आवाज़ उठी, "नहीं-नहीं, आप गाँव के हैं, गाँव में रहेंगे। ऐसे भले और पुण्य का काम करने वाले के लिए डर की कोई बात नहीं।"

चैतू ने कहा, "बाबू, आज आपने जो मेरे मुँह पर तमाचा मारा, शायद ऐसा तमाचा मैंने थानेदार से भी नहीं लगवाया था। पर देखता हूँ कि आप पुण्य का काम करते हैं। मैंने सुबह नासमझी में जो बात कही उसका मुझे अब भी पछतावा है।"

वृद्ध ने कहा, "बाबू, यह चैतू बुरा तो है पर इसमें अच्छाइयाँ भी हैं। चेताभगत की लड़की को यह भी अपनी बहन मानता है। उस बहन ने भी इसे आज बहुत-कुछ कहा है।"

जयन्त बोला, "अजीब समस्या है। आदमी स्वयं ही करुणा और दीनता का दास बना है। ऐसे क्या समाज जीवित रह सकता है ?"

एक जवान लड़के ने कहा, "बाबू, बड़ी जाति वाले हमें आदमी नहीं समझते। वह माटी का ढेला समझते हैं।"

जयन्त ने क्षुब्ध बनकर कहा, "वे बड़ी जाति वाले अपने को भी आदमी नहीं मानते। वे ईर्ष्यालु हैं, भटके हुए पथिक हैं।"

वृद्ध ने कहा, "हम सभी राम-कृष्ण के उपासक···"

जयन्त बोला, "मैं नहीं देखता कि गाँव में कोई राम का उपासक है। यह आत्म-प्रवञ्चना है। मैं अपने पिता को भी पण्डित नहीं मानता ; धर्म-गुरु भी नहीं।"

एक व्यक्ति ने हँसकर कहा, "पण्डितजी तो सूद से पैसा देते हैं। कितने निर्मम हैं !"

जयन्त चिल्ला पड़ा, "बेशक, वे निर्मम हैं। वे क्रूर व्यापार करते हैं। धर्म का पाठ पढ़ने वाला सदाशय होना चाहिए। पर मेरे पिता ऐसे नहीं हैं। इसका मुझे दुःख है।"

उसी समय लाठी के सहारे एक और वृद्ध वहाँ आया। वह उस जाति का चौधरी था। आते ही बोला, "अच्छा, आप छोटे पण्डितजी!"

जयन्त ने कहा, "भगतजी, राम-राम!"

भगतजी ने कहा, "अभी पता चला है कि आप आये हुए हैं। मैं खुद सोच रहा था कि जाऊँ और इस चैंतू की ओर से माफी माँग लूं।"

जयन्त ने कहा, "माफी, गैर से माफी माँगी जाती है। यदि चैंतूभाई ने कोई कसूर किया है तो मैंने उससे भी बड़ा अपराध किया है। मैं आज दिन-भर सोचता रहा कि मैंने नासमझी का काम किया, निरा विवेकहीन कर्म किया।"

वृद्ध भगत ने कहा, "नहीं, पण्डितजी! आपने ठीक किया। चैंतू को सज़ा दी, मुझे यह सुनकर अच्छा लगा।"

जयन्त बोला, "बाबा, समाज में ऐसे नहीं रहा जाता। थप्पड़ का जवाब थप्पड़ से देना अब पुराना रिवाज पड़ गया है। अब तो कोई और उपाय किया जाना चाहिए। अच्छा होता कि चैंतू मेरे मुँह पर थप्पड़ मारता और मैं इसके हाथों को चूम लेता और दूसरा गाल कर देता। मैं बड़ा हूं न, तो मेरी ज़िम्मेदारी अधिक थी। परन्तु मैंने अविवेकी कर्म सम्पादित किया। चैंतू ने कोई बात कही तो मैंने थप्पड़ मार दिया। इसके आगे यह भी हो सकता था कि बन्दूक हाथ में होती तो गोली · और यदि चैंतू अपनी जेब में पड़े चाकू से मेरा पेट फाड़ देता तो···हाँ, भाई! यह सब गलत परम्परा है। दूषित प्रथा है, पुरानी है, जंगलीपन से भरी है। देखता हूँ, चैंतू बेपढ़ा भले ही हो पर मुझसे अधिक समझदार है।"

एक व्यक्ति बोला, "बाबू, यह सब तुम्हारी सज्जनता है। चेतराम की लड़की तुम्हारे कारण बच गई इसके लिए हम सभी तुम्हारे ऋणी हैं। हम तुम्हारे दास हैं।"

एक वृद्ध बोला, "बाबू, तुम्हारे पसीने की जगह हमारा खून दिया जा सकेगा। हम सब तुम्हारे हैं।"

जयन्त हँस दिया, "मुझे भरोसा है।" कहते हुए वहाँ से चल दिया और सीधा घर पहुँच गया। उस समय सन्ध्या हो चली थी। कल्याणी घर के आँगन में खड़ी थी। जयन्त ने जाते ही उसके दोनों कन्धे पकड़ लिए और हर्ष से भरकर बोला, "माँ, बहुत ज़ोर की भूख लगी है।"

माँ ने कहा, "कुछ ठहर जा ! ताज़ा खाना तथा साग बन रहा है। तू जिस साग को पसन्द करता है, वही बनाया है। मैं क्या यह न जानती थी कि आज दिन-भर से तुमने कुछ नहीं खाया तो अब शाम को..."

जयन्त ने माँ के कन्धे पर अपना मुँह रख दिया और कहा, "माँ, आज दिन-भर मन उदास रहा। मैं खिन्न बना रहा। पर अब सभी कुछ भूल गया हूँ। दिन में तो मन में बात आई थी कि मैं शहर में रहूँगा, इस गाँव में नहीं। पर अब मन में बात बैठ गई है कि नहीं, मैं गाँव में ही रहूँगा। गाँव के लोगों की सेवा करूँगा।"

कल्याणी ने कहा, "इस समय तू कहाँ गया हुआ था ? कई लोग आये और लौट गये। तेरे पिता भी कई बार पूछ गये हैं।"

जयन्त बोला, "माँ, चमारों के पुरवे में चला गया था। दिन में जिस आदमी के मुँह पर मैंने तमाचा मारा था, अब वही आदमी मेरे पैरों में आ गिरा। मैंने उसे उठा लिया। तुम उसे बदमाश समझती हो पर मुझे तो लगा कि वह निरा सरल और साफ आदमी था। वहाँ और भी बहुत-से व्यक्ति थे। सभी बेचारे भले थे। गरीब आदमी कितना नेक होता है, यह मुझे आज फिर देखने का अवसर मिला, माँ !"

कल्याणी ने साँस भरकर कहा, "तू ठीक कहता है, बेटा ! गरीब निस्पृह और सरल होता है।"

उसी समय बाहर एक आदमी ने आवाज़ दी और जयन्त माँ को छोड़ उधर ही चल दिया। वह प्रसन्न और सुखी था। उस क्षण वह उत्साह और उमंग से भरा हुआ था।

पाँच

चेतराम इस बात के लिए देर से चेष्टित था कि वह अंजना का विवाह कहीं कर दे। जब उसके समक्ष उसकी लड़की को लेकर गाँव के व्यक्तियों द्वारा जयन्त पर भद्दे आक्षेप और उसका अमंगल करने की

आशंका प्रकट हुई तो वह इस बात के लिए और अधिक चेष्टित और चिन्तित हो उठा कि लड़की जितनी जल्दी दूसरे घर जाए उतना ही अच्छा है। अतएव, अंजना के विवाह के लिए उसने एक स्थान पर लड़का देख भी लिया। वह बात पक्की करने लगा। उसने बेटी की सगाई का दिन भी निश्चित कर दिया।

संयोग की बात थी कि उस समय जयन्त घर से बाहर था। जब वह लौटा, तो उसी दिन एक व्यक्ति उसके पास आया और अन्य बातें करने के साथ उसने बताया कि चेताभगत अपनी लड़की का विवाह कर रहा है। उसने लड़का देख लिया है। यह कहने के साथ वह जानना चाहता था कि जयन्त पर उस बात की कैसी प्रतिक्रिया होती है।

जयन्त ने बात सुनी तो एकाएक बोला, "क्या अंजना का विवाह··· किसके साथ ?"

व्यक्ति ने कहा, "यहीं किसी पास के गाँव में लड़का देखा है, वह किसान के यहाँ काम करता है ; खेत जोतता है।

जयन्त ने कहा, "राम-राम ! इससे तो चेताभगत अपनी लड़की का जीवन बिगाड़ देगा। उसे अन्धेरे में फेंक देगा।"

जैसे चकित बनकर वह व्यक्ति बोला, "क्यों, क्या उसे अपनी बेटी का विवाह नहीं करना चाहिए ? आखिर लड़की सियानी है। विवाह के योग्य हो गई है। चेता खुद तो बूढ़ा और अशक्त। पर तुम्हारा मतलब यह है कि···"

जयन्त ने जैसे झुँझलाकर कहा, "मेरा यह अभिप्राय नहीं कि वह लड़की को अविवाहित ही रखे पर ऐसे तो लड़की की प्रतिभा ही समाप्त हो जाएगी। वह जहाँ है, वहीं पड़ी रहेगी। निश्चय ही अब उसे विकास करने का अवसर नहीं मिलेगा। उसके मानस में जो भाव भरा है वह मर जाएगा।" यह कहते हुए जयन्त कुर्सी से खड़ा हो गया। वह विचारों में संलग्न अपनी मेज़ के आसपास ही घूमने लगा।

उसी समय वह व्यक्ति उठ गया और वहाँ से चला गया। कदाचित् उसका अभिप्राय ही यह था कि देखें जयन्त के ऊपर इस समाचार का क्या प्रभाव पड़ता है। सो, उसने देख ही लिया। वह व्यक्ति वहाँ से सीधा गाँव की चौपाल पर पहुँच गया। वहाँ कुछ और व्यक्ति भी बैठे हुए थे।

उनमें से एक उसको प्रसन्न बना देख बलात् पूछ बैठा, "क्यों हरदेवा, कैसे खुश नज़र आता है ! तूने क्या पा लिया है ?"

हरदेवा ने कहा, "मैं आज उस सत्य को देख पाया हूँ कि जिसे अब तक झूठ मानता था।"

"वह क्या ?"

हरदेवा उस व्यक्ति के कान के पास मुंह ले गया और धीरे से कुछ कहकर खुले स्वर में बोला, "इस बात पर मैं आज तक यकीन नहीं करता था पर अब समझ गया हूँ।"

जिस आदमी ने प्रश्न किया उसका नाम गनपत था। वह हरदेवा की बात सुनकर बोला, "मुझे तो काफी दिनों से पता था। मैं तो शुरू से ही इसे सत्य मानता था।"

हरदेवा बोला, "मेरा खयाल था कि गाँव के लोग ईर्ष्यावश जयन्त को बदनाम करते हैं।"

तभी उन व्यक्तियों में से एक अन्य व्यक्ति बोला, "अरे, क्या बात है, हरदेवा ! कोई नई बात है क्या ?"

हरदेवा ने कहा, "जब दुनिया में रोज़ नई बात होती है तो फिर इस गाँव में क्यों न हो। यहाँ भी आदमी बसते हैं। राग-वैराग्य के गीत गाये जाते हैं।" और वह खोलकर बात बताने लगा, "बात थी पण्डित के लड़के डाक्टर जयन्त की, उस चमार की लड़की अंजना की। देखो तो, जयन्त ने उसका नाम भी कैसा बढ़िया रख दिया ! घूरे पर पड़े पत्थर को हीरा बना दिया।"

वहाँ पर बैठा एक युवक मुस्कराया, "जैसा रूप, वैसा नाम।"

हरदेवा तुनक गया, "जी हाँ, जैसा रूप ..."

किन्तु जिस समय चौपाल पर यह बात चली उस समय अंजना घर से निकल खेत पर जा रही थी। अवसर की बात कि तभी जयन्त अशान्तमन उस सन्ध्या के प्रहर में जंगल की ओर चल दिया था। वह एक खेत पर बढ़ा जा रहा था कि तभी उसने चकित बनकर देखा कि अंजना उसके पीछे तेज़ चाल से चली आ रही है। पास आते ही तीव्र साँस लेते हुए उसने कहा, "इतनी आवाज़ें दीं कि बस ..."

जयन्त ने कहा, "मैं सुन नहीं सका। मैं मन में उठते विचारों में

ही खोया रहा।

अंजना ने मुँह का पसीना पोंछा और क्षुब्ध स्वर में कहा, "जब ज़माना मेरी नहीं सुनता, तो तुम्हीं क्यों··· मैं भाग्य की मारी···"

वस्तुतः उस समय जयन्त गम्भीर था। वह दूर छिपते हुए सूर्य की ओर देख रहा था। उसी ओर देखते हुए उसने कहा, "अंजनादेवी, भ्रम में मत रहो, कोई किसी की बात नहीं सुनता। ज़माना निर्मम है। जो कुछ हमारे मन में है, उसे केवल सुनाया जा सकता है, अवसर मिले, तो उसके लिए कुछ बल भी प्राप्त किया जा सकता है।"

किन्तु अंजना ने साँस भरकर कहा, "मैं कैसे बल प्राप्त करूँ? मैं दुर्बल हूँ।"

जयन्त ने फिर भी उसकी ओर नहीं देखा। उसने कहा, "लो यही तुम्हारा पाप है। ऐसी अवस्था में किसी को तुम्हारे प्रति सहानुभूति होना भी कठिन है।" उसने अंजना की ओर देखा, वह कुछ और उसके समीप हो गया और नितान्त आकुल बनकर फिर बोला, "मैं मानता हूँ कि रोना इस बात का प्रमाण है कि तुम्हारे मन में पीड़ा है। पर इससे मिला क्या! यह तो कायरता है। वही तुम दिखाती हो। भला रोती क्यों हो? इस जीवन-पथ पर चलने वाला अशक्त बनकर भी चलता है, लक्ष्य प्राप्त करना चाहता है। बोलो, तुम्हारे मन में क्या है?"

अंजना ने अपनी भरी आँखें आँचल में छुपा लीं और कहा, "जयन्त-बाबू, मैं निरावलम्ब हूँ। मैं जानती हूँ कि तुम क्यों मुझसे दूर हो रहे हो। मैं गाँव की बात सुन चुकी हूँ। मेरे माँ-बाप भी मुझे कचोटते हैं, पापिनी बताते हैं। पर मैं नहीं जानती कि मेरा पाप क्या है!"

जयन्त ने कहा, "नहीं अंजना, तुम्हारा कोई पाप नहीं। तुम सरल हो, साफ हो! तुम गंगा के जल के समान पवित्र हो!"

"फिर भी," अंजना ने जैसे प्रताड़ित बनकर कहा, "जयन्तजी, मैं इतनी दुर्बल हूँ, इतनी गरीब हूँ कि रोने के अतिरिक्त और कुछ नहीं जानती। पर सोचा था कि तुम्हारा सहारा पाकर मैं उस रास्ते पर पहुँच जाऊँगी कि जहाँ प्रकाश है, जीवन की चेतना है।"

जयन्त ने कहा, "वह पथ तुम्हें अब भी मिल सकता है। अच्छा हो, तो विवाह रोक दो। माँ-बाप से साफ कह दो। तुम पढ़ो। मैं शहर में

तुम्हारे लिए बात कर आया हूँ। तुम्हें भोजन-व्यय मिलेगा। पढ़ाया जाएगा और नर्स का कार्य ···"

एकाएक जैसे आतुर बनकर अंजना बोली, "मैं तैयार हूँ। मैं हर मुसीबत का सामना करने के लिए तैयार हूँ, जयन्त बाबू !"

जयन्त ने कहा, "तो बस, अब तुम जाओ ! तुम्हारा पिता सहमत हो तो सुबह भेज देना। वह मुझसे बात कर लेगा।"

अंजना ने कहा, "मेरा बापू नहीं समझेगा।"

जयन्त ने कहा, "मैं समझाऊँगा। घर पर भेजना। मेरी स्वतः इच्छा है कि तुम गाँव की एक योग्य नारी बनो। तुम कीचड़ में पड़े हुए कमल के समान अपने को प्रकट करो। आवश्यकता साहस की है। जो मुसीबत आए उसका सामना करने की क्षमता अपने में पैदा करो। यों रोकर अपनी दुर्बलता का प्रदर्शन मत करो।" यह कहते हुए जयन्त चल दिया। अंजना जहाँ खड़ी थी वहीं खड़ी रही। क्षण-भर वह सामने जाते हुए जयन्त को देखती रही। उसे लगा कि सदा के समान, वह, उस समय भी उसके लिए अलभ्य था, न समझ पाने की वस्तु था। किन्तु वह जिस प्रकार उसकी आत्मा में प्रकाश का संचार कर गया, चुटकी भरकर उसे जगा गया, वह मानो उस अंजना के लिए अपूर्व देन थी, जीवन का परम आशीष। यह सोचते ही अंजना लौट पड़ी। वह जिस काम से घर से निकली थी, अपने खेत में जाकर उसमें लग गई।

किन्तु उसी समय, जयन्त सीधा नहर के किनारे पहुँच गया। किसान घरों की ओर लौट रहे थे। जानवर भी अपने-अपने घर पहुँच गये थे। अँधेरा बढ़ चला था। जयन्त नहर के किनारे एक ऐसे स्थान पर जा बैठा जहाँ गहरा पानी था। उसकी आँखों के सामने साँय-साँय करता हुआ पानी बहा जा रहा था। उस नहर की गहराई को देख जयन्त ने अपने-आप कहा, 'इस पानी के समान जीव-जगत की भी अवस्था है। लोग जहाँ एक-दूसरे को जीवन देते हैं वहाँ उसके प्राण भी ले लेते हैं। यह नहर का गहरा जल इसके अन्तराल में छिपी किल-किलाती हुई मौत···'

उसी समय एक आदमी वहाँ आया और वह जयन्त को उस सुन-सान स्थान पर बैठा देख, विस्मय के साथ रुक गया। उसने सिर पर

रखा बोझ नहर की पटरी पर पटक दिया और पास आकर बोला, "तुम भी खूब हो, जयन्त भाई ! कभी यहाँ, कभी वहाँ !"

जयन्त ने देखा कि रूपा नाम का उसका पड़ौसी उसकी ओर देखकर आँखों से हँस पड़ा है। वह मुस्करा रहा है। यह देख, जयन्त बोला, "क्यों, बात क्या है, रूपराम ?"

रूपराम और पास आ गया और बोला, "अभी कुछ देर पहले मैंने तुम्हें देखा था, उस अंजना के साथ · और अब···"

जयन्त ने कहा, "हाँ, अंजना से मेरी भेंट हुई थी। वह परेशान थी, रूपराम !"

रूपराम ने पूछा, "क्यों ? अब तो उसका विवाह है।"

जयन्त ने कहा, "यही तो रे ! वह उस विवाह से सहमत नहीं है।"

सुनकर रूपराम मौन रह गया। वह धरती पर पड़ा एक ढेला उठा नहर के गहरे पानी में फेंकता हुआ बोला, "यही तो···हाँ, जयन्त भैया !"

जयन्त ने अचरज और जिज्ञासा के साथ उस रूपराम की ओर देखा, वह जैसे उसके मन में आई बात को समझने लगा। किन्तु रूपराम ने स्वयं ही कहा, "भैया, अब तुम कहो या नहीं, वह अंजना·· तुम···"

जयन्त ने बीच में ही उसकी बात रोक दी और कहा, "रे, मूर्ख ! वह अंजना अब इतनी नादान और नासमझ नहीं है कि जो अपनी और मेरी स्थिति न पहचानती हो। वह इस बात को समझती है कि उसका और मेरा समाज में क्या स्थान है।"

किन्तु रूपराम के मन में जो बात एक बार आ गई वह उसी को लेकर बोला, "भैया, यह तो समझते ही हो कि जवानी दीवानी होती है।"

जयन्त ने नहर के गहरे पानी को घूरते हुए कहा, "यह समझ ले, मैं अन्धा नहीं हूँ। मुझे अपनी अवस्था का ज्ञान है।"

रूपराम मौन हो गया। वह कुछ नहीं बोल सका।

तभी जयन्त ने फिर कहा, "हाँ, रूपराम, मैं तुझे इस सन्ध्या के समय अपने मन की यह बात बताना कोई पाप नहीं मानता कि मैं यह ज़रूर चाहता हूँ कि अंजना, जो अंगूरी से अब नये नाम द्वारा पुकारी

जाती है, क्यों न समाज की विशिष्ट नारी बने ! उसमें वह भावना है, करुणा है, इच्छा है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि कोई उसे प्रोत्साहन दे, मदद दे। सो, वही मैं उस अंजना को देना चाहता हूँ। मैं इस बात को नहीं मानता कि कोई छोटी जाति के घर में पैदा होकर समाज का विशिष्ट अंग नहीं बन सकता, अथवा वह अपनी उपयोगिता नहीं समझ सकता।"

रूपराम ने कहा, "यह मैं भी मानता हूँ। जाति कर्म से बनती है, जन्म से नहीं। उस अंजना में ऐसी बात ज़रूर है जिससे वह अपूर्व लगती है।"

जयन्त ने कहा, "उस अंजना के संस्कार अच्छे हैं, निर्मल हैं। वह अत्यन्त भावनामयी है।"

तभी रूपराम ने पूछा, "तो अब क्या होगा, भैया !"

जयन्त ने कहा, "वह अंजना इसीलिए मेरे पीछे दौड़ी आई थी। अब मैं उसके यहाँ नहीं जाता। वह भी पढ़ने नहीं आती। जब से वह बीमार पड़ी तब से उसने परम्परा बदल दी है। मैं समझता हूँ यह उसकी बुद्धिमत्ता थी। लोक-चर्चा से बचने की भी आवश्यकता थी।"

रूपराम बोला, "चेताभगत लड़की का विवाह कर देगा।"

जयन्त ने कहा, "यह नहीं होगा। अंजना अभी पढ़ेगी। वह नगर में जाएगी।"

रूपराम ने कहा, "यह तुम कहते हो, या अंजना ?"

जयन्त उठ खड़ा हुआ और बोला, "अरे, बुद्धू ! मैं कहूँ तो, वह कहे तो, बात एक ही है। मुझे भरोसा है कि मैं जो कुछ कहूँगा, अंजना वही मानेगी।"

रूपराम भी खड़ा हो गया। उसने अपना बोझ फिर सिर पर उठा लिया। वे दोनों चल दिये। तभी रास्ते में जयन्त ने फिर कहा, "रूपराम भाई, गाँव के लोग दूर तक नहीं देखना चाहते, नज़दीक देखते हैं। यह भी किसी संयोग या संस्कार की बात है कि अंजना से मेरा परिचय हो गया। मुझे भी जीवन में यह पहली बार पता चल गया कि कीचड़ का कमल अधिक निर्मल और पवित्र होता है। यह अंजना वही है।"

रूपराम ने कहा, "लड़की असाधारण है।"

जयन्त ने साँस भरी और वह सिर के ऊपर उड़ते हुए एक पंछी को दूर जाता हुआ देखने लगा।

तभी रूपराम ने कहा, "और भैया, यह भी सुना है कि तुम्हारा सम्बन्ध एक बड़े घर की लड़की से हो रहा है। लड़की अंग्रेजी और कई भाषाएँ पढ़ी है। दहेज में भी बहुत-कुछ मिलेगा।"

जयन्त ने जैसे चौंककर कहा, "हाँ, मैंने भी सुना है। मुझसे माँ ने कहा है।"

"तब ? तुमने क्या निश्चय किया ?"

जयन्त बोला, "रूपराम भाई, मैं विवाह को महत्त्व नहीं देता। होगा, हो जाएगा। अच्छा होता कि अभी न होता। मैं कुछ समाज का काम करता। अपने को योग्य बनाने का प्रयत्न करता। पर देखता हूँ कि लोग..."

रूपराम बोला, "जयन्त भाई, इस अंजना ने तुम्हें बदनाम कर दिया है।"

जयन्त ने अपने स्वर पर जोर देकर कहा, "गाँव के आदमी नासमझ हैं। वह औरत और आदमी में केवल एक ही बात देखते हैं...वासना की बात...प्रेम और प्रणय की बात राम-राम ! क्या यही संकल्प रह गया है इस आदमी के लिए, इस औरत के लिए !"

रूपराम बोला, "अभी तो यही सोचा जाता है, भैया ! सच, आज यही।"

जयन्त ने कहा "यही अर्से से चला आया है। आदमी इसी प्रकार एक-दूसरे को सन्देह और ईर्ष्या की दृष्टि से देखता आया है। इसी हथियार से समाज नारी की हत्या करने का प्रयत्न करता है।"

रूपराम ने कहा, "हत्या · नारी की मौत !"

जयन्त ने अपने स्वर पर जोर देकर कहा, "हाँ, यही ! गाँव के लोगों ने बेचारी अंजना के साथ पाप किया है...अन्याय !" और यह कहते ही, वह गाँव में पहुँच, अपने घर की ओर बढ़ गया।

छह

उस छोटे-से गाँव के समाज में, भले ही, ऊपर से ऐसा कुछ न दीख पड़ता हो कि वह नवयुग का प्रतिनिधि है, परन्तु दिल और दिमाग़ से वहाँ का समाज भी बदल रहा था। वहाँ किसी बड़ी क्रांति का विस्फोट तो नहीं हुआ किन्तु उसका रूप दृष्टिगोचर होने लगा था। गाँव के पुरुष-समाज में जहाँ पण्डित ज्ञाननाथ का विशिष्ट स्थान था वहाँ उनकी पत्नी कल्याणी का नारी-वर्ग में सम्मान किया जाता था। किन्तु स्थिति दोनों की विपरीत थी। कल्याणी जहाँ उदार और सदाशय की प्रतिमूर्ति थी वहाँ पण्डित ज्ञाननाथ अनुदारता के प्रतीक थे। दोनों में ज़मीन आसमान का अन्तर था। कल्याणी किसी अभाव-ग्रस्त को यदि कुछ दे पाती तो पण्डितजी सदा लेने के इच्छुक रहते। कदाचित् यही कारण था कि उस समाज के अधिकांश व्यक्तियों का यह एक निश्चित मत था कि जयन्त अपनी माँ पर गया है, पिता पर नहीं। क्योंकि जयन्त भी उस समाज की दृष्टि में उदार था।

लेकिन गाँव की राजनीति और धर्म के प्रति मान्यताएँ जिस प्रकार की थीं, वे भी, ऊपर से देखने में भले ही हल्की हों, परन्तु उनकी जड़ें पाताल तक पहुँची थीं। यही कारण था कि लोग एक-दूसरे को कटुता में जहाँ मार-पिटाई और हत्या करने तक की क्रियाएँ सम्पादित करते, वहाँ अपने कार्यों में पाप-पुण्य का भी योग रखते। यद्यपि एक-दूसरे की आलोचना करना वहाँ के समाज का प्रमुख स्वभाव था, परन्तु हँसते को देखकर कुढ़ना और रोते को देखकर सहानुभूति से भर जाना, विश्व के समान, वहाँ का भी चिर-पुरातन से जीवन का अंग बना हुआ था।

श्रीधर उस गाँव का गरीब ब्राह्मण था। उसकी लड़की युवा थी किन्तु वह ब्राह्मण ऐसा सुयोग नहीं पा रहा था कि लड़की का विवाह कर दें। संयोग से उसी समय उसे एक लड़का मिला। श्रीधर के पास एक बैल था, जिसे वह खेत जोतने के काम में लेता था, वही उसका आधार था। किन्तु जब उसे ऐसा अवसर मिला कि लड़की का विवाह कर दे तो प्रश्न उठा, पैसा कहाँ से लाये। इसी उद्देश्य से वह गाँव के

लाला के पास गया किन्तु वहाँ से साफ जवाब मिल गया। फिर वह आया पण्डित ज्ञाननाथ के पास। उसे पता था कि पण्डितजी भी बिना कुछ धरोहर रखे रुपया नहीं देते। अतएव, लड़का उसके हाथ से न निकल जाए, वह अपना सर्वस्व बेच देने के लिए तैयार हो गया। उसने पण्डित ज्ञाननाथ से बात की और पाँच सौ रुपये में खेत और बैल उनके हाथों सौंप देना स्वीकार कर लिया। पण्डितजी के लिए वह सौदा लाभ का था। उन्हें पता था कि श्रीधर धरोहर को वापस नहीं ले सकता। दो-तीन हज़ार का माल उन्हें सस्ते में मिल रहा था। ऐसा अवसर उन्हें काफी समय से नहीं मिला था। जितना रुपया देना उन्होंने स्वीकार किया, दो-तीन वर्ष में उसका सूद ही इतना होता था जो कि मूल के बराबर पहुँच जाता।

जिस दिन श्रीधर की पण्डित ज्ञाननाथ से यह बात हुई, कागज़ लिख देने की चर्चा भी हो गई, तभी, यह चर्चा गाँव के कुछ व्यक्तियों के कानों में भी पहुँची। वह जयन्त के सुनने में भी आई। जिस व्यक्ति ने उससे यह बात कही, उसीने बताया कि श्रीधर भूखा मर जाएगा। अब उसके पास जीवन-यापन का कोई आधार बच नहीं रहेगा। कहने वाला एक युवक था जो प्रायः जयन्त के पास आता-जाता था। वह जाति का ठाकुर था।

जब जयन्त ने बात सुनी तो वह गम्भीर बन गया। उसने तत्क्षण ही इस बात को अनुभव किया कि सचमुच, यह अन्याय है, पाप है, उसके पिता का।

युवक का नाम जयपाल था, वह बोला, "जयन्तजी, हो सके तो उस ब्राह्मण की मदद करो, उसे सहारा दो।"

जयन्त ने कहा, "हाँ, हाँ, यह काम करना होगा। मैं श्रीधर से मिलूंगा।"

जयपाल बोला, "वह श्रीधर बड़ा अभागा है। उसका एक लड़का था, वह मर गया। लड़की उसकी देवी है। वह नाले के पार रहता है न, इससे उसका गाँव से भी बहुत कम सम्बन्ध रहता है। लड़की भी गाँव में कम आती-जाती है।"

जयन्त ने कहा, "मैं श्रीधर पण्डित से कभी नहीं मिला। अब

मिलूँगा।"

जयपाल ने कहा, "तुम जाओगे उसके घर तो देखोगे कि उसकी लड़की तुम्हारा स्वागत करेगी। वह बोलेगी, तो लगेगा कि जैसे फूल झरते हों। वह लक्ष्मी है।" यह कहते हुए जयपाल उठ खड़ा हुआ और वहाँ से चल दिया।

किन्तु जयन्त जब अकेला रह गया तो वह जैसे और अधिक जड़ बन गया। उसे लगा कि मानो उसके जीवन का यह सबसे बड़ा पाप है कि वह ऐसे पिता की सन्तान है जो सूदखोर है, लालची है; इन्सान की इन्सानियत का शोषण करता है। वह धन पाता है और मनुष्यता को मारता है। यद्यपि, ऐसा विचार पहले भी अनेक बार जयन्त के मानस में पैदा हुआ, परन्तु इस समय यह अधिक कठोर और तीव्र बनकर आया। उसे लगा कि उसके पिता के समान, समूचा समाज ही ऐसा है; विश्व ही ऐसा है। तभी उसने कहा, फिर यह विश्व-बन्धुत्व का नारा क्यों? किसलिए? यह आदमी धार्मिक क्यों? यह तो पाखण्डी है, धूर्त है, कमीना है! ये मस्जिद, मन्दिर और गिरजे इन्सान को कुछ नहीं देते। ये सब पाखण्ड के घर हैं। इन्हें गिरा दिया जाए।

उसी समय जयन्त की माँ वहाँ आई और बोली, "अरे जयन्त, आज नाश्ता नहीं करेगा? चल, दूध पी! थोड़ा-सा हलुवा···"

जयन्त जैसे वेदना के साथ फूट पड़ा, "माँ, तुम, मेरे नाश्ते की बात करती हो, लोगों को एक वक्त भोजन भी···"

माँ ने सरल भाव से अपने दाँत निपोर दिये और कहा, "अरे, तो क्या तूने दुनिया का ठेका लिया है? जिसके भाग्य में जैसा है, वैसा उसे मिलता है। कोई राज-महल में, तो कोई झोंपड़ी में है।"

भरी पीड़ा से जयन्त चीख पड़ा, "माँ, इन राजमहल वालों ने ही उन झोंपड़ीवासियों को अन्धेरे में फेंक दिया है। उन्होंने मनुष्यता का खून किया है।"

चकित बनकर कल्याणी बोली, "अरे, तू कर्मलेख की रीत नहीं समझता, बेटा! इस धरती पर सभी को अपने भाग्य के अनुसार मिलता है।"

जयन्त झुँझला पड़ा, "नहीं, माँ! यह तो धोखा है। छल है। भाग्य

का इस धरती की सम्पदा से कोई सम्बन्ध नहीं। यहाँ तो जिसमें जितना बल है, वह प्राप्त करता है। कोई छुरी से कत्ल करता है, कोई बन्दूक की गोली से आदमी का अन्त करता है। देखतीं नहीं, चोर-डाकुओं का समूह दिन-दूना बढ़ रहा है। स्वार्थपरक मनुष्य अन्धा बन गया है। भाग्य का तो बहाना है।

"धर्म भी लोगों की आँखों में धूल झोंकता है, मूर्ख बनाता है। त्रस्त इन्सान को इसने और अधिक जड़ बना दिया है।"

माँ ने कहा, "अरे, तेरे मन में क्या है?"

जयन्त बोला, "माँ, मेरे पिता भी अच्छे आदमी नहीं। सच, उदार नहीं।"

कल्याणी जैसे आसमान से धरती पर गिर पड़ी। वह स्तब्ध रह गई। उसका पुत्र अपने पिता के प्रति ऐसी भावना रखता है, यह उसे अच्छा नहीं लगा। उसे दीखा कि जैसे वह युवा जयन्त पागल हो गया है। कुछ वर्ष शहर में क्या पढ़ आया, अपना दिमाग़ बिगाड़ लाया है। धर्म को भी बेकार मानता है।

किन्तु जयन्त ने फिर कठोर बनकर कहा, "मैं ऐसे आदमी को कसाई मानता हूँ, इन्सान का खूनी।"

"जयन्त, मूर्ख कहीं का!" कल्याणी चीख पड़ी, "तू अपने बाप को ऐसा कहता है। तू पितृ-द्रोही है, इस कुल का कलंक है।"

किन्तु जयन्त तो स्वयं क्रोध में था। वह युवक था। उसकी नसों में नया खून था। माँ की बात सुनते ही वह मेज़ पर हाथ मारकर बोला, "हाँ, मैं ऐसी अवस्था में द्रोही बनूँगा। मेरे पिता पाप का पैसा कमाते हैं न, वह इन्सान के खून से भरी दौलत घर में लाते हैं, तो इतना देखकर तुम भी···तुम औरत बनकर भी···"

कल्याणी इतनी दृढ़ नहीं थी कि पुत्र की उस भारी बात को सहार लेती। वह दरवाज़े पर खड़ी थी, उसी का सहारा लेकर ऊपर नीले आसमान की ओर देखने लगी। क्रोध और घृणा से उसकी आँखें भर आईं।

तभी जयन्त फिर बोला, "वह ठाकुर का लड़का जयपाल मुझे अभी बहुत कुछ बता गया है। वह कह गया है कि मेरे पिता जी··"

कल्याणी ने कहा, "अरे, ये ठाकुर सभी ईर्ष्या करते हैं। ये समझते कि यह ब्राह्मण का घर···"

जयन्त बात को काटते हुए बोला, "नहीं माँ, कुछ लोग वास्तविकता भी समझते हैं। जयपाल भला आदमी है।"

कल्याणी ने कहा, "लोग दूसरे के घर में आग लगी देखकर प्रसन्न होते हैं।"

जयन्त खिन्न भाव से मुस्कराया, सूखे भाव से, घृणा के साथ, तनिक हँस भी दिया। उसने कहा, "माँ, तुम भी वास्तविकता से दूर हो, अपना दोष छिपाती हो। तुम अपने घर को ही सर्वश्रेष्ठ मानती हो। अपने पति को देवता।"

यह सुनकर कल्याणी, मन से पीड़ित बनकर भी, जैसे बनावटीपन से हँस दी, "अरे, अब तू कैसा होता जा रहा है, जयन्त ! कोई अपना घर बनाता है और तू बने हुए को बिगाड़ना चाहता है।"

जयन्त बोला, "माँ, मत भूलो कि तुमने मुझे पैदा किया। मेरे मन में जो कुछ डोलता है, आता-जाता है, वह सब तुम्हारी देन है। बता तो, तुम्हें कसाई-बेटा अधिक पसन्द आता है ? और मैं यह नहीं बनूंगा। मैं अपने स्वार्थ के लिए दूसरे का वध नहीं करूँगा।"

कल्याणी ने इतनी बात सुनी तो जैसे उसकी छाती फूल गई। वह गद्गद् हो उठी। किन्तु उसका जयन्त जिस बात पर टिका था, वह तब भी उसके लिए शोभनीय नहीं थी। क्योंकि यदि उसने पुत्र को पाल-पोसकर बड़ा किया है तो उसका पिता भी यह चाहता है कि उसका पुत्र समाज में सर्वश्रेष्ठ रहे, सम्पन्न रहे। पंडित ज्ञाननाथ जो कुछ कर रहे थे वह सब पुत्र के लिए ही तो था। अतएव, अपने मन में आई इस बात को लेकर ही कल्याणी बोली, "बेटा, तेरे पिता भी जो कुछ करते हैं वह तेरे लिए ही है। यह पैसा भी तेरे लिए है।"

यह सुनते ही जयन्त फिर ज़ोर से बोल पड़ा, "माँ, यह पैसा अशुभ है। गाँव की लाश बनाकर यदि मेरे पिता उस पर सोने का महल खड़ा करें तो उसमें मुझ सरीखा नहीं रह सकेगा, कोई भूत-प्रेत ही रहेगा। गाँव का अभिशाप पाकर न मैं फल-फूल सकूँगा, न मेरा घर। हम सभी का अन्त हो जाएगा। हमें आशीष चाहिए, लोगों का स्नेह चाहिए।"

जयन्त बोला ।

"मनुष्य धन पाकर भी कंगाल है, फकीर है । उसे भी इन्सान की सदाशयता चाहिए । इस जगत में सभी की झोली फैली है ; एक-दूसरे से सभी की याचना है ।"

माँ ने कहा, "पर यहाँ कुछ नहीं मिलेगा । इस गाँव में ज़ंगली बसते हैं । तुझे पता नहीं, गाँव के लोग तेरे पिता से कुढ़ते हैं, तेरे पिता की मौत चाहते हैं ।"

मानो आतुर बनकर, संयत भाव में जयन्त बोला, "लोग ठीक चाहते हैं, माँ !" उसने कहा, "तनिक सोचो तो, दूसरों की विवशता से लाभ उठाने वाला सूदख़ोर क्या समाज की सदाशयता का पात्र बनेगा ? यह जयन्त जब तुमने पैदा किया है, तुम्हारे विचारों से बना है, तो यही तुम्हारा गुरु बनने लगे, तुम्हें ठगने लगे, तुम्हारी विवशता का लाभ उठाने लगे, तो क्या तुम्हें अच्छा लगेगा ! माँ, इस संसार की यही रीत है । 'लो और दो' का व्यापार इस समाज में चलता है । तुम गेंद जितने ज़ोर से दीवार में मारोगी वह उतने ही वेग से वापस आएगी । व्यक्ति भी जब समाज को लूटेगा, उसका शोषण करेगा, इन्सान के प्रति क्रूरता का प्रदर्शन करने पर सन्नद्ध होगा, तो समाज भी उसे नहीं बख्शेगा । वह उसकी कब्र खोद देगा । तिरस्कार करेगा, लांछना देगा । धार्मिक और विचारक गाँव के पंडित मेरे पिताजी भी आज यही पा रहे हैं । आशीष के स्थान पर वे अभिशाप का संग्रह कर रहे हैं। याद रखो, पिता का पाप पुत्र को भोगना पड़ेगा !"

जैसे झल्लाकर माँ ने कहा, "तू पागल हो गया है । वास्तविकता से दूर जा रहा है ।"

जयन्त चुप हो गया, क्योंकि उसने समझा कि इस माँ से कुछ कहना बेकार है । उसका मुँह भी सूख गया था । वह बहुत-कुछ कह चुका था । अतएव, वह खड़ा हो गया । बाहर जाने लगा ।

कल्याणी ने कहा, "अब कहाँ चला रे !"

जयन्त ने कहा, "मरीज़ देखने ।"

"दूध नहीं पियेगा ?" कल्याणी ने उसे फिर टंकोरा ।

किन्तु जयन्त नहीं बोला, वह चला गया । उसे दूसरे गाँव जाना

था। सूर्य चढ़ आया था। माँ ने उसे देर कर दी थी; धूप तेज़ पड़ रही थी। जब वह रास्ते में एक पेड़ के समीप पहुँचा, तो देखता है, पेड़ की डाल पर बने घोंसले में उड़ता हुआ एक बड़ा पंक्षी आया और उस घोंसले में रखे पक्षी के अण्डे को मुँह में दबाकर उड़ गया है। यह देख, पास बैठा पक्षी तड़प गया। कुछ और पक्षी भी वहाँ एकत्र हो गए। वे सभी चीत्कार करने लगे। उस करुण दृश्य को देखकर, सहमा हुआ जयन्त उस पेड़ के पास रुक गया। उसकी आँखों में अँधेरा छा गया। उसे लगा कि इस सृष्टि-तल पर इस क्रूर व्यापार के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। और फिर भी लोग ईश्वर का नाम लेते हैं। उसे पुकारते हैं। उसकी गोद में ही आश्रय पाना चाहते हैं।

उसने देखा कि पल-भर में बहुत-सी चिड़ियाँ वहाँ आ गईं। वे सभी चीं-चीं करती हुई उस पेड़ के चारों ओर उड़ने लगीं। तभी जयन्त ने अनुभव किया कि आदमी से अधिक इन पक्षियों में सामाजिकता है, अपनत्व की भावना है। ये अपने साथी का दर्द पहचानते हैं। उसकी पीड़ा में डूब जाना चाहते हैं।

जयन्त फिर आगे बढ़ा। वह जिस रास्ते पर जा रहा था, उसके समीप ही, दूसरे गाँव का श्मशान था। वहाँ से जब वह निकला, तो देखा, पेड़ के साये में एक व्यक्ति बैठा था। वह उदास था। एकटक उस ओर देख रहा था जहाँ एक चिता की ठण्डी राख पड़ी थी। उस व्यक्ति को देख, पहचानते ही, जयन्त उसकी ओर बढ़ गया और बोला, "रामदास भाई, आप ..."

जयन्त को देख वह रामदास खड़ा हो गया और बोला, "हाँ, पंडितजी, मैं हूँ।"

"यहाँ कैसे भाई ! इस स्थान पर ?"

रामदास ने दूर पर ठण्डी बनी चिता की राख को लक्ष्य करके कहा, "वह मेरे अरमानों की चिता है जो कल सुलगी थी आज ठण्डी हो गई है।"

सुनते ही जयन्त बोला, "तो क्या, रामदासजी···"

रामदास ने कहा, "वह मेरी पत्नी की चिता है जिसने जीवन के दस वर्ष मेरे साथ बिताये। मेरी मुसीबतों में साथ दिया। अब उसी के

कारण…"

"ओह, तुम पर ऐसा वज्रपात हुआ, रामदास भाई !"

रामदास ने कहा, "वैसे तो मैं प्रायः यहाँ आकर बैठता हूँ। यहीं मेरी माँ सोई है, पिता सो चुके हैं, मेरा एक लड़का भी; पर पत्नी भी यहाँ आकर सो गई, तो मुझे लगने लगा है कि दुनिया में यही ज़मीन का छोटा-सा टुकड़ा सर्वश्रेष्ठ है। यहाँ बैठकर मुझे शान्ति मिलती है।"

जयन्त ने कहा, "यह तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय हुआ। मुझे पता है कि तुम्हारी पत्नी ने ही तुम्हें डूबते से उबारा था।"

रामदास बोला, "हाँ, पण्डितजी, यह औरत मेरे जीवन में ऐसी आई, इतनी ममता लेकर मेरे जीवन में प्रविष्ट हुई कि मुझे अँधेरे से प्रकाश में खींच लिया। सभी तो जानते हैं कि मैं विवाह से पहले चोर था, पक्का बदमाश था।"

जयन्त ने कहा, "तुम्हारी पत्नी देवी, थी, सच्ची नारी।"

रामदास बोला, "पर जिसने मुझे जीवन दिया, मेरा चोला बदल दिया, अब देखता हूँ कि वह भी सो गई। मुझसे दूर हो गई। गंगा की एक लहर मेरे पास तक आई और मुझे पखारकर फिर उसी गहराई में मिल गई।"

जयन्त ने साँस भरी और अपनी दृष्टि पेड़ की एक शाखा पर ले जाकर देखने की चेष्टा की जैसे वही रामदास की पत्नी हो, जो तब भी मुस्करा रही है और अपने पति की उदासी देख रही है।

रामदास बोला, "पण्डितजी, इस औरत ने मेरी बुरी आदत छुड़ाने के लिए भूखा रहना पसन्द किया, परन्तु चोरी में लाया मेरा पैसा या ज़ेवर स्वीकार नहीं किया। यह जीती, मैं हार गया। जब मेरा लड़का मरा था, इसने रोते हुए कहा था कि तुम्हारे पाप के कारण ही मेरा लड़का मर गया। और सच, पण्डितजी, तभी मैंने अनुभव किया कि चोरी जीवन का सबसे बड़ा अपराध है। मैंने अनेकों निर्धनों को लूटा, निराधार विधवा नारी को। अपने द्वारा की गई अनेक चोरियों में, मैंने सहज ही अनुभव किया कि मेरे द्वारा जो कुछ चुराया गया, वह जिसका था उसका सर्वस्व ही था, उसका प्राण ! एक विधवा जिसके यहाँ मैंने चोरी की, वह अपनी पुत्री का विवाह करने के लिए पूरे दस वर्ष से

मजदूरी कर रही थी। विवाह से एक मास पूर्व ही मैंने उसके घर चोरी की। इसका प्रहार उस नारी की छाती पर ऐसा पड़ा कि वह तिलमिल गई। परिणामस्वरूप, लड़की का विवाह तो वह नहीं कर सकी परन्तु उस पीड़ा से भरी वह स्वयं मर गई।''

एकाएक जयन्त ने कहा, ''राम-राम ! बड़ा पाप किया तुमने !''

रामदास ने कहा, ''और आज मैं उन्हीं पापों का फल पा रहा हूँ इस श्मशान में जब आकर बैठता हूँ तो मेरे प्राण छटपटाते हैं, रोते हैं।''

जयन्त ने कहा, ''बेशक !'' उसने देखा कि रामदास रो पड़ा है जैसे उसके प्राणों का रोदन उसकी आँखों में उतर आया है।

रामदास बोला, ''मेरा गुरु चला गया और मैं रह गया।''

जयन्त ने कहा, ''तुम भी जाओगे, भाई ! यहाँ कोई नहीं रहेगा जो आता है, वह जाता ही है।'' वह बोला, ''तुम्हारी पत्नी एक बहुत बड़ी स्मृति सौंप गई है, उसकी रक्षा करना। वह तुम्हें आदमी बना ग है, सच्चा इन्सान !''

रामदास ने कहा, ''हाँ, पण्डितजी ! वह मुझे इन्सान बनने क उपदेश दे गई है। मैं उसकी रक्षा करूँगा।''

जयन्त ने पूछा, ''और कोई सन्तान है ?''

रामदास बोला, ''एक लड़की है, बच्ची !''

जयन्त ने कहा, ''तुम उसी को योग्य बनाने का प्रयत्न करो। उसी के रूप में अपनी पत्नी के दर्शन करो, रामदास भाई ! वह स्मृति है तुम्हारी पत्नी की धरोहर सम्पत्ति !'' यह कहते हुए जयन्त ने विदा ली और आगे बढ़ गया। उसी समय उसके मन में बात आई, एक मेरे पित हैं, दम्भी, नितान्त क्रूर। वह चोरी नहीं करते, तो डाका डालते हैं समाज की दुर्बलता का लाभ उठाते हैं। और मेरी माँ भी नहीं समझती कि उसका पति समाज का आशीष नहीं पाता, अभिशाप पाता है। वह नर नहीं, नर-पशु बना है।

अपने मन में भरे इन्हीं विचारों को लिये जयन्त उस गाँव में प्रविष्ट हुआ। वह एक घर के द्वार पर पहुँचा। उसे देखते ही घर की वृद्धा ने एकाएक उल्लास से भरकर कहा, ''तुम आ गये बेटा, जीते रहो ! भगवान तुम्हारा मंगल करे !''

सात

नगर में मेडिकल कालेज के एक अध्यापक सूफी मत के थे। अध्ययन-काल में जयन्त उनके पास आता-जाता था। एक बार उसी प्रोफेसर ने जयन्त को बताया था, "जीवन तो आता और जाता है परन्तु इस भोगवाद की दौड़ में इसे कोई समझ नहीं पाता।" किन्तु एक बार जब जयन्त उस अध्यापक के साथ पहाड़ पर गया, तो वहाँ, प्रोफेसर के निकट रहकर, उसने देखा कि वह प्रोफेसर रात के अँधियारे में जबकि संसार सोता है अपने एकान्त में बैठा जाने क्या सोचा करता है। अनेक बार जयन्त ने पाया कि उस अवस्था में वह प्रोफेसर रोया हुआ भी देखा गया है। वैसे वह प्रोफेसर बड़ा सैलानी था। यद्यपि वह आयु से प्रौढ़ था, परन्तु शरीर की चुस्ती में किसी भी नौजवान से कम नहीं था। वन-पर्वतों में घूमना उसे अधिक प्रिय था। सुबह से निकलता तो डेरे पर शाम को लौटता। अपूर्व साहसी। एक बार जब वह जयन्त को साथ लेकर एक पहाड़ की चोटी पर चढ़ा तो संयोग की बात थी कि वहीं पर उनका एक भालू से सामना हो गया। जयन्त उस हिंस्र पशु को देखते ही डर गया। वह चिल्ला पड़ा, "प्रोफेसर साहब, भालू···"

किन्तु प्रोफेसर ने निरे शान्त और स्थिर स्वर में कहा, "चिन्ता न करो। डरो नहीं।"

और भालू उन दोनों की तरफ दौड़ा आ रहा था। उस अवस्था में उनके लिए कहीं भागने का भी रास्ता नहीं था। अतएव जयन्त ने कहा, "यह खूँखार जानवर···"

"अरे, हाँ भाई, यह जानवर भी एक जीव है! मुझे खाना चाहेगा तो खा लेगा।"

और तभी जयन्त ने देखा कि वह भालू उस शान्त खड़े प्रोफेसर से कुछ फासले पर खड़ा हुआ फुनफुनाया और अपनी लाल-लाल आँखों से देखता हुआ दूसरी ओर को मुड गया।

उसी समय प्रोफेसर मुस्करा दिया और बोला, "देखा जयन्त, इस भालू ने मुझे अपना खाद्य नहीं समझा। मुझे छोड़ गया।"

जयन्त ने साँस भरकर कहा, "परन्तु प्रोफेसर साहब, यह आपका

साहस भी अपूर्व है।"

प्रोफेसर हँसा, "जयन्त जी, यह साहस की बात नहीं, विश्वास की बात है। यहाँ से कुछ और आगे बढ़ो तो तुम्हें हाथी मिलेंगे, लड़ाकू, खूनी! वहीं पर दहाड़ते हुए शेर भी!"

जयन्त ने पूछा, "तो आप यहाँ पहले आ चुके हैं?"

प्रोफेसर ने कहा, इस बार का आना पाँचवाँ है। मैं यहीं अपनी छुट्टियाँ बिताता हूँ। जब पत्नी और पुत्री थी तो वे भी आते थे। अब वह नहीं तो अकेला ही यहाँ आकर शान्ति पाता हूँ। आओ चलो, देखते हो न वह गाँव, हमें आज वहीं जाना है। उस गाँव के निकट झरना है, बड़ा शीतल और मधुर पानी है उस झरने का। गाँव छोटा है, लेकिन वहाँ के निवासी ग़रीब होते हुए भी मिलनसार हैं, अपने अतिथि की सेवा करते हैं। मेरे कई परिवार परिचित हैं।"

उस दिन प्रोफेसर के हाथ में जो झोला था उसमें कुछ फल, मिठाई और खिलौने थे। मिठाई और फल की बात तो जयन्त सोच सकता था परन्तु खिलौने किसलिए थे, यह विषय उसके लिए जिज्ञासा का था। अतएव उसने पूछा, "प्रोफेसर साहब, ये खिलौने···?"

प्रोफेसर ने कहा, "हाँ, भाई! उस गाँव में मेरे कुछ आत्मीय हैं, सखा हैं। वहाँ उनके बच्चे होंगे। मैं जाऊँगा, तो वे बच्चे ज़रूर मेरा परिचय पाएँगे। उन्हें कुछ देते मुझे अच्छा लगेगा।"

जयन्त ने कहा, "इस दुनिया की यह रीत भी है।"

प्रोफेसर बोला, "हाँ, हाँ, यही रीत है! किसी को अपना बनाना हो तो पहिले स्वयं हाथ बढ़ाओ। बच्चे अपनत्वता को अधिक समझते हैं।" प्रोफेसर ने कहा, "दो वर्ष पूर्व जब मैं यहाँ आया था तो एक परिवार की बच्ची मुझे बड़ी भली लगी थी। अब कुछ बढ़ गई होगी। जाऊँगा तो पहचान भी नहीं पाएगी। और तब तो मेरी गोद में खेलती थी। मुझे पापा कहने लगी थी। समझते हो न! आज तो मैं जाऊँगा और लौट आऊँगा। परन्तु पहले मैं कई-कई दिन उस गाँव में रहता था। मैं इस प्रकार पहाड़ के अन्य गाँवों में भी जाता था।"

उस समय जयन्त मौन था। वह हिम-शृंग को देख रहा था। उसे लग रहा था कि चारों ओर जैसे प्रकृति अपना शृंगार करके नवोढ़ा बनी

खड़ी है। वह अपने समीप अपने किसी भी पुरुष का स्वागत करने के लिए प्रस्तुत है। अहा ! कितना भव्य और अलौकिक दृश्य था वह !

तभी प्रोफेसर बोला, "जयन्त भाई, इस जगत में सभी अपने हैं। आवश्यकता इस बात की है कि पहले यह समझ लिया जाए कि हम जिस जगत में रहते हैं, वहाँ कोई गैर नहीं है, हमारा किसी से दुराव नहीं, किसी से छिपाव नहीं।"

जयन्त बोला, "प्रोफेसर साहब, ऐसा बनना भी कठिन है।"

तुरन्त ही प्रोफ़ेसर ने कहा, "हाँ, हाँ, यही तो ! लोग अपना अधिकार, धन, बुद्धि सभी सुरक्षित रखना चाहते हैं। और कहते यह हैं कि हम सामाजिक हैं, हम धार्मिक हैं, हम सदाशयता से पूर्ण...अरे, नहीं, नहीं, सभी अपूर्ण हैं, सभी अकेले हैं, सभी भय और विपत्तियों से भरपूर बने दीखते हैं। समझते हो न, मैं तुमसे छिपाव करता हूँ, तुम मुझसे। इसलिए समीप रहकर भी हम दूर हैं, एकाकी हैं, अशान्त हैं, बर्बर हैं, अपने-आप में आत्महीन हैं।"

जयन्त ने कहा, "प्रोफेसर साहब, यह कैसे हो ? सभी की अवस्था तो अलग है।"

प्रोफेसर बोला, "नहीं, नहीं, यह दुराव इसलिए है कि मैं जीवन की दौड़ में तुमसे आगे निकलना चाहता हूँ, मैं जीवन का ऐश्वर्य और भोग तुमसे अधिक पाना पसन्द करता हूँ। लोग जिस समाजवाद की कल्पना करते हैं वह कहीं नहीं है, परन्तु तुम चलकर देखो यह उस गाँव में है। वहाँ किसी का छिपाव नहीं, किसी का भेदभाव नहीं।"

जयन्त गम्भीर बना था। बोला, "वे लोग सुख में हैं। सन्तोषी हैं।"

"किन्तु ये शहराती लोग उनके उस सुख में भी व्याघात करते हैं।" प्रोफेसर ने कहा, "एक बार कोई शहराती उस गाँव में जा पहुँचा था और वहाँ की एक युवा लड़की को ·"

जयन्त बोला, "शहर वाले इन पहाड़ों में आकर ऐसे ही ज़हरीले कीड़े फैलाते हैं।"

"पाप करते हैं, ये लोग।" प्रोफेसर ने कहा, "इसी से ये गाँववासी अब शहरवालों से डरते हैं। अपने यहाँ ठहराने में कतराते हैं। पता है, जब मैं प्रथम बार उस गाँव में पहुँचा तो मुझे भी लोगों ने संदेह की

दृष्टि से देखा था। कोई पास आते भी कतराता था, किन्तु मैं तो धी
धीरे उनका सखा बन गया।"

उसी समय वे दोनों गाँव के समीप पहुँच गये। जब वे एक खेत
पास से निकले, तो उस खेत में काम करते हुए किसान को देख, प्रो
सर रुका और उसने उस व्यक्ति को पास बुलाया। शायद उसने प्रोफे
को नहीं पहचाना था। इसलिए प्रोफेसर ने स्वयं ही कहा, "अच्छे ह
खुश हो!"

आवाज़ पहचानी तो वह किसान प्रोफेसर की ओर झुक गया
उसने कहा, "मैं आपको पहचान नहीं सका था।"

प्रोफसर हँसा, "हाँ, अब मैंने दाढ़ी बढ़ा ली है और मेरे सिर प
टोप है।"

किसान ने हँसकर कहा, "हाँ, हाँ, इसीलिए।"

"प्रोफेसर ने पूछा, "और लोग गाँव में सब ठीक तो हैं?"

"जी, कृपा है, आप भी चलिए। मैं अभी आया।"

प्रोफेसर बोला, "तुम अपना काम करो।" यह कहते हुए वह च
दिया। तभी प्रोफेसर ने जयन्त को बताया कि यदि किसी को अप
बनाना हो तो सर्वप्रथम उस जैसे बनो। वह बोला, "मैं इस गाँव में इ
किसानों के साथ खेतों में काम कर चुका हूँ। उसमें मुझे आनन्द आय
है, इनको भी।"

जयन्त ने कहा, "मनुष्य की यह परम्परा पुरानी है। पर अब मनुष
बदल चुका है। अपने को श्रेष्ठ मानता है।"

कठिन भाव में हँसकर प्रोफेसर ने कहा, "हाँ, भाई, ठीक है!
वह बोला, "यदि मैंने चार अक्षर पढ़ लिए तो इसके यह अर्थ नहीं कि
मैं समाज का गुरु बन गया। यदि मेरे पास पैसा है तो उससे भी
विशेष नहीं बना। पर आज यही देखा जाता है। मनुष्य इसी दम्भ
डूब गया है। जानते हो, इससे आदमी ने बहुत-कुछ खोया है, पाया कु
नहीं। मनुष्य अपने जीवन की समूची सम्पदा खो चुका है। आज हम जि
भौतिक पदार्थों को पाकर सुखी हैं, वह केवल ठीक ऐसा है कि जैसे परे
शान व्यक्ति नशा कर ले और कुछ क्षणों के लिए अपनी वास्तविकत
भूल जाए। सब जानते हैं कि ये पदार्थ हमारी मौत को निमन्त्रण दे

हैं, जीवन का आवाहन नहीं करते।"

दोनों गाँव में प्रविष्ट हो गये। जब वे एक मकान के द्वार पर जाकर रुके तो प्रोफेसर ने घर के मालिक को आवाज़ दी। उत्तर में एक लड़की बाहर आई जिसे देख प्रोफेसर ने जयन्त से कहा, "यही है वह लड़की। पर अब पहचानती नहीं है।" उसने लड़की से पूछा, "तेरा चाचा है?"

लड़की ने कहा, "नहीं, खेत पर है।"

"और माँ?"

"वह है। तुम कौन हो?"

"जाओ, अपनी माँ से कहना शहर से मास्टरजी आये हैं।"

सुनकर लड़की मुड़ गई। कुछ ही देर में लड़की के साथ एक स्त्री आई और उल्लसित तथा चकित बनकर बोली, "अरे, तुम मास्टरजी!"

"हाँ, मैं हूँ नर्वदा की माँ! कहाँ है, मलखू?"

"वह खेत पर हैं। आते होंगे, बैठो। अन्दर आ जाओ।"

प्रोफेसर ने कहा, "अब अन्दर कैसे आएँ, यह नर्वदा तो बड़ी हो गई। पहचानती नहीं। हमें तो यहीं बाहर चारपाई डाल दो।"

उस नारी ने तभी नर्वदा से कहा, "इन्हें राम-राम कर! ये मास्टरजी हैं। तुझे खिलौने और मिठाई देते रहे हैं। तुझे गोद में···"

किन्तु नर्वदा लजा गई, बोल नहीं सकी। उसके गोरे गालों पर भी लाली दौड़ गई।

चारपाई डाल दी गई और वे दोनों बाहर बैठ गये। उसी समय एक-एक करके और कई व्यक्ति आ गए। मलखू भी आ गया। बातें चलीं। प्रोफेसर ने सभी के घर की बात सुनी, अपनी भी कही। उसने बता दिया कि इस बीच में उसकी पत्नी गई, पुत्री भी चली गई। अब वह अकेला है। इसी प्रकार जब उसने गाँव के कई व्यक्तियों के विषय में जानना चाहा तो पता चला कि दीना मर गया, पल्टू भी, रामसुक्खा बीमार है और चेतू गाँव छोड़कर शहर चला गया है। इस प्रकार प्रोफेसर ने सहज ही समझ लिया कि केवल उसी की परिस्थिति में परिवर्तन नहीं हुआ, इस छोटे-से गाँव में भी बहुत-कुछ बदल गया है। कुछ पुरानापन गया है, कुछ नयापन आया है। विश्व के समान, यहाँ भी

पीड़ा है, अभाव है। दुर्बल इन्सान अपनी डगर पर चले जा रहा है, चलता ही जा रहा है।

जब एक-एक कर सभी व्यक्ति वहाँ से उठ चले, तो तभी प्रोफेसर ने जयन्त को सुनाया कि ये लोग जो तुम्हें ऊपर से नंगे और दीन दिखाई देते हैं, वास्तव में भगवान के प्रति किसी भी विद्वान् और स्थितप्रज्ञ व्यक्ति से कम इनके प्राणों में आस्था नहीं है। ये भी धर्म, देश और जाति को मानते हैं। वह बोला, "यह मलखू महायुद्ध की लड़ाई में भाग ले चुका है। इसके पिता को अंग्रेज़ों ने फाँसी पर चढ़ा दिया था, क्योंकि उसने एक अंग्रेज़ अफसर के साथ आए पूरे पचास गोरों को मौत के घाट उतार दिया था।"

एकाएक जयन्त ने कहा, "ओह ! वह बहादुर था।"

प्रोफेसर बोला, "ये लोग शेर से नहीं डरते। विपत्ति का वरण करते हैं। प्रकृति की गोद में पले ये इन्सान अपना सर्वस्व भगवान के चरणों में समर्पित किये रहते हैं। ये अटूट विश्वासी हैं। स्वयं देवता हैं तो दूसरों को भी देवता मानते हैं। यह मलखू पेंशन पाता है। खेत जोतता है। लड़ाई पर इसे कई तमगे मिले थे। उनको लगाकर कभी-कभी शहर जाता है। अधिकारियों द्वारा इसका सम्मान किया जाता है।"

उसी समय मलखू एक रकाबी में कुछ फल लाया, साथ में चाय भी थी।

देखकर प्रोफेसर ने कहा, "मलखू भाई, तू बैठ जा। बात कर। कुछ अपनी सुना, कुछ हमारी सुन। देखता हूँ अब तू बूढ़ा हो गया है। और सुना है, वह शारदा माँ अभी जीवित है ?"

मलखू ने कहा, "जी हाँ, अभी है, परेशान है। अब चारपाई पर पड़ी रहती है। चल-फिर कम पाती है।"

प्रोफेसर ने कहा, "वह भली औरत है।" यह कहते हुए उसने झोले में से कुछ मिठाई निकाली और खिलौने भी। वे सब मलखू के हाथ पर रखकर बोला, "किसी के घर में बच्चा हो तो ये खिलौने दे देना। अब तेरी शारदा तो…"

मलखू ने कहा, "जी हाँ, अब बड़ी हो गई।"

प्रोफेसर ने कहा, "उसने मुझे नहीं पहचाना। मेरा रूप भी बदल गया। जब मेरा घर बदला तो मैं भी बदल गया।"

मलखू ने कहा, "बाबू, भगवान की मर्ज़ी है। आपकी लड़की तो बड़ी भली थी।"

"अरे, हाँ, वह प्रमदा मुझे अब भी याद आती है।" प्रोफेसर ने कहा, "भैया, इन्हीं विविध अवस्थाओं में आदमी बँटा है, बँधा है। इस इन्सान का मन अनेक झरोखों से अपना मुँह निकालता है, जीवन देखता है। बोल, तू नर्वदा का विवाह कब करेगा? मुझे खबर देना। मैं आऊँगा। इस बहाने भी इधर घूम जाऊँगा।"

मलखू ने कहा, "बाबू, इसी की चिन्ता है। लड़का देख रहा हूँ। अगले साल कर देना है।"

प्रोफेसर खड़ा हो गया और बोला, "मैं शारदा माँ के पास जाऊँगा। एक बार उसके पैर छुऊँगा।"

जयन्त को साथ लेकर प्रोफेसर चल दिया। मलखू ने कहा, "खाना बन रहा है, देर न कीजिएगा।"

प्रोफेसर ने कहा, "अच्छा!" रास्ते में उसने जयन्त को बताया कि हम जहाँ चल रहे हैं, वह एक वृद्धा का घर है। उसका नाम शारदा माँ है। एक प्रकार से वह समूचे गाँव की माँ है। सभी की ममतामयी है, दूसरे के दु:ख को उसने सदा अपना समझा है। जैसे दूसरे की आँखों के आँसू उसकी अपनी आँखों के हों।"

जयन्त बोला, "वह अपूर्व है, पूजनीय है।"

प्रोफेसर बोला, "समूचा गाँव उसके चरणों में सिर झुकाता है। उसका अपना कोई नहीं है, लेकिन अब सारा गाँव ही उसका है। यह है, उस शारदा माँ का घर! आओ, अन्दर चलें। देखें।"

अन्दर जाते ही एक चारपाई को लक्ष्य कर प्रोफेसर ने पुकारा, "शारदा माँ!"

क्षीण स्वर में शारदा माँ ने कहा, "कौन है, बेटा?"

"मैं हूँ मास्टर अतुल।" और पास जाते ही प्रोफेसर अतुल ने अपना सिर उस वृद्धा के चरणों में झुका दिया।

आठ

प्रोफेसर अतुल ने शारदा माँ के चरणों में अभिवादन किया और उसके समीप धरती पर बैठ गया। वहीं जयन्त को बैठाया। प्रोफेसर शारदा माँ से बात कर रहा था और जयन्त देख रहा था कि उस घर में ऐसा कोई सामान नहीं था कि जिसे देखकर यह समझा जाए कि वह किसी का घर था। जब प्रोफेसर वहाँ से चला तो उसने कुछ रुपये शारदा माँ के हाथ पर रखे और कहा, "माँ, जानता हूँ, इनका तुम्हारी दृष्टि में कोई मूल्य नहीं, लगाव नहीं; पर अपनी आदत के अनुरूप ये रुपये तुम किसी को दो तो मुझे भी सन्तोष होगा।"

इतना सुना तो शारदा माँ तनिक मुस्कराई और अपनी बूढ़ी आँखों से हँस दिया।

प्रोफेसर ने कहा, "तुमने बहुत ज़माना देखा है, शारदा माँ!"

शारदा माँ ने कहा, "मुझे लगता है कि सब-कुछ अभी-अभी बीता है। कल ही मैं इस धरती पर आई और आज बुढ़ापा मिल गया। समय जाते पता नहीं लगता।"

"हाँ, हाँ, जो बीत गया वह छोटा लगता है।" प्रोफेसर ने फिर शारदा माँ के पैर छूए और चल दिया।

जब वह बाहर आया तो जयन्त से बोला, "कुछ समय की बात है कि एक बार यहाँ कुछ गोरे आ गये थे। वे एक लड़की को उठाकर ले जाना चाहते थे। पर इस शारदा माँ ने इतनी बहादुरी दिखाई कि वे सब निःशक्त बनकर लौट गये। तब यह शारदा माँ जवान थी। एक गोरे की बन्दूक छीनकर उनसे लड़ने लगी थी। एक सिपाही की गोली इसके भी लगी थी, किन्तु इसने हिम्मत न हारी। मरना स्वीकार किया, पर गोरों को अपने घर में नहीं घुसने दिया। वह लड़की भागकर इस शारदा माँ की शरण में आ गई थी।"

जयन्त ने साँस भरकर कहा, "इस धरती पर कुछ ऐसे प्राणी भी आते हैं जो बरबस दूसरों का उपकार करने में सफल बनते हैं।"

प्रोफेसर बोला, "यह संस्कारों की बात है। इस शारदा माँ का पति और पुत्र देश के काम आ गये। परन्तु यह कभी बोली नहीं; सदा

दूसरों के लिए समर्पित रही। परिणामस्वरूप, गाँव के प्रत्येक घर की माँ बन गई।''

वे दोनों लौटे तो देखा, मलखू उनकी प्रतीक्षा में था। उसने दोनों को भोजन कराने के लिए बैठाया। रोटी के साथ केवल साग था परन्तु उन्हें खाते समय जयन्त को लगा कि जैसे उस भोजन में स्वर्गीय आनन्द मिल रहा है। दिन ढल गया था। दोनों को लौटना था। अतएव, जब उन्होंने मलखू से विदा ली तो उस समय पड़ौसी भी आ गये; उनमें बच्चे भी थे। प्रोफेसर ने उन बच्चों को पैसे दिये और वह उन सबसे विदा लेकर, जयन्त के साथ फिर अपने रास्ते पर चल पड़ा। सूर्य पहाड़ की ओट में जा रहा था, इसलिए उन्हें रास्ता जल्दी पार करना था। किन्तु रास्ते में वे दोनों जिस प्रकार का प्रसंग उठाये हुए थे, वह उनका रास्ता बढ़ा रहा था। आश्चर्य की बात कि उनका ध्यान भी उस ओर नहीं था। प्रोफेसर कह रहा था, ''उस शारदा माँ को देखकर कोई ऐसी कल्पना भी नहीं कर सकता कि उसके एक छोटे-से जीवन का इतना बड़ा इतिहास बन सकेगा। तुमने देखा कि उसके पास कुछ नहीं था। मानो उसकी कोई इच्छा नहीं। और जीवन उसका भी कट रहा है। वह जीवन-गंगा की धारा के समान सभी को कुछ-न-कुछ देने में समर्थ है।''

जयन्त ने साँस भरी और कहा, ''प्रोफेसर साहब, ऐसे ही प्राणी पुण्य हैं।''

तुरन्त ही प्रोफेसर बोला, ''मैं यहाँ यही पाने आता हूँ। इस शारदा माँ को देख मैं अपने को तुच्छ मानता हूँ। इसका दर्शन करके पुण्य का संचय करता हूँ।

जयन्त ने कहा, ''यह सत्य है। शारदा माँ पुण्य-तीर्थ है।''

प्रोफेसर ने कहा, ''हम दम्भी हैं, भोगवादी हैं, निरे अवसरवादी। बोलो, समाज से लेने के अतिरिक्त हमसे दिया क्या जाता है?''

अब तक सूर्य पहाड़ की ओट में जा चुका था। वे दोनों जिस मकान में ठहरे थे वह अभी दूर था; परन्तु दिखाई देने लगा था।

प्रोफेसर और जयन्त उस समय मौन हो गये। ठण्ड बढ़ गई थी। प्रोफेसर ने कन्धे पर पड़ा कोट पहन लिया था। वह चलता जाता था और हाथ में ली हुई पहाड़ी बेंत को रास्ते में पड़े हुए पत्थरों पर मारता

जाता था । इससे स्पष्ट था कि वह प्रोफेसर अपने मस्तिष्क में कुछ लिए था । किसी भारी बात से उलझ गया था । उन दोनों ने पहाड़ की एक चोटी को पार कर लिया, परन्तु किसी ने कुछ नहीं कहा । आपस में बोले नहीं । उसी समय उनका मकान समीप आ गया ।

तभी एक बड़ी चट्टान के पास रुककर प्रोफेसर ने अपने से बढ़ते हुए जयन्त को आवाज़ दी और कहा, "सुनो, जयन्तजी ! अभी घर में बैठकर क्या करोगे, यहाँ बैठो, इस पत्थर पर ! मैं इस पर अनेक बार बैठा हूँ । यह विशाल पत्थर भी मेरी बहुत-सी स्मृतियों का केन्द्र है, गवाह है । यहाँ जब कभी मैं अकेले में बैठा हूँ तो अनायास रोया हूँ और जब कभी पत्नी के साथ बैठा, तो हँसा भी हूँ । प्रकृति के इस विराट रूप के दर्शन करके मैं सचमुच, जीवन का अलौकिक आनन्द पाने में समर्थ हुआ हूँ, जयन्त भाई !" यह कहते हुए प्रोफेसर उस पथरीली शिला पर बैठ गया ; वहीं जयन्त भी बैठ गया ।

जयन्त ने कहा, "प्रोफेसर साहब, आपका जीवन भी बदल गया । आपकी वह स्नेहमयी पत्नी···वह पुत्री···"

प्रोफेसर ने कहा, "रे, भैया ! मैं उन्हें याद करके रोता नहीं बल्कि आनन्द पाता हूँ । मैं यह समझकर सुख पाता हूँ कि पत्नी और पुत्री के रूप में मैंने नारी के दो रूप देखे । एक में गम्भीरता देखी, दूसरे में अल्हड़ भाव ।"

जयन्त ने कहा, "फिर भी आपके जीवन में सूनापन आ गया है ।"

प्रोफेसर विरक्त भाव से मुस्कराया, "यह तो आना ही था, किसी दिन पत्नी को जाना ही था, या पहले···"

जयन्त बोला, "देखिए, वहाँ कोई जानवर है । उसकी लाल-लाल आँखें हमें देख रही हैं ।"

प्रोफेसर ने कहा, "हाँ, मुझे भी दीखता है । लेकिन यह हमारे पास नहीं आएगा । जानवर भी डरता है । इस संसार की यही परम्परा है ।"

जयन्त ने कहा, "सभी एक-दूसरे से डरते हैं ।"

प्रोफेसर ने कहा, "एक बार जब मैं पत्नी और पुत्री के साथ इस पथरीली शिला पर बैठा था तो तभी इस पत्थर के नीचे से एक साँप निकला और हमारे देखते-देखते भाग गया था । साँप काफी बड़ा था

वह नितान्त काला था।"

जयन्त बोला, "पहले से शायद बैठा होगा।"

"हाँ, भाई ! वह बैठा था। हमारी आवाज़ सुनी तो डरकर भाग निकला।" प्रोफेसर ने कहा, "उसे देखते ही पत्नी चीख पड़ी, पुत्री भी सकपकाई, पर मैं तो तब ठहाका मारकर हँस पड़ा था। मेरे मन में उस समय एक ही बात आई कि यह जगत् मिथ्या धारणाओं और आशंकाओं का पुञ्ज है, और कुछ नहीं।"

उसी समय जयन्त के मन में पीछे छूटे हुए गाँव की बात आई। उसकी आँखों के समक्ष एकाएक मलखू की लड़की आ खड़ी हुई, बड़ी स्नेहमयी, सरल और सुन्दर आकृति की। उसे देख, जयन्त के मन में विचार उठा कि वन-पर्वतों की जो सौन्दर्य-सुषमा है वह लड़की उसी का प्रतिरूप होगी। उसी ने जयन्त और प्रोफेसर को खाना खिलाया था। वह देख नहीं पाती थी, लजाती ही रही थी। इस बात के मन में आते ही जयन्त ने कहा, "आपका चिर-परिचित मलखू और उसका परिवार भी मुझे सलोना लगा। उसकी लड़की सचमुच देवी-सदृश थी।"

प्रोफेसर ने कहा, "लड़की अपनी माँ पर गई है। उसकी माँ भी सुन्दर है, पतिव्रता है।"

जयन्त ने बात सुनी तो मौन रह गया। वह उस 'पतिव्रता' शब्द पर अटक गया।

किन्तु प्रोफेसर ने स्वतः ही कहा, "जिस समाज का व्यक्ति चरित्रवान् नहीं तो वहाँ की नारी भी नहीं। यह परस्पराश्रित बात है।"

जयन्त को जैसे अवसर मिला, वह बोला, "पुरुष मदान्ध है, वह केवल नारी से आशा करता है कि वह चरित्रवती हो।"

अपने स्वर पर ज़ोर देकर प्रोफेसर ने कहा, "यह नहीं हो सकता, मेरे भाई ! जो वैभव से भरे घर हैं उनमें यही होता है। धन का दुरुपयोग आदमी अपने जीवन के प्रत्येक अंग में करता है। उसका अभिशाप आदमी को भोगना पड़ता है।"

जयन्त ने कहा, "निर्धन का चरित्र ऊँचा होता है। उसे ठगा जाता है। मूर्ख बनाया जाता है।"

"हाँ, भाई ! नगर के गन्दे आदमी इन पहाड़ों में आते है और पैसे

की चमक दिखाकर यहाँ के लोगों को ठगते हैं। अब तो अवस्था यह है कि यहाँ के लोग ही दलाली करते हैं, अपने पड़ोसियों की बहू-बेटी का क्रय-विक्रय करते-कराते हैं।"

"राम-राम !" छूटते ही जयन्त बोला, "आदमी सचमुच ही निर्मम है, कृतघ्न है।"

प्रोफेसर ने कहा, "आदमी पथ-भ्रष्ट है। जन्मजात निकम्मा है।" कहते हुए प्रोफेसर खड़ा हो गया। वह जयन्त के कन्धों पर हाथ रख, अपने मकान की ओर चल दिया। जब वे दोनों मकान के एक कमरे का ताला खोलकर अपने-अपने बिस्तरों पर बैठे तो प्रोफेसर ने कहा, "इस सुन्दर प्रकृति की गोद में आकर लोग सुन्दर अनुभूति का सृजन नहीं करते, दुर्गन्ध फैलाते हैं, शराब के दरिया में डूबते हैं।"

जयन्त ने कहा, "यह परम्परा देर से है। पैसे की देन है।"

प्रोफेसर ने अपना कोट उतार दिया और उसे खूँटी पर टाँग दिया। जब वह अपने बिस्तर पर बैठा, तो जयन्त की बात सुन एकाएक तिल-मिला गया। उसके मानस में ज़हरीला धुआँ घुट गया। वह उसी अवस्था में बोला, "रे, जयन्त ! यह जघन्य लीला हमारे पुरखों ने ईजाद की है। राजमहलों में इसका जन्म हुआ है। हम नारी को देवी कहते हैं, लक्ष्मी की संज्ञा से विभूषित करते हैं। पर सच यह है कि हमारा मन सदा नारी के अंगों को लूटने के लिए सक्रिय रहा है। पुरुष ने अपनी बुद्धि का अधिकांश उपयोग इसी दुर्गन्धमयी अवस्था में किया है।"

जयन्त कमरे के बाहर फैले अन्धकार में दृष्टि फैलाता हुआ बोला, "यही आदमी का मनोरंजन है, आस्था है।"

प्रोफेसर ने लाल बनकर कहा, "यह भ्रष्ट है, गलत परम्परा है।"

जयन्त अब और कुछ कहने की स्थिति में नहीं था; प्रस्तुत विषय उसकी दृष्टि में काफी विवादग्रस्त था। इस विषय में उसका अनुभव भी कुछ नहीं के बराबर था। और उसकी सबसे बड़ी कमज़ोरी यह थी कि जिस व्यक्ति से वह बात सुन रहा था वह उसका कालेज का प्रोफेसर था, जिसके प्रति उसमें आदरभाव भी अधिक था।

किन्तु तभी प्रोफेसर ने फिर कहा, "जयन्त भाई, यह आदमी दुर्बल प्राणी है। नारी भी ऐसी है। इनके शरीर की भूख जब अपना मुँह

खोलती है तो दोनों को मूर्ख बना देती है। और मेरा मत यह है कि ऐसी अवस्था उन्हीं लोगों की होती है कि जिनके समक्ष जीवन की कोई समस्या नहीं, लक्ष्य नहीं।"

एकाएक जयन्त ने कहा, "यह अवस्था सभी को पथ-भ्रष्ट करती है। यह शरीर की भूख···"

प्रोफेसर ने कहा, "हाँ, हाँ, यही बात है।"

उसी समय, पास के होटल का आदमी आया और बोला, "बाबूजी, खाना लाऊँ ?"

प्रोफेसर ने कहा, "ले आओ।" और वह मुँह-हाथ धोने के लिए दूसरी ओर चल दिया।

तभी जयन्त ने भी दिन के कपड़े उतार दिये, रात के लिए पाजामा और कमीज़ पहन ली। जब प्रोफेसर तौलिये से मुँह पोंछता हुआ लौटा तो वह भी उसी ओर बढ़ गया। गुसलखाने में मुँह-हाथ धोते हुए जयन्त के मन में बरबस ही बात आई और सोचने लगा, 'यह प्रोफेसर भी खूब है, असाधारण है ! जाने यह आदमी किन तत्वों से बना है। यह जो कुछ बाहर है, वही अन्दर है। निरा निर्मल और साफ दिखाई देता है।'

जब वह फिर कमरे में पहुँचा तो उसे देखते ही प्रोफेसर ने कहा, "मैं कालेज से छूटूँगा, तो इसी गाँव में आऊँगा।"

जयन्त ने कहा, "आप क्या यहाँ रह सकेंगे ?"

प्रोफेसर बोला, "मुझे इसमें सुख मिलेगा। मेरे सभी परिचित हैं, मैं उनमें और अधिक घुल-मिल जाऊँगा।"

जयन्त ने कहा, "यह सत्य है, जीवन को चलाने के लिए अधिक झंझट नहीं चाहिए और न ही अधिक फैलाव।"

प्रोफेसर बोला, "लोग समाज में फैलना चाहते हैं, जीवन का विस्तार करना पसन्द करते हैं, पर मेरा खयाल है कि जितने झरोखों से आप झाँकोगे उतना ही उलझाव अपनी दृष्टि में और मन में पाओगे। आज विज्ञान का युग है, तो दुनिया फैल गई है सजीली बन गई है। चकाचौंध में खो गई है। पर मेरा खयाल है कि आदमी की यही विपत्ति है, भूल है। ज़िन्दगी जितनी फैलती है उतनी ही कमज़ोर होती है। इच्छाएँ इतनी बढ़ जाती हैं कि आदमी की मौत···"

एकाएक खुले स्वर में जयन्त ने कहा, "यह सत्य है। यह परम्परा कठोर और निर्मम है।"

उसी समय होटल का आदमी दो थालों में खाना ले आया। दोनों खाने बैठ गए।

खाना खाते हुए प्रोफेसर ने कहा, "जयन्त जी, जीवन में यदि सुख पाना हो, सन्तोष देखना हो तो एक गुरु-मंत्र स्वीकार करो कि उपकार की वृत्ति तुम्हारी प्रबल हो। स्वार्थ-संचय की भावना कम-से-कम हो। ऐसा आदमी निर्भय रहेगा; मन और मस्तिष्क से शान्त रहेगा। यही जीवन का मूल-मंत्र है!"

जयन्त बोला, "निस्सन्देह!"

प्रोफेसर ने कहा, "हम गाँव में अधिक समय नहीं रहे। तुम साथ थे इसलिए मैं आज ही लौट आया। अकेला होता, तो रहता। मैं वहाँ युवा स्त्रियों के मध्य भी बैठ चुका हूँ। उनसे हँसा हूँ, बोला हूँ। पर मुझे कभी भी ऐसा आभास नहीं मिला कि वे नारियाँ मुझे देखकर हँसी या मुस्कराई हों। वह इसलिए कि मैं उनकी शारीरिक भूख मिटाने के लिए सन्नद्ध था। भाई, मुझे कभी भी किसी नारी में ऐसा भाव नहीं दिखाई दिया। और यह सत्य है. यह दुर्गन्ध पहले अपने मन में पैदा होती है, वह फैलती है, सड़ाँद पैदा करती है। कल प्रात: उठोगे तो तुम्हें एक ऐसे स्थान पर ले चलूँगा कि जहाँ पहुँचकर तुम सहज ही समझोगे कि पुरुष दम्भी है, तो निर्मम भी है। मैं तुम्हें एक ऐसी नारी को दिखाऊँगा कि इस पहाड़ पर आये एक राजा के आदमियों ने न केवल उस नारी के आदमी को मार दिया, अपितु उस नारी के अंगों को भी काट देने का प्रयत्न किया और उसका एक हाथ कटा है, एक पाँव भी, परन्तु उसने उन क्रूर व्यक्तियों की मदान्ध इच्छा के समक्ष आत्म-समर्पण नहीं किया। वह अब एक हाथ से ही मज़दूरी करती है और अपना जीवन चलाती है। मुझे आज ही उसके पास जाना था पर अब कल अवश्य जाऊँगा। मैं उस नारी के चरणों में भी एक बार और अपना सिर झुकाऊँगा।"

नौ

कमरे में अँधेरा था और द्वार बन्द, किन्तु किसी आहट से एकाएक ही जयन्त की आँख खुली तो उसने बिजली का स्विच दबा दिया। कमरे में प्रकाश हो गया। तभी उसने देखा कि प्रोफेसर का बिस्तर खाली है। यह देख उसको विस्मय हुआ। उसने यह देखा कि कमरे के दरवाज़े में जो कुण्डा अन्दर से बन्द था वह भी खुला है। इतना देखकर ही जयन्त ने समझ लिया कि प्रोफेसर कहीं गया हुआ है। उसकी छड़ी और चेस्टर भी वहाँ नहीं थे। किन्तु वह कहाँ गया है, यह बात बार-बार जयन्त के मन में आती और उसे कुरेदती। यह सत्य था कि पहले ही से जयन्त के मन में यह बात जमी थी कि यह प्रोफेसर निरा अनोखा आदमी है। उस पर्यटन में विशेष रूप से उसकी यह धारणा स्थिर हो गई थी। अतएव, जयन्त स्वयं उठ बैठा। उसने गरम कोट पहन लिया, हाथ में बेंत ले ली और वह कमरे के बाहर निकल दूर तक फैले अन्धकार में देखने का प्रयत्न करने लगा। किन्तु उस समय तो सामने का पर्वत भी दिखाई नहीं देता था। तब जयन्त कहाँ जा— ! प्रोफेसर को कहाँ खोजे ! जैसे-कैसे भी वह प्रोफेसर के पास पहुँचना चाहता था। यह उसकी अनोखी जिज्ञासा थी, जो उसे बरबस्मी लिए रही थी; उद्वेलित बना रही थी।

वैसे जयन्त को पता था कि उस मकान के निकट जो दूसरा मकान है वहाँ प्रोफेसर कई बार आया-गया है। प्रोफेसर ने इसका कभी स्पष्ट उल्लेख तो नहीं किया परन्तु ऐसा आभास उसे अवश्य मिला कि वहाँ कोई प्रोफेसर का पूर्व परिचित है। वह बीमार है। जयन्त ने कमरे का आगे से कुण्डा चढ़ा दिया और वह उस फैले हुए अन्धकार में उसी ओर बढ़ गया। जब वह उस ओर चला तो कुछ दूर चलते ही एक पत्थर से टकराया और गिर पड़ा। किन्तु जयन्त ने इस बात का ध्यान नहीं किया कि उसके किसी अंग में चोट लगी है। वह उठा और फिर आगे बढ़ने लगा। उस मकान के द्वार पर जाते ही उसने देखा कि अन्दर एक कमरे में धुँधला-सा प्रकाश है। मिट्टी का दीया जल रहा है जिसकी कालिख उस समूचे स्थान में फैल गई है। वहीं जयन्त ने देखा कि सच, प्रोफेसर है, वह एक चारपाई के पास बैठा है। जयन्त दूर था, दरवाज़े पर खड़ा

था इसलिए वह और आगे बढ़ा और उसी कोठरी के समीप जा खड़ हुआ। तभी वह स्पष्ट देख पाया कि उस चारपाई पर एक नारी है जिसके बाल श्वेत हैं, शरीर कृश और दुर्बल। उसका स्वर भी अतिशय क्षीण सुनाई देता है, किन्तु प्रोफेसर उसी दुर्बल नारी के सिर पर हाथ फेर रहा है और कह रहा है, "जो गत हो गया, बीत गया, अब उसे याद करके क्या मन को सुख मिलेगा ! तुम धीरज रखो, मन शान्त रखो।"

किन्तु तभी, जैसे तड़पकर उस नारी ने कहा, "अरे, अतुल ! तुम पत्थर हो···पत्थर ! तुम नारी का मन नहीं समझते ! तुम नहीं जानते कि नारी भी अपने मन में कोई बात रखती है, उसे मानती है, उसकी पूजा करती है।"

प्रोफेसर अतुल ने कहा, "मैं मानता हूँ। ऐसी कल्पना सहज में कर सकता हूँ।"

"नहीं, तुम कुछ नहीं करते ! तुम इस पहाड़ पर घूमने आते हो और लौट जाते हो। पर मैं सदा सोचती हूँ कि तुम मुझे उस तेज़ धारा से न निकालते तो अच्छा था। मेरा प्राणान्त हो जाता। जानते हो, मैंने आज तक तुमसे कुछ नहीं कहा। तुम मुझे गुज़ारे के लिए रुपए भेजते हो, वह न भेजते तो ठीक [illegible] भूखी रहकर मर तो जाती। यों तुम्हारा आभार न मानती। [illegible] अन्तर्मन में तुम्हारी पूजा करती हूँ।"

"ओह, पगली नर्वदा ! तू तो सच, नर्वदा नदी के समान गहरी बन जाना चाहती है। मुझे अपने इन आँसुओं में डूब जाने का निमन्त्रण देती है। देख तो, तू बीमार है, मृत्यु के समीप है।"

नर्वदा ने तब भी जैसे आहत बनकर कहा, "अतुल बाबू, हाँ ! अब मैं मृत्यु के समीप हूँ। मर जाने वाली हूँ। पर जानते हो, मैं ग़रीब हुई और बदसूरत हुई तो क्या, मन में मेरे भी एक लालसा रही है। मैं भी अपने पिया की छाती पर सिर रखकर उसके प्राणों की सुहावनी साँसें सुनने की आकांक्षिणी बनी रही। पर मेरा कौन पिया बनता, कौन मेरा वरण करता, कौन मेरे पास आता···मैं बच्ची से जवान हुई और फिर बुढ़िया। आज बात चली, तुम्हारी उँगली मेरी हृदय-तन्त्री पर पड़ गई, तो यह बज उठी। यह आज भी अपने टूटे-फूटे स्वर निकालने में समर्थ

हो गई। मैं कहती हूं तुमसे कुछ बोल नहीं सकी, कह नहीं सकी तो क्या, पर तुम्हारी पूजा मैं इस जीवन-भर में करती रही हूँ।"

आश्चर्य है कि नारी के प्रति उदासीन और निस्पृह भाव रखने वाला वह प्रोफेसर एकाएक उस वृद्धा की चारपाई पर झुक गया, वह उसके होठों के समीप जाकर, उसकी साँस लेता हुआ, अत्यन्त भावना भरे स्वर में बोला, "नर्वदा, मैं तेरे समक्ष प्रस्तुत हूँ। तुझे मैंने जीवन में कोई पीड़ा दी हो तो मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।"

किन्तु उस वृद्धा ने तुरन्त अपना मुँह फेर लिया और कहा, "राम-राम, अब कैसा अभिनय करने चले हो तुम! जो दीपक बुझ रहा है उसे जलाने की बात सोचते हो। अपना मुँह दूर रखो। जानते तो हो कि मुझे तपेदिक है, यह डायन मुझे तिल-तिल करके काट रही है, दीमक की तरह चाट रही है, कैसा है यह मेरा जीवन!"

लेकिन प्रोफेसर तो उस समय सचमुच ही भावना में डूब गया था। वह उसके पैरों पर अपना सिर पटककर बोला, "नर्वदादेवी, मैं तुम्हारा अपराधी हूँ।"

नर्वदा ने फिर अपने पैर हटा लिये और चीखकर कहा, "ओह, आज तुम सचमुच ही मुझे मार दोगे। और मैं तुमसे कहे देती हूँ कि मेरे ये प्राण कदाचित् इसीलिए रुके थे कि तुम आ जाओगे। सो, अब आ गये हो, तो मैं तुम्हारे कन्धों पर चढ़कर ही श्मशान में जाऊँगी। तुम ही मेरी चिता सजाओगे। अब तुम जाओ अपने घर। रात बहुत हो गई है। तुमने नींद भी नहीं ली। तुम अधिक दिन तक जीवित रहो, मैं मरते समय यही कामना लेकर जाऊँगी। मैं अपने मन में सदा यह बात रखूंगी कि अगर भगवान ने मुझे फिर औरत बना दिया तो तुम्हारी दासी ही बनूंगी। मैं ऐसे अनुपम आदमी की चेरी बनूंगी।"

साँस भरकर प्रोफेसर बोला, "नर्वदा, आज तू न जाने क्या-क्या कह गई है।"

नर्वदा ने कहा, "आज ही अवसर मिला है। यह भी लगता है कि जो बात मुझे कहनी थी, वह मैं कह गई। अब चली जाऊँगी।"

"अरे, कौन किसका आभार पाता है, नर्वदा! यहाँ जो-कुछ है, सभी मिट जाने वाला है; क्षण-भंगुर है। सभी अपना भुगतान करते हैं।

जिसका है, उसे देते हैं।"

नर्वदा ने कहा, "पर सभी ऐसा नहीं सोचते। तुम्हारी तरह नहीं।"

प्रोफेसर ने कहा, "तू पहले कहती तो मैं ज़रूर तेरे जीवन में आ बैठता। पर तूने तो···"

नर्वदा बोली, "मैं इतनी मूर्ख नहीं बन सकती थी। मैं जाति की छोटी, बदसूरत, गरीब माँ-बाप की लड़की।"

"छिः ! क्या बात करती है, तू ! अरी, पगली ! जीवन में भावना देखी जाती है, जाति या धर्मवाद को नहीं।" यह कहते हुए प्रोफेसर खड़ा हो गया। अब वह लौटने के लिए प्रस्तुत हुआ।

नर्वदा ने कहा, "देखना, मेरे मरने के बाद भी इस घर को देख जाया करना। मैं शरीर से नहीं तो आत्मा से यहीं रहूँगी। इस घर में मेरे जीवन की लीला बीती है। मैं यहाँ बैठकर हँसी हूँ और रोई हूँ। मैंने यहीं बैठकर तुम्हारा चिन्तन भी किया है।"

प्रोफेसर ने कोई जवाब नहीं दिया। वह लौट चला। जयन्त उससे पूर्व ही अपने बिस्तर पर पहुँच चुका था। उसने बत्ती भी बुझा दी थी। वह चुपचाप पड़ा रहा। प्रोफेसर आया, उसने चेस्टर उतारा और बिस्तर पर पड़ गया। वह सोया या नहीं किन्तु जयन्त कुछ ही देर में सो गया।

जब प्रातः हुआ तो जयन्त समय पर नहीं उठ सका किन्तु जब प्रोफेसर ने झकझोरा, तो वह उठ बैठा। चौंककर उसने देखा कि बाहर धूप का प्रकाश फैला है। वह बिस्तर से उठ खड़ा हुआ। प्रातः का कर्म सम्पादित करने जाने लगा।

तभी प्रोफेसर ने कहा, "मैं तुम्हारी प्रतीक्षा में हूँ। तुम्हें भी मेरे साथ श्मशान चलना है। यहीं पास में रहने वाली एक औरत···"

"औरत···कौन ?··· तो वह मर गई !"

प्रोफेसर का स्वर भारी था। वह गम्भीर बना था। बोला, "हाँ, भाई, वह मर गई। बीमार थी, वृद्धा थी।"

जयन्त ने कहा, "राम-राम ! वह बेचारी !" वह चला गया। आध घण्टे में जब वह लौटकर आया तो प्रोफेसर ने खड़े होकर कहा, "प्राणी जब मरता है तो अपने साथ जाने कितनी बड़ी कहानी ले जाता है।

यह औरत भी...''

जयन्त ने कहा, ''हाँ, प्रोफेसर साहब, जीवन एक कहानी है। यह अनेक कहानियों का पुञ्ज है। मनुष्य कुछ सुनता है, कुछ कहता है। जाने वाला भला क्या ले जाएगा, अपना सभी-कुछ यहीं छोड़ जाएगा।''

प्रोफेसर खड़ा हो गया और बोला, ''वह बेचारी नर्वदा.. सच, उसका इतिहास ! निरा दीन...निरा याचक, उस नारी का जीवन, जो आज समाप्त हो गया है।''

जयन्त चलने लगा। बोला, ''उसका नाम नर्वदा था ?''

''हाँ, जयन्त जी, उसका नाम नर्वदा था। ऊपर से जितनी कुरूप थी, हृदय से उतनी ही उज्ज्वल, सुहावनी। निस्संदेह, वह पूर्णिमा की चाँदनी थी। पर उस चाँद में स्वयं दाग था, उसके चारों ओर अँधेरा ! भला किसी ने उस नारी का हृदय देखा था।''

जयन्त के मन में आया कि कह दे, वह उस नर्वदा को जानता है। उसके मन में क्या था, उसका भी परिचय पा चुका है। किन्तु उसने ऐसा कुछ नहीं कहा। मकान बन्द किया और वह प्रोफेसर के साथ हो लिया। लक्ष्य पर जाकर देखा कि वहाँ पाँच-सात आदमी और हैं। अर्थी तैयार है। नर्वदा उस अर्थी पर रख दी गई है। बड़ी हल्की है, केवल हड्डियों का पुञ्ज।''

एक व्यक्ति बोला, ''कई साल की मरीज़ थी बेचारी। प्राण जाने कहाँ अटके थे। इस नर्वदा की रोज़ मौत आती और लौट जाती थी।''

श्मशान में नर्वदा के शव को चिता पर रख दिया गया और आग लगा दी गई। जयन्त ने देखा कि उस समय प्रोफेसर पत्थर की तरह कठोर और गम्भीर बना था। उसके सिर के बाल खड़े थे। वह जैसे कहीं दूर, बहुत दूर अपने शरीर को छोड़कर उड़ चुका था। यह देख, जयन्त पास गया और बोला, ''आइये, अब चलें, प्रोफेसर साहब !''

प्रोफेसर चौंक गया। जैसे आसमान से धरती पर गिर पड़ा हो। वह बोला, ''हाँ, चलें अब ! नर्वदा तो गई, अब जल भी गई होगी।''

जयन्त ने कहा, ''हाँ, प्रोफेसर साहब ! यही सबके साथ होता है। एक दिन मेरे और आपके साथ भी होगा।''

प्रोफेसर खड़ा हो गया और अत्यन्त श्रद्धायुक्त भावना के साथ उस

जलती हुई चिता को हाथ जोड़कर बोला, "आओ, चलें। मुझे आज उस दूसरे पास के गाँव में भी जाना है। कल लौटना है। इस ज़िन्दगी में जितनी बार जिससे मिल लिया जाए, उतना अच्छा है। यही मेरी आस्था है। जब मेरी पत्नी गई, बच्ची गई, तो मुझे लगता है कि किसी क्षण भी, मुझे भी इस भूतल से उठ जाना है।"

जयन्त मौन था। मकान पर आकर उसने स्नान किया, फिर भोजन। जब दोनों तैयार हो गये, तो घर से चल पड़े। मार्ग छोटा था, दूर नहीं जाना था। पहाड़ से उतरकर वे गाँव में प्रविष्ट हो गये। प्रोफेसर एक मकान के द्वार पर पहुँच गया। देखा कि वहीं पर एक नारी बैठी है। आयु से उतरी हुई है। सचमुच, उसका एक हाथ, एक कान नहीं है। किन्तु उस अवस्था में भी वह सुन्दर लगती है। प्रोफेसर को देखते ही उसने उल्लास के साथ कहा, "अच्छा, तुम अतुल बाबू !"

अतुल बाबू ने आगे बढ़कर कहा, "अच्छी हो न, ज्योति !"

ज्योति ने चारपाई छोड़ दी और उन दोनों को बैठने के लिए कहा। तभी वह बोली, "यहाँ रहने वाले जिस तरह अच्छे रहते हैं, वैसे ही मैं भी हूँ। ठीक हूँ।"

प्रोफेसर ने कहा, "पहाड़ पर आकर तुम्हें देखने की बात अनायास मेरे मन में आती है। ये मेरे साथी युवक कालेज में पढ़ते हैं। नाम जयन्तकुमार है। मैंने इसे तुम्हारी बात बताई थी और कहा था कि तुम्हें दिखाऊँगा। सो, इसे ले आया।"

तुरन्त ही, ज्योति ने कहा, "न, न, नारी का ऐसा प्रदर्शन क्या अच्छा है ! इस धरती पर तो यही होता है। कहीं आदमी औरत पर प्रहार करता है और कहीं औरत आदमी पर।"

प्रोफेसर ने जैसे चंचल बनकर कहा, "हाँ, हाँ, ऐसा ही प्रायः देखा जाता है।"

ज्योति ने कहा, "इसी पहाड़ पर एक औरत ने अपने आदमी को ज़हर देकर मार दिया था। तब भला ..."

प्रोफेसर चंचल बन गया और बोला, "पर ज्योति, तेरे साथ जो कुछ हुआ, वह अतिशय अमानवीय था, वह नितान्त क्रूर था।"

ज्योति ने कहा, "बाबू, आदमी यही करता है। बेबस बन जाता

समझ में केवल यह था

है। अन्धा हो जाता है।" वह तभी ज़ोर ... ना। और तो और, हो जाती है, बाबू !" ... नहीं ... पाता। उसका

प्रोफेसर ने साँस भरी और प्रस्तुत वार्ता को छोड़, ... क्रुद्ध होता। कहा, "तो यह बता ज्योति, अब क्या हाल है तेरा। ठीक है।" ...च, इस

ज्योति ने कहा, "हाँ, बाबू! मज़दूरी करती हूँ और दिन काटती ...किन हूँ। पढ़ी तो हूँ नहीं, पूजा-ध्यान भी नहीं जानती, पर यह जो सामने आसमान को छूता हुआ पहाड़ दिखाई देता है न, मैं इसी को देखकर समझती हूँ कि वह भगवान भी इतना बड़ा होगा···वह भी दुनिया में चारों ओर···"

प्रोफेसर के साथ जयन्त भी हँस दिया। उन्होंने एक-दूसरे की ओर देखा।

प्रोफेसर बोला, "वह भगवान पहाड़ में नहीं, तेरे मन में है, ज्योति! वह ज्योति-स्वरूप है।"

उदास भाव में ज्योति ने कहा, "होगा। वह भगवान कैसा है, इस जीवन में क्या मुझसे समझा जाएगा ? न, कभी नहीं !"

लेकिन प्रोफेसर ने अपने स्वर पर ज़ोर देकर कहा, "नहीं, भगवान है। वह तुझे भी दिखाई देता है, तेरे मन में बोलता है। वही तो तेरे जीवन की रक्षा करता है।"

ज्योति हँस दी, "हाँ, हाँ, कहती तो हूँ, वह तुम्हारा भगवान कहीं तो होगा।" यह कहते हुए वह तुरन्त ही गम्भीर बन गई और बोली, "पर जब मैं अपना सूना जीवन देखती हूँ, कटा हाथ पाती हूँ, चेहरे पर एक कान नहीं पाती, तो सोचती हूँ, वह भगवान तुम-सरीखे पढ़े-लिखों के पास हो तो हो, मेरे पास नहीं आता। वह मुझे नहीं दिखाई देता। यदि वह मुझे मिले तो बस इतना कहूँ, महाराज, क्यों अपना मज़ाक उड़वाते हो ? मेरा यह पंगु शरीर···हाँ, एक बार तुम्हीं कहते थे न कि भगवान हमारा निर्माण करता है···इस काया और मन का···"

जयन्त के साथ प्रोफेसर ने देखा कि अपनी बात कहते हुए ज्योति चंचल बन गई है, जैसे नितान्त कातर हो। उसके मन में दबा हुआ ज़हरीला धुआँ भी उठ आया है, जिससे वह पीड़ित है। यह देख प्रोफेसर एकाएक, ऐसी बात नहीं पा सका कि जो धीरज देने के लिए उस ज्योति

जलती हुई चिता को हाथ प्रोफेसर स्वयं अशान्त था। नर्वदा जा कुछ
उस दूसरे पास के गाँव में समय भी उसके मन में अटका था। जिस प्रकार
में जितनी बार जिआँसू देखकर, उससे कर्म और उसके फल की बात नहीं
आस्था है। उसी तरह, सामने बैठी हुई ज्योति को भी कर्म और संस्कारों
क्षण भी नहीं बता सका; क्योंकि प्रोफेसर जानता था कि यह कर्म का
और संस्कार का प्रसंग इस ज्योति के लिए शुभ नहीं, सुनने और कहने
में भी रोचक नहीं होगा।"

किन्तु उसी समय जयन्त बोला, "भगवान है, उसकी भावना है, यह तो मानना ही पड़ेगा।"

ज्योति ने कहा, "होगा भगवान! मैंने नहीं देखा। वह मिलता, तो पूछती, तेरी ऐसी ही सृष्टि है, ऐसा ही नियन्ता है, तू!"

एकाएक जयन्त के मुँह से निकला, "हमें कर्मों का फल भोगना पड़ता है।"

ज्योति विद्रूप भाव से हँस दी और बोली, "वह कर्म भी तो भगवान ही कराता है।"

प्रोफेसर ने कहा, "यह विषय विवाद का है।" वह ज्योति की ओर देखकर बोला, "ज्योतिदेवी, यह सत्य है कि तुम्हारे साथ न मानव-समाज ने न्याय किया न भगवान ने। दोनों ने ही क्रूर व्यवहार किया।"

ज्योति ने कहा, "बाबू, तुम आते हो तो दो बात कर जाते हो। मैं तो अब ऐसी पथरीली शिला हूँ कि इससे लोग बचकर निकलते हैं। ठोकर मारना भी पसन्द नहीं करते।"

प्रोफेसर ने कहा, "तुम्हारा सलोना संसार था, वह एक ही आँधी में उजड़ गया।"

ज्योति ने साँस भरी और कहा, "भाग्य में यही लिखा था।" वह बोली, "पानी लाऊँ?"

जयन्त ने कहा, "नहीं!" यह कहते हुए वह खड़ा हो गया।

प्रोफेसर भी खड़ा हो गया और बोला, "ज्योतिदेवी, मेरे योग्य कोई कार्य हो, तो बताना!"

ज्योति ने कहा, "आपकी कृपा है। आपने इस बार पचास रुपये भेजे थे, मेरी बीमारी में बड़े काम आये। वे सुगमता से उतार न सकूँगी,

पर सदा याद रखूँगी।"

प्रोफेसर बोला, "मैंने वापिस पाने के लिए नहीं ही थे। लो, ये बीस रुपये और रखो।"

ज्योति ने कहा, "नहीं, बाबू! मेरा काम चलता है।"

प्रोफेसर बोला, "रख लो, ये तुम्हारे निमित्त हैं।" यह कहते उसने रुपये ज्योति के हाथ पर रख दिये।

ज्योति ने कहा, "कब तक यहाँ रहोगे?"

प्रोफेसर बोला, "बस, कल सुबह चल देंगे।"

एकाएक ज्योति ने कहा, "तो बाबू, तुम "

प्रोफेसर ने कहा, "इस ज़िन्दगी की डगर पर जो मिले, उससे मिलते चलो, दो बात करते चलो। बस, और क्या, ज्योतिदेवी! सबको भगवान का रूप मानते चलो।" कहते हुए वह जयन्त के साथ लौट चला।

दस

ऐसे चरित्र का और ऐसी इच्छा पाने वाला प्रोफेसर जयन्त से अब दूर था। उसने नौकरी छोड़ दी थी और देर से किसी अज्ञात पथ पर अग्रसर हो चुका था। अब जयन्त को यह भी नहीं मालूम कि वह प्रोफेसर मर गया अथवा जीवित है। इधर जब गाँव के गरीब ब्राह्मण श्रीधर की पुत्री के विवाह का प्रश्न जयन्त के समक्ष आया और उसने पाया कि स्वयं उसी का पिता उस गरीब ब्राह्मण की सम्पत्ति पा लेना चाहता है, तो वह स्वतः ही लज्जित बन गया। वह इतना कातर हुआ कि सहज में समझ नहीं सका कि वह किस कर्म का सम्पादन करे, पिता से क्या कहे; उस श्रीधर को किस प्रकार सहारा दे।

ऐसे ही समय, एक दिन, एकाएक ही, जयन्त को प्रोफेसर का फिर ध्यान हो उठता। यद्यपि, वह प्रायः याद आता, परन्तु उस अवसर पर

जलती हुई चिता ... उस मानसिक रोग की औषध केवल प्रोफेसर था। उस दूसरे पास ... दे सकता था। समस्या का सुलझाव भी निकाल सकता में जितनी ... यह सत्य था कि जयन्त उस प्रोफेसर का अतिशय सम्मान आस्था ... था। बल्कि वह अनुभव करता था कि उसका निर्माणकर्ता वह ... फेसर है। माँ-बाप ने तो केवल उसे आदमी के रूप में जन्म-भर दिया है। उनके द्वारा हाड़-मांस का एक पुतला बना दिया गया। किन्तु उसके मानस में जिस भावना का अजस्र स्रोत प्रवाहित हो रहा था, उसका उद्गम-क्षेत्र प्रोफेसर अतुल था। उसी देवता ने जयन्त को आशीष प्रदान किया था।

जो हो, वस्तुस्थिति यह थी कि उन दिनों जयन्त अधिक गम्भीर था। उसके लिए सन्तोष की केवल एक बात थी कि अंजना का पिता लड़की का विवाह रोक देने पर सहमत हो गया। इसका दुष्परिणाम यह भी हुआ कि गाँव के लोग अब निर्बाध रूप से यह समझने लगे कि ज़रूर चमार की लड़की और ब्राह्मण के लड़के का गठबन्धन हो जाएगा। लड़की को अब किसी अन्य पथ पर चलना पसन्द नहीं आएगा।

ऐसी बात नहीं कि इस प्रकार की बातें जयन्त के कान में न आती हों परन्तु वह जैसे उस ओर से उदासीन था। उसका काम था, बीमारों का इलाज करना। अब यह उसका व्यवसाय था। पैसा लेने लगा था। डाक्टर बनकर वह पैसा उपार्जित कर रहा था। मानो उसका यही लक्ष्य था। संयोग की बात यह थी कि उसका काम खूब चलने लगा। उसके पास इतने मरीज़ आते कि भोजन का भी कठिनाई से समय मिलता। नगर के जिस स्कूल में अंजना को पढ़ना था, वह अभी बन्द था। छुट्टियाँ थीं। इसलिए उसके खुलने तक अंजना क्या करे, इसके लिए जयन्त ने स्वतः ही उसे अपने दवाखाने में सफाई करने और दवा की शीशियों को ठीक-ठिकाने रखने पर लगा लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि अंजना बहुत-सी दवाएँ पहचान गई। सिरदर्द, पेटदर्द और बुखार की कौन-सी दवा है, उनके नाम जान गई, और स्वतः उनका दूसरों पर प्रयोग करने लगी।

लेकिन अंजना देखती थी कि उन दिनों जयन्त स्वभाव से कुछ कठोर बन चला था। वह मरीज़ों से कसकर पैसा ...र न सकू उसका

व्यवहार भी रुक्ष था। इसका कारण अंजना की समझ में केवल यह था कि जयन्त उन दिनों थक जाता, व्यस्त अधिक रहता। और तो और, वह दो पल के लिए स्वयं अंजना से भी बात न कर पाता। उसका व्यवहार भी रूखा और कटु बन चला था। बात-बात पर क्रुद्ध होता। ऐसी अवस्था में उस जयन्त को देख, अंजना को लगा कि सच, इस जयन्त के मन में कोई पीड़ा है, कोई चोट है जो कसक रही है। लेकिन अंजना कोई बात करते डरती थी। जयन्त जब दवाखाने में आकर कुर्सी पर बैठता, तो उसे देखकर अंजना सकपका जाती थी। वह सोचती, यह जयन्त उसका जाने क्या दोष पाये, किस बात पर गरम हो जाए, इसलिए वह सचेत रहती।

किन्तु उस दिन जब आसमान में बादल गरज रहे थे, दूर बिजली चमक रही थी, जयन्त अपने दवाखाने में कुर्सी छोड़कर उसके आस-पास घूम रहा था। अंजना ने देखा कि उसने अपनी जेब में बहुत सारे रुपये रखे और माथे पर आये पसीने को बार-बार पोंछने लगा। उसी अवस्था में वह अंजना की ओर देखकर बोला, "सुनो अंजना, तुम्हें आठ दिन के अन्दर ही शहर जाना है। तुम्हारा प्रबन्ध हो गया है। स्कूल खुल रहा है।"

अंजना ने बात सुनी और कहा, "जी !"

जयन्त फिर बोला, "और अंजना, तुम मेरे रुक्ष व्यवहार को देखकर खिन्न बनी होगी, सो, क्षमा करना। मुझे ऐसा ही बनना था। अब मेरा ऐसा ही स्वभाव बन गया है।"

अंजना ने तब भी न जाने कैसे भाव में कह दिया, "जी !"

जयन्त ने कहा, "मैं ज़रा दूसरी जगह जा रहा हूँ। दवाखाना बन्द कर देना और तुम अपने घर चली जाना।" कहकर जयन्त चला गया।

किन्तु वह कहाँ जा रहा था, अंजना से यह छिपा नहीं था, क्योंकि एक दिन पूर्व ही, गाँव का श्रीधर वहाँ आया और उससे जयन्त ने जो कुछ कहा, वह सहज ही अंजना ने सुन लिया था। अतएव, उसे पता था कि जयन्त उसी श्रीधर के घर जा रहा है। उसके मन में बात आई कि जयन्त उस श्रीधर के घर इस अँधेरे में कैसे जाएगा। बीच में बरसाती नाला पड़ता है। वह बरसाती पानी से भरा है। नाला अतल बना है।

जयन्त कहीं उसमें प्रविष्ट हुआ तो…"

अंजना ने तुरन्त ही दवाखाना बन्द कर दिया। वह उस ओर चल पड़ी कि जहाँ से श्रीधर के घर जाने के लिए रास्ता जाता था। गाँव के कुछ घर नाले के पार थे। श्रीधर का घर भी उन्हीं में से एक था। रात हो गई थी। चारों ओर अँधेरा था। जब तेज़ चाल से चलती हुई अंजना वहाँ पहुँची, तो देखा कि जयन्त सचमुच ही, निर्बुद्धि बना हुआ खड़ा था। वह रास्ता नहीं पा रहा था, सुगमता से दूसरी ओर नहीं जा सकता था।

पास जाते ही, अंजना ने कहा, "मुझे पता था कि तुम्हें कहाँ जाना है। आओ, मेरे साथ। मैं तुम्हें नाले के पार उतार दूँगी।"

जयन्त ने कहा, "पानी तेज़ है, तीव्र गति से बहा जा रहा है।"

अंजना बोली, "यह नाला प्रतिवर्ष एक-दो प्राणियों की जान ले लेता है। भेंट माँगता है।"

जयन्त ने कहा, "आदमी की भेंट !"

अंजना बोली, "हाँ, तो क्या जानवर की भेंट ! जानवर के मरने पर कौन रोता है ! उसका कौन उल्लेख करता है !"

जयन्त ने कहा, "इस धरती पर ऐसे भी आदमी हैं कि जिनके मरने पर कोई नहीं रोता। नाम नहीं लेता।"

अंजना ने कहा, "हां सो तो है ही। उन्हीं में एक मैं…"

"तू · री, अंजना !"

अंजना हँस दी। वह बोली, "देखो, इन्कार न करना। मैं जैसा कहूँ, वैसा ही करना। यहाँ नाला कम चौड़ा है। यह मेरे हाथ की रस्सी देखते हो न, मैं उस ओर फेंकती हूँ, उस पेड़ में उलझाती हूँ, फिर मैं इन दो पाटों के ऊपर…"

जयन्त ने कहा, "यह तुम्हारा दुस्साहस है। मूर्ख प्रदर्शन !"

अंजना बोली, "मैं इस प्रदर्शन की अभ्यस्त हूँ। बचपन से यह खेल करती आई हूँ।" और कहते ही, उसने नाले के दूसरी ओर रस्सी फेंकी, पेड़ की जड़ में उलझाई और जिस पार खड़ी थी वहाँ अपने पैर अड़ाकर, उस रस्सी के सहारे झूलकर सपाट पुल की तरह पड़ गई। तभी बोली, "उतरो तुम !"

जयन्त चिल्लाया, "अरी, अंजना !"

अंजना ने कहा, "देर न करो। तुम पार उतरो और अपने उद्देश्य को पूरा करो।"

और तभी जयन्त उस अंजना के ऊपर से पैर रखकर उस गहरे नाले को पार कर गया। उसी समय अंजना रस्सी पकड़े हुए पानी में गिरी और जयन्त का सहारा पाकर ऊपर पहुँच गई। उसे पानी में शराबोर देख, जयन्त ने कहा, "तुम्हारा यह दुस्साहस था।"

अंजना ने कहा, "मुझे यही करना था। उस ब्राह्मण की लड़की का उद्धार तुम्हें करना था, तो मुझे भी थोड़ा सहयोग..."

जयन्त बोला, "तो तुम्हें पता था ? सचमुच, मैं उसी श्रीधर पंडित के घर जा रहा था।"

अंजना ने कहा, "मुझे पता था। तभी तो दौड़ आई। यह रस्सा भी लेती आई। जाओ, जल्दी लौटना। मैं यहीं रहूँगी। इसी रास्ते से तुम्हें पार कर सकूँगी।"

जयन्त चल दिया। वह श्रीधर के घर पहुँच गया। जाकर देखा कि श्रीधर जैसे उसी की प्रतीक्षा में बैठा था। जयन्त को देखते ही खड़ा हो गया।

जयन्त ने कहा, "तुम बैठो, पंडितजी ! ये रुपये लो और अपनी पुत्री का विवाह सम्पन्न करो। एक हज़ार हैं, इनसे काम तो चल जाएगा न !"

श्रीधर अतिशय विनम्र बन गया। बोला, "बाबू, ये बहुत हैं। मैं तो पाँच सौ में ही..."

जयन्त ने कहा, "नहीं, नहीं, पुत्री का विवाह अच्छी तरह करो। तुम्हारी पुत्री के भाग्य से ही मुझे इस बीच कई ऐसे मरीज़ मिल गये कि जो पैसे वाले थे। मुझे प्रसन्नता है कि वे नीरोग भी हो गए। मेरा उपचार सफल रहा।"

श्रीधर ने कहा, "मैं तुम्हारा आभारी हूँ, जयन्त बाबू !"

जयन्त ने कहा, "नहीं, नहीं, यह तो मेरा कर्त्तव्य था। तुम्हारी पुत्री मेरी भी तो बहिन है।"

उसी समय श्रीधर की पत्नी बाहर निकल आई और बोली, "तुम

युग-युग जीयो, जयन्त बेटा !"

जयन्त बोला, "माँजी, तुम्हारा ग्राशीष चाहिए।" वह जाने के लिए खड़ा हो गया।

श्रीधर ने कहा, "पर ग्राये कैसे, भैया ! यह रास्ते का नाला···"

जयन्त ने कहा, "मैं ग्रा गया, चला ग्राया। तुम बैठो।"

पत्नी बोली, "तुम साथ जाग्रो। ग्रँधेरी रात है, रास्ते का नाला···"

ग्रातुर बनकर जयन्त बोला, "नहीं, नहीं, मैं चला जाऊँगा। जाता हूँ। राम-राम !"

"जीते रहो, तुम्हारी बड़ी उम्र हो।" पत्नी ने ग्राशीष दिया।

जयन्त लौट चला। जब वह फिर नाले पर पहुँचा तो देखा, ग्रंजना खड़ी थी, उन्हीं भीगे कपड़ों में थी। ठण्डी हवा से काँपने लगी थी।

जाते ही, जयन्त बोला, "मैं लौट ग्राया, ग्रंजना !"

ग्रंजना ने कहा, "रुपये दे ग्राये ? कितने थे ?"

जयन्त ने कहा, "एक हज़ार !"

ग्रंजना ने सुनते ही गद्गद् होकर कहा, "शाबाश, तुमको। मेरी बधाई !"

जयन्त बोला, "इन रुपयों को उपार्जित करने के लिए मुझे बड़ा परिश्रम करना पड़ा। कभी-कभी तो ग्रपना ग्रादमीपन भी छोड़ देना पड़ा।"

ग्रंजना बोली, "मैं देखती थी, समझती थी। इस बीच तुम्हारा स्वास्थ्य भी घट गया है।"

"हाँ, ग्रंजना ! मैंने इसी समय तो समझा कि पैसे का चिन्तन करना सबसे बड़ा घातक कर्म है। मन ग्रौर मस्तिष्क को दुखाता है। पाप का सृजन करता है। ग्रादमी की ग्रात्मा को मार देता है। ग्रब चलो, उठाग्रो ग्रपना रस्सा। दिखाग्रो ग्रपनी करामात ! सच, ग्राज तुमने ग्रनोखे पुरुषत्व का परिचय दिया। मैं तुम्हारे ऊपर से चलकर इस नाले को पार कर सका, यह कभी नहीं भूल सकूँगा।"

ग्रंजना ने कहा, "जब तुमने ब्राह्मण-पुत्री के लिए इतना त्याग किया, तो क्या मैं···"

जयन्त ने उसके कन्धे पर हाथ रखकर कहा, "सच, तुम ग्रपूर्व हो,

अंजना ! निरी ममतामयी।"

अंजना ने कहा, "चलो, तैयार हो जाओ, मैं उस ओर रस्सा फेंकती हूँ। कोई आए तो देखकर क्या कहेगा कि ये गाँव के डाक्टर, ब्राह्मण के लड़के जयन्त बाबू, और चमार की लड़की इस अंजना के साथ।"

जयन्त ने कहा, "यह विभेद मैंने मिटा दिया है। अब गाँव सूर्य के खुले प्रकाश में देखता है कि तुम मेरे दवाखाने में · "

अंजना बोली, "वह दूसरी बात है, पर यह रात का मौसम, यह चढ़ा हुआ दरिया, यह सुनसान पथ · यों हम, एकाकी ··"

जयन्त ने कहा, "कोई अन्तर नहीं पड़ता। देखने और कहने वाले सभी जगह अपनी एक राय रखते हैं। वे क्या कहने से चूकते हैं ?"

अंजना ने दूसरे किनारे के पेड़ पर रस्सा फेंका, उसकी जड़ों में उलझाया और तब पूर्ववत् पुल की तरह पड़कर उसने कहा, "चलो, उतरो पार !"

जयन्त ने अंजना की टाँगों और कमर पर पैर रखे और पार उतर गया। तभी उसने अंजना को पकड़ने का प्रयत्न किया। किन्तु दुर्भाग्य की बात कि उसी समय अंजना के हाथ से रस्सा छूट गया। वह उस गहरे नाले के पानी में गिर पड़ी, जिसे देखते ही जयन्त चीख पड़ा, "अंजना !"

जयन्त खड़ा नहीं रह सका। वह उसी प्रकार खड़ा हुआ नाले में कूद पड़ा। कुछ ही क्षण में तैरकर वह अंजना के पास पहुँच गया। उसने अंजना को पकड़ लिया। किन्तु पानी तेज़ था, उन्हें टिकने नहीं देता था। दोनों को बहाये लिए जा रहा था। जयन्त जानता था कि वह नाला कुछ दूर जाकर बड़ी नदी में मिलता है। उस बरसात में वह नदी विशालतर होकर दूर तक फैल गई थी। उसमें जाकर बच निकलना उन दिनों आसान नहीं था।

उसी अवस्था में जयन्त ने कहा, "अंजना, साहस न खोना।"

अंजना ने कहा, "तुम जाओ। मुझे छोड़ जाओ।"

किन्तु जयन्त किनारे पर जाने के लिए चेष्टित था। बड़ी नदी का गर्जन वह सुगमता से सुन रहा था। उसी समय, संयोग से नाले के किनारे पर खड़े पेड़ की झुकी हुई डाल को अंजना ने पकड़ लिया। जयन्त भी इसीके सहारे से रुक गया। वे दोनों उसी के द्वारा किनारे पर लगे, और

तेज़ साँस लेते हुए ऊपर बैठ गए ।

तभी साँस भरकर अंजना बोली, "ओह ! आज बड़ा भयानक काण्ड होना था । शायद भगवान को···"

जयन्त बोला, "नदी में पहुँचते तो बचने का प्रश्न ही नहीं था ।"

अंजना ने कहा, "मैं रास्ते में मर जाती । पर मुझे अपनी चिन्ता नहीं थी, ध्यान तुम्हारा था ।"

दोनों उठे और गाँव की ओर चल दिये । वहाँ से गाँव भी दूर छूट गया था । गाँव के समीप जाकर जयन्त ने कहा, 'तुम्हें कल शहर जाना है ।"

अंजना ने बात सुनी तो कुछ जवाब नहीं दिया । जयन्त अपने घर की ओर बढ़ गया ।

जब वह घर पहुँचा, तो माँ ने देखते ही कहा, "अरे, तू कहाँ गया था । शाम से ही गायब था । देख तो, कौन आया है, शहर से । शायद तेरा प्रोफेसर है । अतुल !"

"प्रोफेसरसाहब, ओह !" जयन्त सीधा भीगे कपड़े पहिने ही मकान के ऊपर अपने कमरे की तरफ चल दिया । जब वह पहुँचा, तो देखते ही, ज़ोर से बोला, "प्रोफेसरसाहब !"

"जयन्तबाबू, आओ । अच्छे हो ?" प्रोफेसर अतुल बोला ।

जयन्त ने कहा, "कृपा है, आपकी ! अभी आकर आपके पास बैठता हूँ, कपड़े बदल दूँ । मौत के मुँह से निकलकर आया हूँ, सब बताता हूँ ।" कहते हुए जयन्त दूसरी ओर बढ़ गया ।

ग्यारह

गाँव था, वहाँ का समाज था तो उसकी कुछ परम्पराएँ भी थीं । जयन्त उन्हीं में अपने को मिलाना चाहता था । किन्तु जब प्रोफेसर अतुल उस गाँव में आया तो एक दिन बात करते हुए उसने जयन्त का

कन्धा हिलाकर कहा, "तुम मेरी बधाई स्वीकार करो कि तुमने गाँव में आकर नया पथ प्रशस्त किया। अंजना को तुमने नगर भेज दिया, उसका जीवन सुधारने में योग दिया। सचमुच ही, यह तुमने एक पुण्य का काम किया है।"

किन्तु उपेक्षा भाव से जयन्त बोला, "लेकिन आपने यह नहीं सुना कि लोग मुझे अंजना के विषय में दुश्चरित्र मानते हैं।"

धीर भाव से प्रोफेसर ने कहा, "यह स्वाभाविक है। अपनी इस सनक के कारण मैं एक गाँव में मरते-मरते बचा था। लोग मेरे टुकड़े कर देना चाहते थे।" वह कहने लगा, "भाई, उपकार का कार्य करने के लिए भी साहस और बुद्धि चाहिए। लोगों की परम्परागत बातें भी याद रखनी चाहियें। मैं अब बूढ़ा हो गया हूँ तो क्या, यह कभी नहीं भूलता कि लोग मुझे चोर भी समझ सकते हैं, मेरी नीयत पर सन्देह भी कर सकते हैं। मैंने तुम्हारा यह प्रकरण भी सुन लिया है। लेकिन मुझे इसमें दोष तुम्हारा ही लगा है। यह मत भूलो कि ऊँचा आदर्श व्यावहारिक नहीं होता। भले ही यह गाँव है, यहाँ का समाज भी छोटा है, परन्तु इसकी भी कुछ रीति-नीति है। बोलो, क्या तुम्हें उसका अनुसरण नहीं करना था ?"

जयन्त ने कहा, "मैं अविवेकी नहीं बना, अदूरदर्शी नहीं बना।"

प्रोफेसर अतुल मुस्कराया। उसने अपनी श्वेत दाढ़ी को सहलाया और कहा, "हाँ, हाँ, यह स्वयंसिद्ध है कि तुम अविवेकी नहीं बने, परन्तु गाँव के अनुरूप व्यावहारिक भी नहीं। मुझे तुम्हारी माता और पिता ने सभी कुछ बता दिया है। तुम्हारी माँ का आज भी यही खयाल है कि तुमने उस लड़की के उद्धार के लिए जो कुछ किया, अच्छा किया। परन्तु तुम्हारे पिता का अब भी भिन्न मत है। मैं समझता हूँ, वह धार्मिक निष्ठा के कारण ही ऐसा कहते हैं। फिर भी, तुम गाँव में चर्चा का विषय बनो, यह अशुभ रहा।"

जयन्त ने कहा, "लोग मूर्ख हैं। वस्तुस्थिति से दूर रहते हैं!"

यह सुनकर, प्रोफेसर अतुल हँस दिया। तभी उसने सहज भाव से कहा, "तुम्हारी माँ की आशंका भी प्रकट कर देना चाहता हूँ। उस ममतामयी नारी को भय है कि कहीं तुम..."

जयन्त ने अपने स्वर पर ज़ोर देकर कहा, "नहीं-नहीं, प्रोफेसरसाहब ! मुझे अंजना से कुछ नहीं कहना है।"

तुरन्त ही प्रोफेसर ने कहा, "उस अंजना को तो कहना है। वह अँधेरे में पड़ा पत्थर तुमने सजाया है। उसे सुन्दर मूरत का रूप दे दिया है। वह अब बोलता है।" यह कहते हुए प्रोफेसर गम्भीर बन गया। उसका मुँह कमरे के बाहर आसमान की ओर उठ गया। उसी अवस्था में उसने कहा, "जयन्त जी, वासना की पुकार भी अनसुनी कर देना आसान नहीं है। तुम अभी युवक हो। अविवाहित भी हो। बोलो, उस अंजना में जिन भावनाओं को तुमने सँजोया, आगे उनका क्या रूप होगा ? यदि उस लड़की ने कोई आमन्त्रण दिया तो क्या उसे ठुकरा सकोगे ? वह अब समाज की विशिष्ट नारी बनेगी। पढ़ती रही तो डाक्टरनी हो जाएगी।"

जयन्त ने साँस लेकर कहा, "मैं उस ओर नहीं देखता, प्रोफेसर-साहब ! यह समझना भी मेरा काम नहीं। अंजना समाज की विशिष्ट नारी बने, यही आकांक्षा थी।"

प्रोफेसर ने अपनी तीखी दृष्टि जयन्त के मुँह पर टिका दी और कहा, "तुम्हारी माँ को यही आशंका है।"

जयन्त सूखे भाव से मुस्कराया, "माँ की यह मिथ्या धारणा है।"

प्रोफेसर ने कहा, "भगवान करे, यही हो। यदि तुमने उस अंजना को पत्नी बनाना स्वीकार किया तो यह अच्छा नहीं रहेगा।"

जयन्त सामने रखी पुस्तक के पन्ने उलटते हुए बोला, "यही होगा, प्रोफेसरसाहब ! यह जयन्त वासना की भट्टी में अपने-आपको नहीं झोंक सकेगा।" यह कहते हुए वह उठ गया।

प्रोफेसर अतुल को उस गाँव में आये कई दिन हो गये थे। वह अनेक परिवारों से परिचय पा चुका था। अंजना का पिता चेतराम भी उसका परिचित हो गया था। किन्तु आश्चर्य था कि जयन्त के पिता पण्डित ज्ञाननाथ से अभिवादन का आदान-प्रदान करने के अतिरिक्त, केवल एक ही दिन कुछ वार्तालाप हुआ, उसके बाद नहीं। वैसे यह देखकर जयन्त भी चकित था कि प्रोफेसर एक ऐसे स्थान पर अधिक उठता-बैठता है कि जहाँ अब तक वह स्वयं नहीं जा सका था। गाँव का कोई व्यक्ति भी वहाँ जाना पसन्द नहीं करता था। वह था, गाँव की ठाकुर जाति में

सुखदास का घर। वह सुखदास अब बूढ़ा था। कई वर्ष से बीमार था। उसके शरीर में अनेक जगह पट्टियाँ बँधी थीं। उसे कोढ़ था ; पीप चूता था। उसके घर के आत्मीय भी उसके पास आते हुए कतराते थे। बल्कि यहाँ तक कि वे लोग उसकी मौत भी चाहते थे। परन्तु वह दुर्भागी सुखदास मर नहीं रहा था। जैसे जड़ या पत्थर बनकर उस गाँव में पड़ा था।

एक दिन जब जयन्त को पता चला कि प्रोफेसर उस सुखदास के यहाँ गया है, बैठा है, बातें की हैं और उसके ज़ख्म भी धोये हैं, उन पर दवा लगाई है, तो अवसर पाते ही उसने कहा, "यह सुखदास अपने जीवन में बड़ा आततायी रहा है, नितान्त क्रूर ! आपका उसके पास जाना क्या शोभा देता है !"

प्रोफेसर ने जयन्त की बात सुनी तो वह क्षण-भर के लिए मौन रहा। फिर बोला, "मैं समझा, तुम अभी अधूरे डाक्टर हो। दया-ममता से भी दूर ! ज़रूर, तुम उस चमार की लड़की अंजना को उपकृत करने के लिए ही इतना प्रपञ्च रच सके हो। वह नर्स बनेगी, फिर डाक्टरनी। तब तुम्हारी सहायक बनेगी। यह तुम्हारा ढोंग है ; उपकार या जातिवाद के बन्धन का अन्त करना नहीं।"

इतनी बात सुनकर जयन्त जैसे तिलमिला गया। वह एकाएक कुछ नहीं कह सका।

किन्तु प्रोफेसर ने फिर कहा, "जयन्तकुमार, तुम मेरे शिष्य रहे हो। मैंने तुम्हें समझा है। मेरा खयाल है कि तुम्हारी सदाशयता अभी अधूरी है, दूध का उफान है। यह आदर्श और भावना आदमी का ऐसा अवलम्ब है कि जिसकी कल्पना से वह सुख पाता है, परन्तु उसे स्थायी रूप से ग्रहण नहीं करता। देखता हूँ कि तुम्हारी डाक्टरी प्रैक्टिस बढ़ रही है, रुपया आ रहा है। तुमने उस ब्राह्मण की पुत्री के विवाह पर जो रुपया दिया, वह तुम्हारी कृपा उस ब्राह्मण पर अवश्य रही ; पर तुम उसका ढोल पीटकर जो कुछ उपार्जित करना चाहते हो, बोलो, क्या वह इस त्याग से छोटा है ? तुम्हारी वह बात गाँव भर में फैली है। लोगों ने तुम्हें साधुवाद दिया है। तुम्हारी कीर्ति का ढोल बजाया है।"

जयन्त बोला, "यह तो लोगों की भावना है।"

"हाँ, हाँ, यह लोगों की भावना है। तुम्हें भी उसमें आनन्द आता है। अपनी कीर्ति-गाथा सुनना भला किसको बुरा लगता है! पर कहे देता हूँ, अब तुम में दम्भ का अंकुर फूट आया है। वह बड़ा वृक्ष बन जाने वाला है।" प्रोफेसर अतुल ने ऊपर आकाश की ओर देखकर कहा, "सुखदास तुम्हारी दृष्टि में हेय है, घृणित है, यह देखकर मुझे दुःख हुआ। तुम आज तक उसके पास नहीं गये, इससे भी मुझे आश्चर्य हुआ। मैंने सुन लिया है कि तुम्हारे पिता पण्डित हैं तो सूदखोर भी हैं। तभी तुम पढ़ते समय समर्थ लड़कों में थे, मेरे साथ इधर-उधर भी आ-जा सकते थे। तुम्हारे पिता ने गाँव के समाज का शोषण किया और अपनी सन्तान को सुखपूर्ण तथा योग्य बनाने के लिए धन का व्यय किया। पर तुम भी कितने चतुर हो कि आरम्भ में विकास करने के लिए लोगों को मुफ्त दवा दी, सेवा की भावना प्रसारित की, जब वे ग्राहक बने तो उनकी जेब काटने के लिए अपनी कैंची उठा ली। मैं अब तक चोर, डाकू और जेबकतरों की बातें सुनता आया था, लेकिन अब अनुभव करता हूँ कि तुम भी उन्हीं की संज्ञा में एक हो। उसी परम्परा को मानते हो।"

आश्चर्य कि इतनी कड़वी और तीखी बात सुनकर भी जयन्त मौन था। वह कमरे के बाहर देख रहा था।

उसी समय प्रोफेसर फिर बोला, "एक बार क्या, हज़ार बार मैंने देखा और सुना है कि अमुक व्यक्ति की जेब कटी, माल चोरी हो गया। पर सचमुच, जब मेरी जेब कटी तभी मुझे ज्ञात हुआ कि किस प्रकार, ऐसे आदमी को जिसका रुपया-पैसा कोई सुगमता से चुरा ले जाए या जेब काटकर ले जाए, पीड़ा होती है।" उसने कहा, "मुझे सुखदास ने सभी-कुछ बताया है कि उसने क्या-क्या किया। कितना पाप उसके द्वारा इकट्ठा हुआ। पर आज वह प्रायश्चित्त की आग में जल रहा है। वह दुःखी है, पीड़ित है। उसकी आत्मा कराह रही है। जब वह अपनी आत्मा के समक्ष दोषी बन चुका तो इस गाँव के समाज का प्रश्न कैसा! पर तुमको या और किसी को मैं क्या कहूँ, स्वयं उसकी पत्नी और पुत्र उसका तिरस्कार करते हैं। उस सुखदास ने खून किया, डाके डाले तो स्वयं जेल गया, यन्त्रणाएँ पाईं। पर जो धन लाया वह घर वालों ने

भोगा। उसी व्यक्ति को आज कहा जाता है कि मर जाए ! बोलो, यह कैसी अमानुषिकता है ! कैसी विडम्बना है !"

जयन्त ने कहा, "इस संसार की यही परम्परा है, प्रोफेसर साहब !"

"तो यह निंद्य है, अशुभ है, मनुष्यता से हीन !" प्रोफेसर ने उत्तेजित होकर कहा।

जयन्त बोला, "प्रोफेसर साहब, इस धरती पर आप जिस स्वर्ग की कल्पना करते हैं, वह नहीं आ सकता।"

प्रोफेसर ने जैसे चकित बनकर जयन्त की ओर देखा। उसने कहा, "रे, भैया ! मैं वह स्वर्ग नित्य देखता हूँ। जहाँ जाता हूँ, वहीं उसका विस्तार और स्थान पाता हूँ। यदि तुम्हारे मन में नरक का वास है, स्वार्थ है, दम्भ है तो तुम्हें सर्वत्र वही दिखाई देगा।" वह बोला, "जयन्तजी, लोग समझते हैं कि हम दूसरे को उपकृत करने के लिए कोई त्याग करते हैं, नहीं; वे अपने को आभारित करते हैं। यदि मैं सुखदास की कुछ सेवा कर आया तो समझो, मेरा यही काम था, मुझे करना था, उसका ऋणी था। मुझे वह कार्य करने में आनन्द आया। मैंने उसकी आत्मा का आशीष पाया। अपने पास से कम दिया, ले अधिक आया। बोलो, मैं क्या घाटे में रहा ?"

जयन्त उदास भाव से मुस्करा दिया, "प्रोफेसरजी, यह अव्यावहारिक बात है। इतना कौन देखता है, कौन मानता है।"

प्रोफेसर ने अतिशय गम्भीर बनकर कहा, "तुम मानो, तुम समझो। तुम मेरे शिष्य हो न, तो मैं तुम्हें समझाना चाहता हूँ, यदि मैं इसमें सफल नहीं बना तो निश्चय ही, मैं हार जाऊँगा, अपने मिशन में असफल हो जाऊँगा, भाई !"

उसी समय एक मरीज़ आया और जयन्त को साथ ले चलने के लिए कहा।

प्रोफेसर बोला, "जाओ, भाई। तुम्हारा ग्राहक आ गया है।"

जयन्त ने कहा, "यह धन्धा खराब है।"

प्रोफेसर हँस दिया, "देखने और समझने का भेद है। मैं इसे संसार का महानतम कर्म मानता हूँ।"

जयन्त उठकर चल दिया। तभी प्रोफेसर ने कहा, "सम्भव है, मैं

आज चला जाऊँगा।"

जयन्त रुक गया और बोला, "नहीं प्रोफेसर साहब, यह कैसे होगा। अभी आपको रहना पड़ेगा। आपने जो कहा, वह मैंने सुना।"

प्रोफेसर ने हँसकर कहा, "लेकिन वह सुखकर नहीं लगा होगा। आदमी अपनी प्रशंसा में आनन्द पाता है, आलोचना में नहीं।"

जयन्त ने कहा, "लेकिन आप जो कुछ कहेंगे, मैं उसको अपने लिए मन्त्र मानूँगा, ध्यान से सुनूँगा। आपके प्रति मेरी यही आस्था है।"

प्रोफेसर ने कहा, "अच्छा, अच्छा, अभी तुम जाओ। मरीज़ को देखो। रात में बात करेंगे। मैं भी अब सुखदास के यहाँ जाऊँगा।"

जयन्त ने कहा, "आज मैं भी उसके घर चलूँगा। सचमुच, मैं कभी उस ओर नहीं गया, इसका खेद है। उसने भी नहीं बुलाया।"

प्रोफेसर बोला, "उसने मुझको भी नहीं बुलाया था। मैं स्वयं गया। संयोगवश एक दिन उसके द्वार पर पहुँच गया।"

जयन्त चला गया। तभी अवसर पाकर जयन्त की माँ वहाँ आई। उसे देखते ही प्रोफेसर ने कहा, "आओ, भौजी! बैठो।"

कल्याणी बैठ गई और बोली, "प्रोफेसरजी, आप आये हैं तो इस जयन्त को समझाइये न, अब विवाह कर ले। लड़की वाले आते हैं और लौट जाते हैं।"

प्रोफेसर ने कहा, "हाँ, हाँ, जयन्त का विवाह कर देना चाहिए, कमाऊ है, समझदार है तो बहू भी आनी चाहिए।"

कल्याणी बोली, "देखते हो, मैं बूढ़ी हो गई। अब न मालूम कब तक जिन्दा रहूँ। ऐसे कहाँ तक इस घर का बोझ उठाये चलूँगी।"

प्रोफेसर बोला, "तो जयन्त क्या कहता है? क्या इन्कार करता है?"

"नहीं, इन्कार भी नहीं करता।" कल्याणी बोली, "पर जो व्यक्ति सम्बन्ध करने आता है, वही लौट जाता है। जयन्त अपनी ओर से कुछ नहीं कहता। बात सुनता है और टाल देता है।"

प्रोफेसर ने कहा, "मुझे लगता है कि तुम भूल में हो। अपने पुत्र को ही कुछ और समझती हो। बात करो और सम्बन्ध कर दो। मेरा खयाल है कि जयन्त पूरा दुनियादार है; जब वह पैसा पैदा करता है तो

विवाह भी कर सकता है। यही आदमी करता है। उसके पैदा होने का यही अर्थ है।"

कल्याणी बोली, "तो आदमी और क्या करे ? इस धरती पर आकर वही तो करेगा जिसे समाज करता आया है। समाज की रीति-नीति के साथ निभ सकेगा।"

प्रोफेसर ने बात सुनी तो मुस्करा दिया। वह अपनी उन उदास आँखों से बाहर आसमान की ओर देखने लगा।

कल्याणी बोली, "प्रोफेसर साहब, मैंने इस जयन्त के लिए बड़ी यन्त्रणाएँ सहन की थीं। यह बचपन में बड़ा रोगी रहा था।"

तभी झटके के साथ प्रोफेसर ने कल्याणी की ओर देखा और उसे घूरकर बोला, "तो इसमें हुआ क्या ? तुमने कोई खास बात नहीं की। सभी नारियाँ ऐसा करती हैं। या कहलाने के लिए प्रत्येक नारी अपना बलिदान देती है। बच्चे को अनुराग प्रदान करती है।"

कल्याणी बात का मर्म नहीं समझी। अतएव वह बोली, "हाँ, प्रोफेसर, मैंने भी यही पाया। इसके लिए उपवास किये, देवता की पूजा की।"

उसी समय प्रोफेसर को एक ऐसी औरत की बात याद हो आई कि जिसने सन्तानवती होने के लिए एक सुन्दर बालक की हत्या कर दी थी। उनके खून से अपनी माँग तर की थी। वह इस घिनौनी बात को याद करते ही अतिशय विरक्त बन गया और बोला, "हाँ, भौजी ! औरत सन्तान पाने के लिए सभी कुछ करती है; किसी के बच्चे का खून तक भी कर देती है।"

कल्याणी बोली, "हाँ, हाँ, यह भी है। इस गाँव में ही एक औरत ने अपने देवर के बच्चे को मार दिया था। आठ दिन बाद उस बालक की लाश कुएँ से निकाली गई थी। जिसने वह देखी, उसने अपनी छाती पीटी थी।"

प्रोफेसर ने जैसे आतुर बनकर कहा, "पर माँजी, ऐसा है क्यों ? मैं तो ऐसे आदमियों और घरों को जानता हूँ कि जहाँ सन्तान के कारण ही विपत्ति है। सन्तान ने माँ का खून किया। पुत्र के कारण ही बाप सिर पीटता है, फिर भी लोग सन्तान के भूखे हैं, तरसते हैं, उसके लिए

मरते हैं। भला ऐसा क्यों ?"

कल्याणी ने अपने मुँह में आया थूक सटक लिया, उससे एकाएक कुछ नहीं कहा गया।

प्रोफेसर बोला, "माँजी, यही संसार का भोग है, तृष्णा है। इसे पाकर आदमी कष्ट पाता है, इस जीवन के पथ पर भटकता है, बोलो क्यों ?"

कल्याणी बोली, "प्रोफेसर, यही होता है और होता आया है। तभी तो इस जगत का निर्माण हुआ है। तुम्हारी तरह सब साधु बन जाएँ, योग और वैराग्य की बातें करने लगें तो क्या इस दुनिया का प्रसार हो सकता है ?"

प्रोफेसर मुस्कराया, "माँजी, जिन बातों में आदमी को कष्ट मिलता है और उन्हीं को वह पाना चाहता है, तब भला इसका उपचार क्या ! तुम्हें पुत्र के लिए बहू लानी है, फिर बच्चा बोलो, तुम्हें क्या मिला ! जैसी आज परम्परा है, वह बहू तुम्हारी सेवा नहीं करेगी। तुम्हारे लिए बोझ बनेगी। बोलो, तुमने पुत्र पाकर ही क्या पा लिया। तुम निरन्तर के कष्ट और पीड़ा पाकर जल्दी वृद्धा बन गई···अब आ गई मौत की ओर···"

चकित बनकर कल्याणी बोली, "मुझे यही करना था। मेरा यही कर्तव्य था।"

प्रोफेसर जैसे तीखी और असंगत बात कह गया था, इसलिए तुरन्त ही, अपनी भावना पर अंकुश लगाकर बोला, "सो तो ठीक है, माँजी ! पर तुम्हें सुख नहीं मिला। सन्तोष अब भी प्राप्त नहीं हुआ। मैं कहता हूँ, तुमने जो कुछ किया, किया, बहुत किया। एक सुन्दर और सुशील पुत्र समाज को दे दिया। इस घर का प्रतिनिधि नियुक्त कर दिया। पर अब तो अपनी ओर देखो, अपने चारों ओर, अपने मन की पीड़ा की ओर ! पाओ तो, तुम्हारे मन का परमेश्वर तुमसे और किस वस्तु की कामना करता है ! वह चाहता है कि तुम इस वृद्धावस्था में उपकार की बात सोचो, इस घर की सीमा से बाहर अपने गाँव के समाज की ओर देखो।"

कल्याणी बोली, "प्रोफेसर साहब, गाँव मक्कार है, ओछा है।"

प्रोफेसर ने कहा, "भला क्यों ! न, माँजी ! तुम्हारे पास कुछ है तो उसे दो । सद्‌विचार दो, सद्भावना दो, सदाशयता दो ।"

कल्याणी बोली, "जो घर बनाया है, वह लुटाया नहीं जा सकता ।"

प्रोफेसर हँस दिया, पर यह तुम्हारा शरीर जो एक दिन जल जाएगा, राख का ढेर बन जाएगा तो इसे क्या लोगों में नहीं बाँटा जा सकेगा ? इसके अन्दर जो परमात्मा है, वह क्या लोगों के पास न जा सकेगा, उनकी पीड़ा न सुनेगा, माँजी ?"

माँजी ने सिर झुका दिया और कोई जवाब नहीं दिया । उसी समय जयन्त लौट आया । वह माँ और प्रोफेसर की ओर देखने लगा ।

बारह

रात आधी से ऊपर बीत चुकी थी । प्रोफेसर अतुल प्रगाढ़ निद्रा में सो रहा था । पास के दूसरे पलंग पर जयन्त था । वह जाग रहा था । दूर जंगल में बार-बार सियार बोलता, उसका स्वर जयन्त के कानों में आता । मोहल्ले के कुत्ते और गाँव का चौकीदार भी उस रात उसकी नींद में बाधा डाल रहे थे । जयन्त बार-बार करवट बदल रहा था । जब वह देर तक ऐसी विषम अवस्था में पड़ा रहा तो अन्त में उठ खड़ा हुआ और कमरे के सामने खुली छत पर चला गया । आसमान का चाँद उस समय अपनी पूर्ण कलाओं से अलंकृत था और धरती पर चाँदनी बखेर रहा था । मकान की उस छत पर से दूर तक का जंगल साफ दिखाई दे रहा था । गाँव के मन्दिर का पृष्ठ-भाग भी चमक रहा था । उसका वह स्वर्ण-दर्शित बुर्ज भी दिप-दिप चमक रहा था ।

लेकिन यह कैसी विषम अवस्था थी उस जयन्त की कि उसके चारों ओर फैली हुई प्रकृति हँस रही थी और उसका मानस कलप रहा था, जैसे रो रहा हो । उसका मन जैसे किसी विद्रोह के दावानल में पड़कर झुलसने लगा हो ।

उसी समय, एकाएक जयन्त चौंक गया। उसने मुड़कर देखा कि प्रोफेसर उसके पास आकर खड़ा है। वह मुस्करा रहा है। प्रोफेसर ने जयन्त के कन्धे पर हाथ रखा और उसको अपनी ओर देखते हुए कहा, "कहो, आज क्या आया है तुम्हारे मन में! कोई नई बात .....गहरी बात...?"

प्रोफेसर से इतना सुना तो जयन्त का सिर झुक गया। वह बोल नहीं सका।

किन्तु प्रोफेसर ने कहा, "जयन्त, मैं तुम्हारा गुरु हूँ, साथी हूँ। मुझे बताओ, क्या बात है तुम्हारे मन में? यह तो अनुभव करता हूँ, सुनता भी हूँ कि विवाह के नाम पर तुम्हारा माता-पिता से मतभेद है। इसकी मैं पूर्व कल्पना करता था। परन्तु रोग इतना बढ़ गया है, यह नहीं सोच पाया था।"

जयन्त ने कहा, "प्रोफेसर साहब, मैं स्वयं अनभिज्ञ था कि यह समस्या इतना उग्र रूप धारण करेगी। यों मेरा मन्थन भी कर सकेगी।"

प्रोफेसर ने कहा, "कहो तो, क्या इस बीच में अंजना आई थी? तुम्हें मिली थी?"

जयन्त ने कहा, "जी, आई थी। आज उसका पत्र भी आया था।"

"ओह, नादान जयन्त! उस लड़की को तुम्हें मुझसे मिलाना था। मुझे भी उसका परिचय लेना था।"

जयन्त बोला, "अंजना स्वयं उत्सुक थी कि आपके दर्शन करे, परन्तु वह तो मुझसे दो बात करने आई थी और लौट गई।"

प्रोफेसर जयन्त के पास से हट गया। वह छत पर घूमने लगा। उसने पीछे की ओर दोनों हाथ बाँध लिए और तब फिर जयन्त के पास आकर बोला, "उस अंजना ने तुमसे क्या कहा, उसकी मैं सहज ही कल्पना कर पाता हूँ। निश्चय ही, उसने अपने-आप को विवाह के लिए प्रस्तुत नहीं किया। परन्तु जो उसकी मन:भावना है, उसे मैं समझ सकता हूँ। याद होगा, इस विषय में मैंने तुम्हें टँकोरा था। साफ कहा था कि उस अबोध बालिका की सुप्त भावना को जगाकर खेल न करना। सो आज वही होने चला है। तुममें इतना साहस नहीं कि इस समाज और उसकी चिर-परम्परा के प्रति विद्रोही बनो। तुमने जिस पथ

को स्वीकार किया है वह वणिक्-वृत्ति पर आधारित है। डाक्टरी का पेशा एक दुकानदारी है जहाँ सदाशयता और अनुभूति का सामंजस्य नहीं होता। वहाँ संचय और उपार्जन की भावना होती है। एक विद्यार्थी डाक्टरी पढ़ने में इसीलिए धन व्यय करता है कि वह डाक्टरी को अपना अवलम्ब बनाएगा, उससे धन उपार्जित करेगा।" यह कहते हुए प्रोफेसर रुक गया और बोला, "तुम्हारी स्थिति निःसन्देह विषम है, कठोर है। देखते हो, तुम्हारी माँ चारपाई पर पड़ी है। मैंने स्पष्ट रूप से समझ लिया है कि तुम्हारी माँ अपने युवा पुत्र का विरोध नहीं कर पाती, वह अशक्त है। परन्तु उसकी मानसिक वेदना, उसके जीवन को रिस-रिस कर नष्ट कर रही है। वह ब्राह्मणी अपने पुत्र की पत्नी भी ब्राह्मणकुल की कन्या चाहती है। तुम्हारे पिता जिस दृष्टि से पुत्र के विवाह की बात सोचते हैं, निःसन्देह वह केवल स्वार्थ पर आधारित है। मुझे आश्चर्य है कि वह कैसे पंडित हैं, जाने किस दृष्टि से धर्म की पुस्तकों का पाठ करते हैं।"

जयन्त ने कहा, "मेरे पिता सूद पर रुपया चलाते हैं, वणिक्-वृत्ति के हैं।"

आतुर बनकर प्रोफेसर बोला, "हाँ, इसीलिए! ऐसे व्यक्ति के लिए जाति और धर्म गौण है, रुपया प्रमुख है। अपने स्वार्थ का पृष्ठ-पोषण करना सर्वश्रेष्ठ है।"

जयन्त बोला, "प्रोफेसर साहब, मैं ऐसे पिता की सन्तान हूँ, यह देखकर भी लज्जित हूँ।"

व्यग्र भाव में प्रोफेसर बोला, "नहीं-नहीं, सन्तान के लिए क्या श्रेष्ठ है, यह तुम्हारे पिता ने खूब सोचा है, उन्होंने समझा है। मेरा आज भी यह खयाल है कि धरती के इन्सान को जहाँ एक भावनावादी, एक धार्मिक पंडित की आवश्यकता है, वहाँ निपुण व्यवसायी और दुनियादार इन्सान की भी उपादेयता है। दोनों के अपने स्थान हैं। वणिक् निर्माण की प्रेरणा देता है, भौतिक पदार्थों का नियोजन करता है, पंडित तो केवल उन्हें व्यवहार में ला पाता है।"

जयन्त बोला, "व्यावसायिक और स्वार्थी व्यक्ति के कारण ही इस धरती पर कलंक है, विषमता है।"

प्रोफेसर मुस्कराया, "शायद ऐसा हो। पर इस इन्सान को जिस व्यवस्था की आवश्यकता है, जिसके लिए पैसा मान्य है, वह कैसे आये। भावनावादी भी अन्न, वस्त्र और मकान चाहता है। वह कैसे उपलब्ध हों। भैया, यह सजा हुआ संसार, यह भौतिक पदार्थों का ढेर योंही नहीं लग गया, इनका विकास और उत्पादन एक योजनाबद्ध कार्यप्रणाली के द्वारा हुआ है। श्रम और बुद्धि के योग से संसार का निर्माण हुआ है। अतएव, तुम्हारे पिता की आस्था एक महत्त्व रखती है। यदि वह केवल गाँव के पण्डित होते तो तुम डाक्टर नहीं बन सकते थे। तुम्हारी पढ़ाई पर उन्होंने हज़ारों रुपया व्यय किया है, तब वह कहाँ से आता। उनका यह फ़र्ज़ तुम्हें भुला नहीं देना चाहिए। तुम्हें उनका अस्तित्व स्वीकार करना चाहिए।"

जयन्त ने अपनी देर की रुकी हुई साँस छोड़ते हुए कहा, "मैं परेशान हूँ, दु:खी हूँ।"

प्रोफेसर ने कहा, "यह तुम्हारी व्यक्तिगत कमज़ोरी है। निश्चय ही तुममें वासना बोल रही है। अंजना को प्राप्त करने की इच्छा बलवती हो उठी है तुम्हारे मन में। तुम अपने को धोखा न दो, अपने मन से यह बात कहो कि तुम अंजना से विवाह करके समाज में अपनी ऊँची भावना का प्रसार करना चाहते हो। याद करो, मैंने एक दिन तुमसे कहा था जो कि तुम्हें असंगत लगा होगा कि पितृ-वृत्ति का प्रभाव तुम्हारे मानस पर भी पड़ा है। मैंने सुन लिया है कि अंजना सुन्दर है, भावनामयी है तो इसलिए तुम उसकी ओर आकर्षित हुए हो। एक शब्द मैं कहूँ तो सुनो, यही जीवन की भ्रष्टता है। तुमने उसे सुपथ दिखाया तो केवल इसलिए कि उस सुन्दर बाला को अवसर पाते ही नष्ट कर दो अपनी वासना की भट्टी में···"

एकाएक जयन्त चिल्ला उठा, "प्रोफेसर साहब···"

किन्तु प्रोफेसर को तो रोष था, उसकी वाणी में क्षोभ भरा था, अतएव, वह रुका नहीं, कहता गया, "जयन्तकुमार, तुम अब युवक हो। यदि बच्चे होते तो मैं तुम्हें मारता, दण्ड देता। सचमुच, तुम अपने समाज के अपराधी हो। तुमने गाँव के लोगों के विश्वास का खून किया है। निश्चय ही, तुम मेरे अयोग्य शिष्य हो। तुम अपने पिता को दोष

देते हो, पर मैं कहता हूँ, तुम स्वयं क्रूर हो, कसाई हो।" "मुझे अभी

बरबस ही, जयन्त नीचे झुक गया और प्रोफेसर के पैर पकड़ लिए। निरे आर्त्त स्वर में बोला, "सचमुच, मैं अयोग्य हूँ, प्रोफेसर साहब! अब मैं पश्चात्ताप की आग में जल रहा हूँ।"

प्रोफेसर ने जयन्त को अपने पैरों में पड़ा देखकर भी, उसकी ओर नहीं देखा, अपितु दूर जंगल की ओर, देखता हुआ बोला, "जयन्तकुमार, इस प्रातः की बेला में मैं तुम्हें अभिशाप नहीं दे सकता। तुम मेरे नेतृत्व में देर तक रहे हो। तुम मेरा हृदय छू सके हो!" यह कहते हुए प्रोफेसर गद्‌गद् हो गया। उसका स्वर भी अवरुद्ध बन गया। ममत्व आँखों में उतर आया। वह अपनी उन भारी आँखों से नीचे बैठे जयन्त की ओर देखकर बोला, "अब उठो, देखो, सवेरा हो गया।" यह कहते हुए उसने जयन्त को ऊपर उठाया और कहा, "अब केवल तुम अपने माता-पिता की ओर देखो। उनकी बात मानो। एक शब्द में सुनो, प्रेम नाम की भावना बहुत ऊँची है। उससे वासना की गन्ध दूर रहती है। उस प्रेम को पाने के लिए विवाह आवश्यक नहीं। विवाह एक सामाजिक परम्परा है, जीव-जगत में शरीर की भूख मिटाने की निष्ठा। भला इसके अतिरिक्त इसका अस्तित्व क्या! अतएव, निश्चय ही, न अंजना तुमसे प्रेम करती है, न तुम उससे। वह तो तुम दोनों के स्वरों में वासना बोलती है।

उसी समय पूर्व की ओर दूर क्षितिज में प्रातः की अरुणिमा फूटी, दिन निकल आया। जब प्रोफेसर और जयन्त कमरे से नीचे उतरे तो उन दोनों ने देखा कि घर के आँगन में चारपाई पर कल्याणी पड़ी है और उसके पास अंजना बैठी है, वे दोनों रो रही हैं। कल्याणी दुलार और ममता के साथ अंजना के झुके हुए सिर पर हाथ रखे हुए है और स्वयं आँखों से आँसू बहाती हुई कुछ कहे जा रही है। किन्तु जब वे दोनों पहुँचे तो कल्याणी बोली, "अरे, प्रोफेसर, इस अंजना को समझाओ। इससे कहो, मैं मरूँगी नहीं, मैं अपने जयन्त की तरह इसे भी अभी देर तक देखती रहूँगी।"

और प्रोफेसर अपनी बूढ़ी आँखों से देख रहा था, यह अंजना है! वह मन में कह रहा था, सच, इसके मन में करुणा है, वही तो इसकी आँखों में फूट आई है।"

प्रोफेसर
व्यवस्था
भाव

रात में जब प्रोफेसर जयन्त के पास पहुँचा तो उस समय भी जयन्त की जेब में एक पत्र था, वह अंजना से मिला था। उस पत्र में अंजना ने स्पष्ट शब्दों में लिखा था कि अपने परिवार की मान-मर्यादा की रक्षा के लिए उसका यह अन्तिम निश्चय है कि विवाह उसी व्यक्ति से करना पसन्द करेगी कि जिसे उसके माता-पिता स्वीकार करेंगे। उसी पत्र में अंजना ने जयन्त के प्रति आभार प्रदर्शित किया था कि वह उसके द्वारा प्रदत्त शिक्षा को पाकर अपने जीवन का पथ देख चुकी है। चतुर अंजना ने पत्र के अन्त में लिखा था कि जयन्त अपने विवाह पर उसे न भूले, अपनी दुल्हन का परिचय उसे पाने का भी अवसर प्रदान करे।

किन्तु जब प्रातः के समय अंजना को जयन्त ने माँ के पास बैठी पाया तो उस समय वह नहीं समझ सका कि इतने सवेरे वह कैसे उसकी माँ के पास आई है। वह एक सप्ताह के अन्दर गाँव में दो बार आ चुकी है; उसे पत्र भी लिख चुकी है।

लेकिन उसी समय कल्याणी ने कहा, "अरे जयन्त, अब अंजना का विवाह है। इसकी बिरादरी का लड़का शहर में पढ़ाता है। इसके पिता ने उसीसे विवाह निश्चित किया है।"

अंजना ने अपनी बहती हुई आँखें पोंछ ली थीं। वह प्रोफेसर की तरफ बढ़ गई और उसके समक्ष सिर झुकाती हुई बोली, "यह अवसर की बात है कि आज इस शुभ प्रभात में आपके शुभ्र दर्शन कर पाई। मेरा प्रणाम स्वीकार करें!"

गद्गद् भाव से प्रोफेसर ने अंजना के सिर पर हाथ रख दिया और निरे आलोड़ भरे स्वर में कहा, "तुम जीती रहो, अंजना! भगवान तुम्हारा मंगल करे!"

अंजना ने कहा, "मुझे आपका आशीष चाहिए।" यह कहते हुए अंजना ने जयन्त की ओर दृष्टिपात किया। देखा कि वह पत्थर के समान कठोर और भारी था। यद्यपि प्रातः का समय था, सुहावनी हवा चल रही थी, परन्तु जयन्त के मुँह पर पसीना था, वह जैसे अपने मानस की गहराई में डूबा जा रहा था। ऐसी अवस्था में ही अंजना ने उसे

टँकोरा और कहा, "आप बाहर तक मेरे साथ चलेंगे! मुझे अभी लौटना है।"

जयन्त चल दिया और घर से बाहर हो गया। वहाँ से अंजना का घर दूर था, परन्तु वह रास्ता उन दोनों ने बिना बोले काट दिया। यद्यपि अभी ठीक से सूर्य नहीं निकला था, रास्ते में धुँधला प्रकाश था, फिर भी, न जयन्त बोला और न अंजना ही। मानों दोनों के मन में एक ही बात थी, एक ही समस्या, जिसका सुलझाव उन दोनों में से एक के भी पास नहीं था। घर पहुँचते ही अंजना ने सोते हुए एक शहरी युवक की ओर संकेत किया और कहा, "पिताजी ने इन्हें निश्चित किया है, मेरे विवाह के लिए। कहिये, आपको पसन्द हैं? बी० ए० पास हैं। अध्यापक हैं। हमारी जाति के एक चौधरी के पुत्र हैं।"

उस सोते हुए युवक को देखते ही जयन्त ने कहा, "यह तो तुमने पत्र में लिख दिया था। फिर इतना कष्ट क्यों किया?"

अंजना ने आतुर बनकर कहा, "नहीं-नहीं, कष्ट तो आपको दिया जो यहाँ तक आना पड़ा।" वह बोली, "परन्तु मुझे तो आपसे यह जानना था कि आपकी सम्मति क्या है। लड़का पसन्द है न आपको! क्रिकेट का प्रसिद्ध खिलाड़ी है।"

जल्दी से मानो व्यग्र भाव में जयन्त बोला, "मैं कुछ नहीं जानता, सच नहीं!" और वह लौट पड़ा।

किन्तु अंजना ने फिर अपने स्वर पर ज़ोर देकर कहा, "जयन्तजी..."

जयन्त नहीं रुका। उसने नहीं सुना। वह अपने-आप कहता गया, "पत्थर...जड़..."

और कदाचित् वह जयन्त मुड़ पाता एक पल को देख पाता तो उसे यह समझने में कठिनाई न होती कि अंजना न पत्थर थी, न जड़! वह एक भावनामयी नारी थी जो कि यौवन और उससे प्रेरित अनुभूति के तेज प्रवाह में बही जा रही थी, बही ही जा रही थी।

जब जयन्त चला गया तो अंजना सीधी घर में गई और अपनी चारपाई पर कटी डाल की तरह पड़ते ही फूट-फूटकर रो पड़ी।

उधर एक शिकारी के समान, बंसी पानी में डाले, पंडित ज्ञाननाथ देर से जिस मछली की तलाश में थे, आखिर वह उनके काँटे में फँसी।

एक समर्थ और धनवान ब्राह्मण अपनी पुत्री के विवाह का आवेदन लेकर उनके पास आया और प्रथम भेंट में ही उन्हें आशा से अधिक पैसा दे गया। प्रोफेसर अतुल उस गाँव से जा चुका था। वह जल्दी ही फिर आने को कह गया था। किन्तु यह केवल एक आश्चर्य बना रह गया कि अपने विवाह पर जयन्त एकदम मौन रहा। यह सचमुच, उसके परिचितों के लिए न समझ में आने वाला विषय था। निश्चय ही, यह बात गाँव के अनेक व्यक्तियों की धारणा के विपरीत थी। जिन लोगों को उस समय जयन्त का मौन रह जाना पसन्द नहीं आया, उनमें एक था मलखान, जयन्त का पड़ौसी और विश्वासपात्र साथी। विवाह की तिथि निश्चित होने के बाद एक दिन की सन्ध्या में जब मलखान गाँव की चौपाल पर गया तो उसके समवयस्क साथी रामदीन ने उसे सुनाया, "कहो मलखान, मैं कहता था न, लालची बाप का बेटा भी लालची ही निकलेगा। पैसे के सामने झुक जाएगा, यह जयन्त ! पर तुम बार-बार कहते थे कि नहीं, जयन्त सच्चा आदमी है, आदर्शवादी है। अरे, मैं आज भी कहता हूँ, साँप का बच्चा भी साँप निकलेगा। ब्राह्मण का लड़का भला चमार की लड़की से विवाह कर सकेगा•••राम-राम कहो !"

रामदीन ठाकुर था। वह अपनी बात कहने के साथ ही ठहाका मार-कर हँस दिया। उस अवस्था में बरबस उसने चौपाल पर बैठे अन्य व्यक्तियों को भी अपनी ओर आकर्षित कर लिया।

वहीं पर बैठे एक वृद्ध ने कहा, "जयन्त चालाक है। जब आया था तो गाँव का सेवक बना दिखाई दिया। बिना पैसा लिए दवाई देता, लोगों के घरों में आता-जाता। उसका बाप तो है ही एक काइयाँ, पर बेटा उससे भी आगे निकल गया।"

पास बैठे दूसरे प्रौढ़ व्यक्ति ने कहा, "सपूत ऐसे ही होते हैं। बाप से बेटा अधिक रुपया कमाने लगा है। तुम देखना कि कुछ वर्षों में जयन्त बड़ी जायदाद का मालिक बनेगा। इस इलाके का बड़ा आदमी हो जाएगा।"

उनमें रामदीन पढ़ा-लिखा था। एक स्कूल में अध्यापक था। तुरन्त बोला, "चाचा, इस धरती पर ऐसे ज़हरीले साँपों की कमी नहीं है, जो आदमी को काटते हैं और मारते हैं। यह जयन्त भी एक साँप है। वह

लोगों को दवा देकर पैसा उपार्जित करता है। बोलो, गाँव पर इसका क्या ऐहसान है? मेरी निगाह में तो वह भी भ्रष्ट है, इन्सानियत का कलंक!"

उस प्रौढ़ व्यक्ति ने उपहास के साथ कहा, "रामदीन, अँगूर खट्टे हैं।"

इतनी बात सुनी तो लोगों में ठहाका उठा। सभी ने उस रामदीन को बरबस ही मूर्ख बना दिया।

तभी प्रौढ़ फिर बोला, "पैसा सभी को चाहिए, तुम्हें भी। जो चार पैसे कमाने में समर्थ होता है, वही सफल आदमी है। समाज में उसी का सम्मान है। तुम देखना पण्डित का लड़का जयन्त एक दिन बड़ा आदमी बनेगा। नाम कमायेगा।"

लेकिन धीर भाव में रामदीन ने कहा, "इस देश में पैसे वाले बहुत हैं। राजा-महाराजा हैं। कौन उनको जानता है? परन्तु जो जनता की सेवा करता है, वह सिर पर उठाया जाता है···वह गांधी, वह तिलक, वह दयानंद, वह स्वामी रामकृष्ण परमहंस···"

उसी के पास बैठे वृद्ध ने कहा, "अरे, किनकी बात करता है, भैया! वे देवता थे। ऊँचे संस्कार लेकर इस धरती पर पैदा हुए थे।"

ऊँचे स्वर में रामदीन बोला, "यही तो कहता हूँ। इस जयन्त ने गाँव में आकर सेवा का ढोंग क्यों रचा···वह चमार की लड़की अंजना ···कौआ चला हंस की चाल··ही-ही, हो-हो···"

आश्चर्य कि उस समय मलखान अपने स्वभाव के अनुरूप चुप बैठा था। वह अपनी छोटी-छोटी मूँछों को ऐंठ रहा था। उसी समय जब रामदीन ने बात कही और ठहाका मारा तो उसने अपना सिर उठाया और रामदीन की ओर देखा। उसी अवस्था में उसने कहा, "रामदीन भैया, तुम ठीक कहते हो। जयन्त को ऐसा बनना था तो वह रूप नहीं दिखाना था। भेड़िये को गाय की खाल ओढ़कर गाँव के समक्ष नहीं आना था।"

रामदीन ने अपने स्वर पर ज़ोर देकर कहा, "मैं कहता हूँ, इस जयन्त ने नाबदान के कीड़े का काम किया। तब तो उस लड़की का नाम भी बदल दिया। बच्चू ऐसे सुधारवादी बने कि पढ़ाई का काम करने

लगे···मुफ्त में दवा और मुफ्त ही में शिक्षा देने लगे। मैं तभी समझता था कि अपना रास्ता बना रहा है, यह जयन्त! बोलो, अब कहाँ गई वह प्रौढ़ शिक्षा की बात? अब पैसा कमाने लगा तो उसी में लिप्त हो गया है।"

एक व्यक्ति ने कहा, "तुम गलत समझते हो। उसने कुछ बातें अच्छी भी की हैं। यह कम त्याग नहीं था कि श्रीधर को पैसा दे दिया। सचमुच तब तो बड़ा विनम्र था। वैसे देखता हूँ कि अब बात नहीं करता। अचरज की बात है कि कैसे बदल गया। शायद परिस्थिति ने दूसरे साँचे में ढाल दिया।"

दूसरे ने कहा, "अब उसके पास काम बहुत है। मरीज़ इतने आते हैं कि ठीक से देख नहीं पाता। बात करते भी झुँझलाता है। चिड़चिड़ा बन गया है।"

रामदीन ने कहा, "दोनों हाथों से रुपया कमाता है। घर भरता है।"

उसी समय मलखान वहाँ से उठ चला। वह अपने खेत की ओर चल दिया। उसके मन में अब भी यह बात थी कि जयन्त स्वयं नहीं बदला, उसे मजबूर किया गया है। जब वह एक खेत के किनारे से जा रहा था तो तभी चेता चमार खेत में काम करता दिखाई दिया। उसे देख मलखान रुक गया और पास जाकर बोला, "कहो, चेतराम, क्या हाल है? तुम्हारी लड़की अंजना···सुना है कि तुमने कहीं उसका विवाह निश्चित कर दिया है?"

चेतराम ने कहा, "हाँ, मलखान, सोचता तो हूँ कि लड़की का विवाह हो जाए। पर वह नहीं करती। अंजना पढ़ रही है। उसने एक इम्तहान पास कर लिया है। और अब वह एक अस्पताल में काम भी करने लगी है।"

मलखान बोला, "तो कुछ पाती है?"

चेतराम बोला, "हाँ, कुछ पाने लगी है। पिछली बार जब आई तो पचास रुपया दे गई थी।"

"पर उसका विवाह? सियानी लड़की अब कब तक ऐसे रहेगी? मैंने तो सुना था कि···"

चेतराम बोला, "भैया, अब यह बात मेरे बस के बाहर है। लड़की पूरी शहरातिन हो गई। मेरी पहुँच तो देहाती लड़कों तक थी, जिन्हें अब वह स्वीकार नहीं करती।"

"तो यों कहो, यह भी तुमने लड़की पर छोड़ दिया है।" तभी मलखान ने साँस भरी और कहा, "और यह भी सुना, जयन्तबाबू का विवाह हो रहा है ?"

"हाँ, हाँ, सुन लिया। बड़ा घर मिला है। पहली भेंट में बहुत रुपया दे गया है, लड़की वाला !"

"अरे, वह तो राजा है। घर भर देगा, पण्डित ज्ञाननाथ का !"

प्रसन्न होकर चेतराम बोला, "अच्छा है, भैया ! लड़का भी भला है। उसी के सहारे तो मेरी लड़की का भाग्य बदला है।"

तभी मलखान बोला, "तेरी लड़की का भाग्य तो बदल दिया, लेकिन तुझसे लड़की को दूर भी कर दिया। लोग तो समझते थे कि तेरी लड़की और जयन्त···"

"अरे, भैया ! जिसके जो मुँह में आये कह डालता है। दूसरे की पगड़ी उछालना लोग खूब पसन्द करते हैं। भला चमार और ब्राह्मण का कहीं सम्बन्ध होता है ? कभी सुना है ?"

मलखान को जैसे आगे कहने का सहारा मिला। वह बोला, "लोग मूर्ख नहीं हैं, चेतराम ! किसी बात का सिरा ज़रूर पकड़ते हैं। और जानता तो है तू, अब हमारे देश में ऊँच-नीच का भेद-भाव नहीं रहा।"

चेतराम ने कहा, "मेरी लड़की कुछ औरतों के साथ पढ़ने जाती थी, बस, यही तो। गाँव वालों ने इसी पर कहानी गढ़ दी। मैं गरीब था न, जाति का चमार, तो मेरी पगड़ी उछाल दी।"

"हाँ, यही चेतराम ! यह गाँव का कम अपराध नहीं था। पर मेरा यह भी खयाल है कि तेरी लड़की के साथ जयन्त ने भी न्याय नहीं किया। उसने सूखे खेत में पानी दिया तो उससे मिट्टी के नीचे दबा हुआ बीज अंकुर बनकर फूट आया था। समझता है न, अंजना को जब पता चलेगा कि जयन्त की सगाई हो गई तो उसके अरमानों का किला ढह जाएगा···उस अबोध बालिका के मन में इस जयन्त ने प्रेम का अंकुर पैदा किया था। यही जयन्त का पाप था। लोगों ने ठीक समझा था।"

चेतराम उस समय अपनी बूढ़ी आँखों से दूर पथ की ओर देख रहा था। वह जैसे मलखान की बात के अन्तराल में डूब चुका था।

मलखान बोला, "चेतराम भगत, प्रेम करना पाप नहीं, अन्याय नहीं। तेरी लड़की जवान थी। उसके पास भी अभिलाषा थी। जो जयन्त पहले जातिवाद को पाप मानता था, मैं देखता हूँ कि आज उसी ने जाति के समक्ष अपना सिर झुका दिया है। और यह कहे देता हूँ, अंजना सरीखी लड़की के इन विचारों से प्रभावित होकर ही वह दिन-ब-दिन उसके सम्पर्क में पहुँचता गया।" उन दिनों मलखान के मन में यह बात आती थी कि जिस दिन यह जयन्त चमार की लड़की अंजना से विवाह कर लेगा, गाँव में वह पहला व्यक्ति होगा कि जो जयन्त के गले में फूलों का हार डालकर यह कहेगा कि तुम हो वास्तव में साहसी··· नव-चेतना के प्रतीक !

किन्तु उसी जयन्त को जब उसने फिसलकर नीचे गिरता पाया तो मलखान ने सहज ही समझ लिया कि सब इसी प्रकार फिसलते हैं—चिकनाई है न इस धरती पर, काई जमी है, सदियों से एक ही परम्परा और गन्दी विचारधारा इस धरती पर तैरती रही है, इसलिए आदमी टिक नहीं सकता। पैर जमाकर खड़ा नहीं हो सकता। आदर्श और त्याग की आड़ लेकर यह आदमी शिकार करता है, छद्मवेशी बनता है, आदमी से जानवर, फिर पिशाच···

निस्संदेह, उस समय खेत पर खड़े मलखान के मस्तिष्क में विचारों की आँधी उठ रही थी। उसके मन में बार-बार आता था कि वह अभी गाँव लौट जाए और लाठी का एक भरा हाथ उस जयन्त की खोपड़ी पर मार दे। उसे धरती पर गिरा दे और गाँव के समूचे समाज को सुनाकर कहे—यह भी चोर है, डाकू है। इसका अपराध इसलिए बड़ा है कि इसने सेवा की आड़ ली। अतः इसको यही सज़ा मिलनी चाहिए थी।

मलखान अपने खेत से लौट पड़ा। उसका मन गिर गया, उत्साह-हीन भी हो गया। और कदाचित् इसका कारण यह था कि जयन्त का प्रसंग आने पर उसकी भावना खण्ड-खण्ड हो गई; उसकी आँखों के समक्ष ही धरती पर छितरा गई। वह भावना ठगी गई। असमय मृत्यु

के मुँह में समा गई। क्योंकि बचपन से मलखान को ऐसा व्यक्ति तो मिला नहीं कि जो ऊँची बात करता हो। प्रस्तुत परम्पराओं और इच्छाओं से तनिक हटकर चलता हो ; लेकिन एक जयन्त ही ऐसा आदमी दिखाई दिया कि जो शहर से पढ़कर, बहुत-सी किताबों का ज्ञान लेकर, जब गाँव में आया तो सहज ही, मलखान ने समझा कि हाँ, इस जयन्त के पास कुछ है। प्रेरणा है, उत्साह है और लगन है। यह स्वार्थ और स्वेच्छा की दलदल से दूर खड़ा है। अपना-पराया भी नहीं देखता। बस, केवल वह एक आदमी है···आदमी की जाति को प्यार करता है, उसके प्रति समर्पित हो जाने का भाव रखता है।

लेकिन वही जयन्त जब परम्पराओं का, इन्सान की पुरानी आदतों का दास बना दिखाई दिया तो सचमुच, मलखान का मन गिर गया। उसे लगा कि यह भी साँप है, इसके दाँतों में जहर है, कालकूट की तरह फुँफकारता है। तमाम दुनिया की दौलत यह जयन्त भी अपने घर में भर लेनी चाहता है।

और आश्चर्य की बात तो यह थी कि एक बार स्वयं ही जयन्त ने मलखान को बताया था कि ये डॉक्टर, ये वकील भी सरमायेदारों की तरह इन्सान का शोषण करते हैं, अवसरवादी बनते हैं और इन्सान की विवशता का लाभ उठाते हैं। उसी अमिट वाक्य को अपने मानस में लिए, मलखान बार-बार चौंकता और कहता, 'तो अब क्या···इस जयन्त की उस बात का अर्थ क्या !' मलखान रास्ते में रुक गया और ऊपर नीले आसमान को देख, कड़ुवे भाव से मुस्कराकर बोल दिया, "सच ही कहा है किसी ने कि आदमी सहज में नहीं समझा जाता। साँप-बिच्छू से बचा जा सकता है। पर इस आदमी से नहीं।"

उसी समय मलखान चौंक गया। चकित भी हुआ। उसने देखा कि सामने से चेतराम की लड़की अंजना जा रही है। उसके साथ एक लड़की और है। दोनों पूरी शहरातिन हैं। मेम बनी हैं।

अंजना के पास आते ही मलखान बोल पड़ा, "अरे, अंजना तू ! कब आई ?"

अंजना ने कहा, "मैं अभी आई थी।"

"अच्छा, तो छुट्टी होगी। ये कौन हैं ?"

अंजना बोली, "मेरी सहपाठिन है।"

"तो रहोगी न ?"

अंजना ने कहा, "नहीं, मैं कल ही लौट जाऊँगी।"

"तो जयन्तबाबू से भेंट करोगी ?"

अंजना ने दूर उड़ते हुए पंछी की ओर देखते हुए कहा, "हाँ, मिल सकी तो मिलूँगी। वह ठीक तो हैं ?"

मलखान बोला, "तुमने सुना तो होगा ही कि जयन्त का ब्याह···"

अंजना ने कहा, "हाँ, अभी-अभी सुना है। मोहल्ले की एक लड़की ने बताया है।"

मलखान ने कहा, "लड़की का बाप बड़ा आदमी है। जयन्त के पिता को बहुत धन देगा। सगाई में ही कई हज़ार नगद और सामान दे गया है।"

अंजना ने कहा, "ठीक तो है रुपये में रुपया आता है। जयन्तबाबू भी तो बड़े आदमी हैं। ऊँचे विचार रखते हैं।"

मलखान ने उन दोनों लड़कियों को देखते हुए कहा, "हाँ, आदमी विचार तो ऊँचे रखता है, पर कर्म नीचे करता है।"

बात सुनकर अंजना चंचल बन गई। वह तुरन्त बोली, "अच्छा है, भैया मलखान ! सभी ऐसा कहते हैं और करते हैं।" और इतना कहने के साथ ही उसने अपने पैरों को आगे बढ़ा दिया।

चौदह

पत्थर पर जब पत्थर मारा जाता है तो आग निकलती है। वह भावनाओं से भरा युवक मलखान भले ही इस बात का अनुमान नहीं लगा सका कि उसकी बात से अंजना को कितनी चोट पहुँची, परन्तु यह सत्य था कि वह भावनामयी एकाएक ऐसी बन गई कि जैसे रो पड़ेगी, मूर्च्छित होकर उस रास्ते पर गिर पड़ेगी। उसकी साथिन भी उसी अस्पताल

में नर्स थी कि जिसमें अंजना काम करती थी । उस
बात को समझ लिया कि ज़रूर इस अंजना के मन में
परेशानी है । इसलिए वह एक हरे-भरे खेत के डौले पर रुक साफ
बोली, "अहा ! कैसा सुहावना मौसम है । यह कितना अनुराग और
उल्लास भरा है ।"

लेकिन अंजना तब भी मौन रही । वह बोल नहीं सकी ।

वह नर्स बोली, "देखो अंजना, यह समाँ भी नहीं रहेगा और एक दिन हम-तुम भी नहीं ।"

अंजना ने साँस भरकर कहा, "यहाँ जो कुछ है वह सभी अस्थायी है, अस्थिर है ।"

नीरा नाम की उस नर्स ने कहा, "अंजनादेवी, पदार्थ-सेवी मनुष्य यह नहीं देखता कि क्या स्थायी है और क्या नहीं । बस, यह समझ लो कि मनुष्य नवीनता का प्रेमी है । भौतिक जगत में रस लेना ही इसका स्वभाव है ।"

किन्तु नीरा की वह बात अंजना को या तो रुचिकर नहीं लगी अथवा समझ में नहीं आई । वह मौन बनी रही । वह केवल हरे खेत की ओर स्थिर दृष्टि से देखती रही ।

नीरा ने कहा, "केवल अपरिवर्तित भगवान है, वह सत्य की भावना है ।"

तभी अंजना ने अपने स्वर पर ज़ोर देकर कहा, "हाँ, मनुष्य भावना भी बदलता है ।"

नीरा ने कहा, "यह परिस्थिति की बात है ।"

जैसे झुँझलाकर अंजना बोली, "यह झूठा रूपक है, छलना है । मैं जानती हूँ कि आदमी स्वार्थवश ऐसा करता है ।"

बरबस, नीरा ने हँस दिया । उसने सिर के ऊपर से जाते हुए सफेद बगुलों का दल देखा और कहा, "अंजना बहिन, यह विषय हमारी समझ से परे है, इतना ही जितना यह कि ये बगुले उड़कर पता नहीं कहाँ जाएँ । मैं तो बस, इतना समझती हूँ कि इस धरती पर जो भी आता है वह अपनी परिस्थिति के अनुरूप जीवन का आनन्द लेता है । उसमें डूब जाना पसन्द करता है ।"

अंजना बो-कहा, "मैं भी मानती हूँ।"

"तो ..., तुम भी इस सुहावने जीवन का आनन्द लो। सच बताना, ...ज का कैप्टेन क्या कहता था ? मैं रोज़ देखती थी कि तुम उस ...मार के पलंग के पास जातीं, तो वह एक अपूर्व प्यार की दृष्टि से तुम्हारी ओर देखता था। क्यों, कोई प्रेम की बात कहता था ? मुझसे न छिपाना। मैं उस कैप्टेन को जानती हूँ। एक बार पहले भी वह अस्पताल में आया था। तब उसके कन्धे में गोली लगी थी। पन्द्रह दिन मेरे संरक्षण में रहा था। मुझे यह भी पता है कि उसे आज तक ऐसा सुयोग नहीं मिला। उसे किसी लड़की ने प्रेम नहीं किया। जो भी उसके पास आई वह उससे डरी ही, उस भीमकाय काले-कलूटे कैप्टेन से कोई भी प्रेम करने के लिए प्रस्तुत नहीं हुई। मैं जानती हूँ, उसकी एक माँ थी लेकिन अब चल बसी है। उसका घर सूना है, दिल सूना, यों उसका जीवन भी सूना है।"

उस समय अंजना गम्भीर थी, उदास बनी थी। अभी बातें समाप्त ही हुई थीं कि अंजना का घर आ गया। वे दोनों घर में चली गईं। अंजना की माँ चूल्हे पर बैठी रोटी बना रही थी। देखकर बोली, "अरी, अब आई हो तुम, बैठो। रोटी खा लो।"

नीरा ने पूछा, "क्या बनाया है, माँजी !"

अंजना की माँ बोली, "देहाती खाना है, बेटी ! जंगल का साग तथा ये मक्का की रोटी हैं !"

"वाह-वाह ! यही तो शहर में नहीं मिलता। आज मिला है, तो खूब खाऊँगी ! बैठ अंजना ! अब मैंने समझ लिया। यहाँ गाँव में नया अन्न मिलता है, नया जीवन ! अब मैं तेरे साथ आया करूँगी। तू न लाएगी तो स्वयं आ जाया करूँगी, क्यों माँजी, है न !"

माँ ने कहा, "हाँ, बेटी ! तुम्हारा घर है। जब आओगी तो इसका द्वार तुम्हें खुला मिलेगा।"

दोनों बैठ गईं, रोटी खाने लगीं।

तभी नीरा ने कहा, "यह सच है कि गाँव में दिखावा नहीं, यहाँ का आदमी बहु-व्यसनी नहीं, प्रमादी नहीं।"

अंजना बोली, "यहाँ ऐसा साधन भी नहीं है; पैसा नहीं है तो

बाज़ार नहीं, सिनेमा या खेल-तमाशा नहीं है।"

नीरा ने कहा, "बाहर का जीवन गुलझटदार है, सीधा या साफ नहीं है। वहाँ आदमी के पास पैसा जिस तेज़ी से आता है उसी तीव्रता से चला जाता है। अन्ततः आदमी पराश्रित और दीन रहता है।"

रूखे भाव में अंजना ने हँसकर कहा, "फिर भी वहाँ का आदमी दम्भी और मगरूर रहता है। अपने सामने किसी को कुछ नहीं समझता है।"

उसी समय माँ ने कहा, "थोड़ा साग और लो। रोटी भी दूँ क्या?"

अंजना बोली, "मैं खा चुकी हूँ।"

नीरा ने भी तत्काल हाथ रोकते हुए कहा, "बस, माँजी!"

माँ बोली, "इस अंजना को अब जाने क्या हो गया है। अपनी खुराक भी छोड़ती जाती है। रोटी न खाएगी तो फिर किस सहारे चलेगी।"

परिहास के स्वर में नीरा ने कहा, "यह अंजना चटोरी हो गई है।"

किन्तु माँ अपने मन की बात लेकर बोली, "अब कहाँ गई थी? क्या जयन्त के पास?"

अंजना ने कहा, "नहीं, जंगल में।"

माँ ने कहा, "जयन्त के पास तू भी जाती और बधाई दे आती। तेरा चाचा तो गया था।"

नीरा बोली, "माँजी, किसी का बड़े घर में ब्याह हो तो यह क्या बड़ी बात है। उस जयन्त ने कौन-सा किला फतह किया है? वह कौन है?"

माँ ने कहा, "नहीं बेटी, उसका हम लोगों के ऊपर ऐहसान है। अंजना को इस अवस्था पर पहुँचाना उसी का काम है। आदमी भला है। यह अंजना वहाँ जाये तो तू इसके साथ चली जाना। बात करेगी तो कहेगी, वह जयन्त समझदार है। घर का बड़ा है तो दिल का भी बड़ा है।"

किन्तु नीरा ने उपेक्षा से कहा, "माँजी, हमारे अस्पताल में ऐसे बहुत-से मरीज़ आते हैं कि जो पढ़े-लिखे होते हैं। बड़ी लच्छेदार बातें

करते हैं। और वह अस्पताल ही क्यों, समूचा शहर ऐसे ही आदमियों से भरा पड़ा है। सच तुम वहाँ जाकर देखो तो कहोगी कि वाकई आदमी मक्खी की तरह भिनभिनाता है। किन्तु वह सफेदपोश आदमी, वह लच्छेदार बातें करने वाला इन्सान, किसी की जेब काटता है, किसी की चोरी करता है और किसी का खून कर देता है। मैं कहती हूँ जितने कम आदमियों से मिला जाए उतना ही अच्छा है। वह जयन्त कैसा है, मुझे इसका पता चल गया। अभी रास्ते में एक आदमी इस अंजना को बता गया है।"

चकित बनकर माँ ने पूछा, "अरी, कौन था वह, अंजना ? मैं जानती हूँ, उस जयन्त के बैरी-दुश्मन बहुत हैं। खाते-पीते इज्जतदार आदमी को क्या लोग फटी आँखों देखते हैं ? हाँ, कौन था, री ?"

उदास स्वर में अंजना ने कह दिया, "मलखान था, माँ !"

"मलखान। अरी, वह तो जब मिलता तभी जयन्त की बड़ाई करता था। अब एकदम बदल गया ? वह भी दूसरे शिविर में चला गया ?" माँ ने चकित स्वर में कहा।

अंजना उठकर खड़ी हो गई और बोली, "आदमी कब बदलता है, इसका कोई नपैना नहीं है, माँ !"

माँ ने कहा, "राम-राम ! यह आदमी एक मुँह से जाने कितनी बातें करता है। जिसको अच्छा कहता है तो उसी को बुरा कहते भी न लजाता है और न आगा-पीछा देखता है।"

वहाँ से दोनों लड़कियाँ एक चारपाई पर जा पड़ीं। उसी समय नीरा बोली, "चलना हो तो चल, उस जयन्त के पास ! मैं भी देख आऊँ तेरे उस डाक्टर को। तूने भी बहुत बार उसका ज़िक्र किया था। सदा प्रशंसा की थी। तेरे कमरे में लगा फोटो तो मैंने अनेक बार देखा था। उसमें तो डाक्टर जयन्त सुन्दर और शरीर से स्वस्थ दिखता है।"

अंजना ने कहा, "अब मेरा उस ओर जाना ठीक नहीं है।"

नीरा बोली, "तो रहने दे। मार गोली।" उसने आरम्भ रखा, "सच इस गाँव में शान्ति है, चैन है। मैंने रोटी भी अधिक खा ली। बड़ी ज़ायकेदार लगी। शायद मक्का की रोटी आज तक नहीं खाई थी।"

यद्यपि उस समय अंजना के मन में जयन्त की बात थी, परन्तु जब

नीरा ने अपनी बात कही तो वह जैसे अनजाने में बोल पड़ी, "यहाँ का यही खाना है। सस्ता है और यही सुलभ होता है।"

नीरा बोली, "किन्तु गाँव में शोभा नहीं। गन्दगी है। देख तो, चारों ओर कितनी मक्खियाँ हैं। वह सामने पानी के पोखर में कितने मच्छर भिनभिना रहे हैं। चारों ओर कूड़े के ढेर लगे हैं।"

अंजना ने साँस भरकर कहा, "नीरा बहिन, गाँव का जीवन भी कठोर है, विषम है। दरिद्रता ने यहाँ के प्रत्येक व्यक्ति को ग्रस रखा है। यहाँ अशिक्षा है। घर-घर पीड़ा से युक्त है। और इस सबका कारण एक ही है कि यहाँ पैसा नहीं है; उसके आने का आधार नहीं। कोई रास्ता नहीं।"

साँस भर, नीरा ने कहा, "वास्तव में यही बात है।"

अंजना अब उठकर बैठ गई और सामने देखने लगी।

चौंककर नीरा ने पूछा, "वहाँ क्या देख रही है?"

किन्तु जब तक अंजना कुछ कहती इससे पहले ही नीरा ने देखा कि दो आदमियों के साथ जयन्त उस छप्पर के समीप आ रहा है कि जिसके नीचे खुद वे दोनों पड़ी थीं। पास आते ही उसने अंजना को देखकर कहा, "अरे, अंजना तुम यहाँ! कब आई?"

अंजना चारपाई से खड़ी हो गई और बोली, "आज ही आई, दो घण्टे पूर्व!"

"अच्छा, अच्छा। मुझे खबर मिल गई थी कि तुम्हें अस्पताल में काम मिल गया है। चलो अच्छा ही हुआ है। अब तुम और तरक्की कर सकोगी। यह साथ में कौन? शायद 'सिस्टर' हैं?"

अंजना ने कहा, "यह नीरा है। उसी अस्पताल में नर्स का कार्य करती है।"

जयन्त ने पैर आगे बढ़ाते हुए कहा, "चौधरी का लड़का बीमार है, शायद हैज़ा हो गया है।"

"अंजना ने तत्काल कहा, "मैं भी चलूँ तुम्हारे साथ!"

जयन्त बोला, "नहीं, नहीं, तुम बैठो, आराम करो!" और वह उन आदमियों के साथ आगे बढ़ गया।

तभी नीरा ने कहा, "मेरे विचार में यही जयन्त डाक्टर था।"

मानो कहीं उस जगह से दूर जाते हुए अंजना ने भारी स्वर से कहा, "हाँ, यही था, डाक्टर जयन्त !"

"यह जयन्त यहाँ खूब उपार्जित करता है। लोगों द्वारा पूजा जाता है। अन्धों में काना राजा है।" नीरा हँसी और फिर बोल पड़ी, "अब समझी मैं, मेरी प्यारी साथिन के मन में क्या डोलता है। कौन रमता है। सच यह जयन्त सुन्दर लगता है।"

अंजना ने कहा, "नीरा बहिन, कोई और समझे या नहीं पर तू ज़रूर समझ ले। मैंने कभी नहीं चाहा कि इस जयन्त का पल्ला पकड़ लूँ, इसके पास मिलकर बैठ जाऊँ। मैं इस जयन्त का सम्मान करती हूँ। मैं इसकी ऋणी हूँ। यह आदमी भले ही हो, पर मैं इसे देवता मानती हूँ।"

उस समय अंजना के समान नीरा भी गम्भीर बनी थी। नीरा बोली, "तुम्हें यही सोचना चाहिए, इस कुलीन जयन्त को पथ-भ्रष्ट करने की बात मन में नहीं लानी चाहिए।"

अंजना बोली, "किन्तु मैं यह भी पसन्द नहीं करूँगी कि यह जयन्त अपने मन और स्वभाव से बदल जाए। इन्सान की बस्ती में बैठकर पूरा कसाई बन जाए। मैंने सुना है कि अब यह लोगों से कसकर पैसा वसूल करता है। खूब कमाता है। पैसा भागता है तो यह भी उस पैसे के पीछे भागता जाता है।" उसने बात जारी रखी, "इस जयन्त ने एक दिन मेरा आवाहन किया था, मुझे उद्बोधित किया। इसने मेरा निर्माण किया। मैं चाहती हूँ कि यह जयन्त अपनी आस्था को न भूल जाए।"

यह सुनकर नीरा हँसी नहीं। वह मौन रह गई। कुछ ठहरकर बोली, "आज का तत्वज्ञानी वही है कि जो पैसा प्राप्त करने की कला पहचान ले। यह डाक्टर जयन्त वही तो करता है। जब डाक्टरी पढ़ा है तो उसका उपयोग करना ही शोभा देता है। माँ-बाप ने पढ़ाई पर पैसा लगाया तो उसे सूद-सहित वसूल करना इसे भी रुचिकर लगेगा।"

किन्तु अंजना इतना सुनकर चिढ़ गई और तीव्र स्वर में बोली, "ठीक तो है। कसाई, कसाई क्यों न हो ? बुद्ध या ईसामसीह के अवतार को मान्यता देना भी बेकार है।" उसने कहा, "नीरा, मेरा मत है कि आदमी उपकारी बनने का ढोल न पीटे। इस जयन्त ने एक दिन अपने-आपको

उपकारी के रूप में प्रकट किया था। गाँव में इस नाते ही परिचित हुआ था। और जानती है तू, मेरा भी शहर जाने का यही अर्थ था। सोचा था कि इस जयन्त के साथ समाज की सेवा करूँगी, मैं भी कन्धे-से-कन्धा मिलाकर चलूंगी। पर अब मेरे अरमानों का वह किला असमय में गिर गया।"

नीरा ने तब अपने स्वर पर ज़ोर देकर कहा, "अंजना, यह तेरा स्वार्थ था। मैं नारी की स्थिति में समझती हूँ कि तेरा मिथ्या प्रमाद था। तू कहे या नहीं, पर यह जयन्त तुझे नहीं मिला। तेरा इतना बड़ा विचार था, राम-राम ! भला क्या यह तुम दोनों के लिए शोभनीय था ?"

उदास स्वर में अंजना बोली, "नीरा, मेरे पास भी भावना थी, अनुभूति थी, इस जयन्त ने ही मेरा सुप्त-हृदय जगा दिया था।" उसने साँस भरी और कहा, "पर यह समझ ले, मैंने कभी भी इस जयन्त को ठगने का प्रयत्न नहीं किया। मैंने अपने जीवन से अधिक उसे महत्व दिया।"

नीरा ने कहा, "तुम्हारे लिए यही शोभनीय था। तुम्हें और कोई बधाई दे या नहीं, पर मेरा हृदय ज़रूर साधुवाद देगा।"

अंजना ने कहा, "मैं इस जयन्त को नहीं भूल सकती और न ही भुलाया जाएगा !"

नीरा कुछ कहती कि उसी समय अंजना का पिता लौट आया। उसके सिर पर घास का गट्ठर था। उसे छप्पर में एक तरफ डालकर वह घर में चला गया। वह आँगन में बैठकर सुस्ताने लगा।

उस वृद्ध को देख नीरा ने प्रस्तुत प्रसंग बदल दिया और पूछा, "बोल तो, तेरे पिता की उमर क्या होगी, साठ से ऊपर तो होगी ही !"

अंजना ने साँस भरकर कहा, "शायद सत्तर से ऊपर है।"

नीरा बोली, "और तूने मुझसे एक बार कहा था कि तेरे पिताजी अपनी बिरादरी में भगतजी के नाम से पुकारे जाते हैं। दूसरों को भलाई का उपदेश देते हैं, ठीक है न !"

अंजना बोली, "मेरे पिता जैसे ऊपर से हैं वैसे ही अन्दर से हैं। उनके पेट में काला विचार नहीं है। कहीं छुपाव नहीं है, किसी के लिए दुराव भी नहीं है।"

नीरा बोली, "फिर भी उनका बदन नंगा है। फटा सलूका पहिने हैं। इस बुढ़ापे में इतनी मेहनत करते हैं। भगवान और भावना के उपासक यों अभावग्रस्त रहें, हाय !"

अंजना बोली, "हम गरीब हैं। मज़दूरी करके ही अपना पेट पालते हैं।"

धीर भाव से नीरा बोली, "ऐसे ही परिवार धन्य हैं। वे जीवन के अँधेरे में रहकर भी सन्तोष और सुख का अनुभव करते हैं।"

इतनी बात सुनकर अंजना मौन रह गई। वह कहना चाहती थी कि मेरे पिता भूखे हैं, दरिद्र हैं, तो फिर भी अपने भाइयों का साथ देते हैं। अपने पेट की रोटी अनेक बार दूसरों को दे चुके हैं। जाड़े में ठिठुरते नंगे आदमी को अपने शरीर का कपड़ा उतारकर प्रदान करते हैं। किन्तु अंजना ने यह सब नहीं कहा। उस संध्या के सुहावने समय में कदाचित् जीवन में प्रथम बार उनके मन में अपने पिता के प्रति सम्मान पैदा हुआ कि वह ऐसे पिता की पुत्री है जो कि उदार है, पढ़ा-लिखा न होकर भी ऊँची बात करता है। लोगों को भला रहने के लिए कहता है। अब अंजना के मन में ऐसा भाव आया तो उसकी आँखें चमक उठीं, मुंह पर तेज झलक आया। उसने खुले स्वर में नीरा को सुनाया, "बहिन ! मेरा पिता सरल है, सीधा है। लेकिन लोग ऐसे आदमी को बुद्धू और कमज़ोर मानते हैं। वह यह नहीं देखते कि उसके मन में भगवान बोलता है। जब ऐसे आदमी को सताया जाता है तो उसके मन का भगवान रोता है। मेरा पिता कहता है, तन उजला हुआ तो क्या, मन भी उजला चाहिए ; और जब मन काला है, तो समूचा जगत भी काला दिखाई देता है।"

नीरा ने कहा, "यह तो है ही। आदमी के मन का चोर सभी ओर बोलता है। पापी आदमी स्वयं अशान्त रहता है तो दूसरों के लिए भी परेशानी का कारण बनता है।"

उसी समय एक आदमी आया और वह एक लिफाफा अंजना की ओर बढ़ाकर बोला, "यह डाक्टर साहब ने दिया है।"

अंजना ने उस बड़े लिफाफे से पत्र निकाला, वह निमन्त्रण-पत्र था, जयन्त के विवाह का पत्र।

देखते ही नीरा ने ज़ोर से कहा, "इस डॉक्टर ने जले पर नमक

छिड़का है ।"

किन्तु अंजना चुप रही, उस क्षण उससे बोला नहीं गया। मुँह का थूक गले में अटक गया, आँखों में अँधेरा छा गया था। नीरा देख नहीं सकी कि अंजना की आँखों में पानी उतर आया है।

पन्द्रह

संध्या के समय जयन्त ने अंजना को जो विवाह का निमन्त्रण-पत्र भेजा था उसी के एक भाग पर लिखा था, "मन्दिर में प्रतीक्षा करूँगा।" रात हो चली थी। चारों ओर अँधियारी छाने लगी। दिन में ही पानी बरस चुका था। हवा बन्द थी। उमस हो गई थी। धरती की दबी हुई बदबू उस वर्षा के कारण उभर आई थी। मच्छर भी पैदा हो गये थे। नीरा सो गई तो तभी अंजना उठी और मन्दिर की ओर चल पड़ी। निश्चय ही, उस समय उसकी छाती में धड़कन थी। वह नहीं चाहती थी कि अब जयन्त और उसका किसी एकान्त में साक्षात्कार हो। वह दुर्बल थी। कदाचित् उसकी आत्मा में इतना तेज नहीं था कि वह जयन्त सरीखे उदार और सहायक से मुँह मोड़ लेती। फिर भी, जब जयन्त ने उसका आवाहन किया, उसे बुलाया तो वह नहीं रुक सकी। मन्दिर पर जाते ही उसने देखा कि जयन्त वहाँ के रास्ते पर खड़ा है। अंजना को देख पाते ही उसने कहा, "मैंने समझा था कि तुम नहीं आओगी। तुमने जिस प्रकार का प्रदर्शन किया, वैसा आगे भी करोगी!"

अंजना ने कहा, "जयन्त बाबू, मैं इतनी कठोर कहाँ हूँ। अब भी निरावलम्ब हूँ।"

जयन्त बोला, "इस धरती पर सभी दुर्बल हैं, आधारहीन हैं। पर तुम बताओ, अपने जिस विवाह की तुमने चर्चा की, मेरे समक्ष गलत प्रदर्शन किया, वह क्या ठीक था? बताओ, तुम्हारे साथ आने वाला वह युवक कौन था?"

अंजना ने कहा, "जयन्तजी, मैं इस अँधेरे में नहीं देख पाती कि तुम्हारे मुँह पर कैसा भाव है ? पर मन में क्रोध हो तो मैं समक्ष हूँ, मेरे मुँह पर तमाचा मार सकते हो। तुम्हें पूरा अधिकार है। वैसे, इतना अवश्य कहूँगी कि मैंने जो कुछ किया वही मुझे करना था। वही मेरे लिए उचित था। मेरे माता-पिता का भी मुझे यही आदेश था। वह युवक अध्यापक था। वह विवाहित है। केवल मेरे साथ गाँव देखने आया था।"

तुरन्त जयन्त बोला, "ओह ! तू रहस्यमयी अंजना !"

अंजना ने कहा, "कभी कहा था तुमने, यह विश्व रहस्य से भरा है तो यह एक अकेला मनुष्य भी क्या सहज में समझा जा सकता है ? मेरी आत्मा आज भी यह कहती है कि तुमसे मैंने जो कुछ पाया तो उसका बदला यह नहीं था कि मैं तुम्हें ठगती ; तुम्हारे समाज और माता-पिता से तुम्हें छीन लेती। वैसे जानते तुम भी हो कि वे बाँहें इतनी बलिष्ठ नहीं कि जो सभी का प्रतिरोध पाकर भी, तुम्हें कसकर पकड़ लेतीं।"

जयन्त ने साँस भरी और छोड़ दी। उसने काले आसमान की ओर अपनी आँखें उठा दीं।

अंजना ने फिर कहा, "जयन्तजी, स्वार्थ मेरा था। तुम्हें तो सुन्दरतम नारियाँ मिल सकेंगी, पर मुझे तुम सरीखा कहाँ मिलेगा। जानते हो, एक दिन इतना त्याग करने के लिए मेरे पिता ने अपनी पगड़ी को मेरे पैरों में डाल दिया था। बाद मुझे यह भी पता चला कि इस कार्य को सम्पन्न कराने के हेतु तुम्हारे पिता ने मेरे घर अनेक बार चक्कर लगाए थे। उन्होंने धर्म, जाति और इन्सानियत की दुहाई देकर मेरे पिता को इस बात के लिए सहमत किया कि मैं तुम्हारे रास्ते से हट जाऊँ। सो, मैं तुम्हारे सामने से दूर हो गई, जयन्त बाबू ! मैंने अपने कल्पनालोक में सोने की दुनिया बनाई थी, वह टूट गई, ध्वस्त हो गई।" यह कहते हुए अंजना का स्वर भारी हो गया। गला भी अवरुद्ध हो गया।

तभी जयन्त ने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा, "तुम जानती तो हो कि मैं रो पड़ूँगा। तुम्हारे आँसुओं को देख मैं शान्त न रह सकूँगा। बोलो, अब मैं क्या करूँ ?"

जैसे चंचल और आतुर बनकर अंजना ने अपना मस्तक जयन्त की भुजाओं पर टिका दिया और कहा, "जयन्तजी, तुमने मुझे आवाज़ दी तो मैं आ गई। मुझे केवल इतना कहना है कि इस अंजना को भुला न देना। मैंने जो कुछ किया, उचित किया। यही करना था। अब मुझे लोक-चर्चा का पात्र तो न बनना पड़ेगा।"

उस समय जयन्त गम्भीर था। वह मन्दिर की सीढ़ियों पर बैठ गया। उसे यह भी ध्यान नहीं रहा कि कोई आये तो उसे देखकर क्या कहेगा। उसने क्षणभर के लिए अपना अस्तित्व भी भुला दिया। अंजना का मुँह उसके कंधों पर रखा था। जयन्त उसके सिर के रेशमी बालों को सहलाने लगा। तभी उसके एक हाथ पर आँसू की बूंद पड़ी और वह एकाएक ही चौंककर जैसे जगकर बोला, "अंजनादेवी, मैंने अभी जाना कि हम लोग बँधे हुए हैं, स्वतन्त्र नहीं हैं। हमारे जीवन की धारा अवरुद्ध है। यह अनेक पहाड़ों से टकराती है। भला यह कैसा दयनीय जीवन है!"

अंजना ने कहा, "समाज की एक व्यवस्था है, परम्परा है, उसे क्या लाँघा जा सकता है?"

तत्काल जयन्त कठोर बन गया और बोला, "नहीं, नहीं, हम दुर्बल हैं। अविचार के समक्ष झुके हैं। तुमने मेरा साथ नहीं दिया, जीवन में एक शुभ कार्य मुझसे सम्पन्न होता जो तुमने नहीं करने दिया। रास्ते में मेरा साथ छोड़ दिया।"

उसी समय अंजना ने अपना सिर जयन्त के कन्धे से हटा लिया और सीधी बैठकर अपनी आँखें पोंछते हुए कहा, "जयन्तजी, मुझे अपना नहीं, तुम्हारा ध्यान था। मेरे माँ-बाप का भी यही कथन था। इसी भावना के वशीभूत होकर उन्होंने मेरा उद्धार किया।"

जयन्त ने कठोर बनकर कहा, "वह झूठ था, बेकार था। इस जगत में लोग चलते हैं, चले जाते हैं। शोर करने वाले पीछे रह जाते हैं।"

तभी उदास भाव से, जैसे पीड़ित स्वर से अंजना ने कहा, "तो अब क्या है, बोलो?"

जयन्त बोला, "नहीं, मैं अब भी तुम्हारा हूँ। मैं माता-पिता और समाज के विरुद्ध चल सकता हूँ। बोलो, तुम क्या कहती हो?"

तत्काल अंजना ने अपना सिर जयन्त के पैरों में रख दिया और कहा, "शरीर से नहीं, मैं आत्मा और मन से तुम्हारी हूँ, जयन्त बाबू ! बोलो, तुम रहोगे न, ऐसे ?"

जयन्त मौन रहा। वह फिर आसमान की ओर देखने लगा।

अंजना सीधी बैठ गई और बोली, "मेरा विवाह तो हो चुका, जयन्त जी ! मैंने उस भावना को वरण कर लिया कि जिसे तुमने प्रदान किया था।"

एकाएक जयन्त के मुँह से निकला, "ओह ! सभी कुछ अनोखा है, निर्मम है।" उसने कहा, "अंजनादेवी, तुम्हें बता नहीं सकता कि अब मेरा जीवन बदल जाएगा। निश्चय ही, स्वस्थ और सुखी नहीं रहेगा। जब जीवन के इस उठते प्रहर में भावना मर गई तो भला आगे क्या मिलेगा। पैसा तो मुझे सुख नहीं दे सकेगा।"

अंजना के मुँह से निकल पड़ा, "जीवन की भावना ·····जीवन का संघर्ष···" वह बोली, "इस जीवन में शान्ति कहाँ है, जयन्त बाबू ! सच्ची अनुभूति कहाँ है ?"

इतना सुनते ही जयन्त ने बरबस ही अंजना का हाथ पकड़ लिया और वह उसे ऊपर उठाता हुआ बोला, "नहीं, नहीं, इन सभी का अस्तित्व है, अंजनादेवी ! मैंने प्रोफेसर के सम्पर्क में रहकर यही समझा है। भावना न हो, ईश्वर का चिन्तन न हो, तो क्या यह जगत जीवित रह सकता है ? कदापि नहीं !"

उल्लास से भरकर अंजना बोली, "सचमुच ! हाँ, मैं समझी, तुम तो ईश्वरवादी हो न ! उस ईश्वर का वर्णन मैंने भी अनेक बार तुमसे सुना, तो आज समझ सकती हूँ कि कोई आधार तो है कि जिस पर यह जगत टिका है। सच, उसी का सहारा लिये-लिये मैं भी तुम्हारे तक पहुँचूं, ऐसी धारणा क्या तिरोहित कर पाऊँगी इस जीवन में, कभी नहीं !"

जयन्त ने कहा, "अंजना, संयोग की बात थी कि हम-तुम मिले।" वह ज़ोर से बोल पड़ा, "पर आज यों छूटने वाले हैं, क्या यह भी नियति का रहस्यभरा और क्रूर व्यापार नहीं है ? प्रोफेसर ने पहले ही मुझसे कहा था कि मैं दुर्बल हूँ, तिनके के समान जीवन की धारा में बहा जा

रहा हूँ। भला देखो तो मैं कैसा अस्तित्वहीन हूँ, कितना दुर्बल हूँ, कितना एकाकी हूँ !"

यों सुनते ही अंजना ने अपना मुँह जयन्त की छाती पर रख दिया और कहा, "आह, तुम मेरे हो !" वह बोली, "जयन्तजी, भूलो मत, मैं सदा तुम्हारी रहूँगी।"

जयन्त उस अवस्था में ही अंजना के ठण्डे चेहरे पर अपने गरम हाथ की हथेली फेरने लगा। वह स्वयं उस चेहरे की ओर झुक गया और अपनी गरम साँसें उस अंजना की साँसों से मिलाता हुआ बोला, "अंजना, तुम मेरी हो।"

उसी समय पास से एक जानवर निकला, तो चौंककर अंजना ने कहा, "अब उठना चाहिए।"

दोनों उठ पड़े। जयन्त ने कहा, "आओ, मैं तुम्हें छोड़ आऊँ। अँधेरा रास्ता है, रात बढ़ गई है।"

अंजना ने कहा, "जिसके जीवन में अँधेरा हो उसके लिए यह अँधेरा पथ क्या है ; यह निर्मम बनी हुई काली रात क्या है ?"

लेकिन जयन्त इस बात पर मौन ही रहा। वह अंजना का हाथ पकड़े हुए उस काले पथ पर बढ़ता गया।

सोलह

नगर में ही अंजना को समाचार मिला कि जयन्त का विवाह बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हो गया है। उसी अवसर पर अंजना ने भी बधाई का सन्देश भेज दिया। यह संयोग और दुर्विपाक की अवस्था थी कि उन दिनों अंजना की दृष्टि में जयन्त का विवाह ऐसा विषय नहीं था कि जिस पर वह अपना ध्यान केन्द्रित करती। बरबस ही, जैसे अज्ञात भाव से, उस अवसर पर अंजना के चिन्तन का विषय बन गया था वह कैप्टेन कि जो फौजी विभाग में उच्च पद पाकर भी सन्तुष्ट नहीं था। वह मन से

पीड़ित था। उसे कोई विक्षिप्त तो कह नहीं सकता था, परन्तु उसका व्यवहार निस्सन्देह रहस्यपूर्ण था। वह ज्यों-ज्यों अंजना के निकट आता गया त्यों-त्यों उसकी दृष्टि में निखरता गया, साफ दिखाई देता गया। अंजना ने यह पूर्णरूप से समझ लिया था कि वह कैप्टेन जितना ऊपर से उग्र और भयानक दिखाई देता, उसका हृदय उतना ही निर्मल और शान्त था। कैप्टेन बार-बार अंजना के घर आता और लौट जाता। रमाकान्त नाम का व्यक्ति उस अंजना के समक्ष आकर जैसे निरा बच्चा बन जाता। उससे मचलता और लड़ना चाहता। कभी शराब अधिक पी आता। जिस दिन नशे की अवस्था में अंजना के पास आता तो रोता और सिर पीटता। वह अंजना को सुनाता, "मैं अभागा हूँ, निराश्रित हूँ। तूने मुझे अस्पताल के बिस्तर पर जीवन-दान दिया है तो आगे भी मेरा यह अन्धकार से परिपूर्ण जीवन उजागर कर…मुझे अभयदान प्रदान कर।"

ऐसी अवस्था में, कभी-कभी अंजना झुँझलाती और कह देती, "तुम यहाँ न आओ।" वह धमकियाँ भी देती और कहती, "मैं पुलिस में रिपोर्ट करूँगी, तुम्हें गिरफ्तार करा दूँगी। तुम्हारे विभाग को लिख दूँगी !"

वस्तुतः एक बार जब ऐसी ही अवस्था आई तो अंजना की बात सुनकर वह कैप्टेन इतना व्यग्र और आतुर बन गया कि उसने तुरन्त अपना पिस्तौल निकाल लिया और उसका घोड़ा दबाकर सामने दीवार पर दनदन कई गोलियाँ चलाता हुआ बोला, "जानती हो, ऐसे धड़ाके में मेरा अन्त हो जाएगा। इसी घर से मेरा जनाज़ा उठेगा।"

उस अवसर पर कैप्टेन को नशे में देख, अंजना ने साहस किया और उसका पिस्तौल छीन लिया। उसने चीखकर झुँझलाते हुए कहा, "तुम्हें क्या हो गया है, कैप्टेन ! तुमने क्यों मेरा घर घेरा है ? मुझे मूर्ख बना दिया है।"

माथे पर भरे पसीने की ओर ध्यान न कर कैप्टेन ने कहा, "मैं पागल हो गया हूँ। इस हरे-भरे संसार में मैं अकेला हूँ। जन्म-जन्म का दुर्भागी हूँ।" यह कहते हुए वह तभी एक बच्चे के समान फूट-फूटकर रो पड़ा, उसी अवस्था में उसने कुर्सी के पीछे अपना सिर गिरा दिया।

यह देख, बरबस ही, आतुर भाव से अंजना बोली, "तो मुझसे क्या कहना है ? तुम्हारी माँग क्या है ?"

एक बच्चे के समान गिड़गिड़ाते हुए कैप्टेन ने कहा, "तुम कह दो एक बार कि मैं तुम्हारे समक्ष उपेक्षा का पात्र नहीं हूँ। हाँ, अंजना ! मैं तुम्हारे इस सुन्दर और भावभरे मुख से सुनना चाहता हूँ, मैं तुम्हारी अनुभूति और सदाशयता की माँग करता हूँ। मैं अपने को जन्म-जन्म का दुर्भागी मानता हूँ न, यह भी नहीं जानता कि पुरुष के लिए एक नारी किस प्रकार समर्पित होती है, कैसा अनुराग उस पुरुष को प्रदान करती है।"

एकाएक चीखकर अंजना ने कहा, "गुस्ताख···कमीना···"

कैप्टेन सुनकर मौन हो गया, जैसे ठण्डा पड़ गया हो। उसका मुँह भी पीला हो गया। किन्तु लगता यह था कि उस दिन अपने मन का उद्वेग उँडेल देना चाहता था। जो कुछ उसके मन में था वह सब उस अंजना को सुना देने के लिए सन्नद्ध था। अतएव वह फिर बोला, "अंजनादेवी, न मैं गुस्ताख हूँ, न कमीना। मैं केवल एक दुर्बल प्राणी हूँ। कहा तो है मैंने कि मैं दुर्भागा हूँ। मैंने केवल माँ का प्यार पाया और किसी का नहीं। मुझे पैसे की इच्छा नहीं, यश की नहीं। यह भी चिन्ता नहीं कि मैं मर जाऊँगा तो मेरा क्या होगा। मरूँगा तो सरकार फूँक देगी, पर अपनी यह चिर-अभिलाषा साथ लिये चला जाऊँगा कि जीवन में एक क्षण के लिए भी नारी का अभिसार और प्यार अपने तईं नहीं प्राप्त कर सका। यह न समझना कि मुझे नारियों की कमी है। ऐसी बहुत हैं कि जो पैसे के लिए अपना विसर्जन करती हैं। पर आज तुम्हें बताता हूँ, मैंने नारी को ठगना पाप माना है। और यह भी जानता हूँ कि मुझ काले-कलूटे को तुम सरीखी सुन्दर युवती अपना प्यार नहीं दे सकती। यह तो असंगति है। शायद मेरा कहना ही अविवेक से पूर्ण है। पर मैं क्या करूँ, मेरी आत्मा बार-बार चिल्लाती है और आन्दोलित कर तुम्हारे द्वार तक ले आती है। शायद मैं विवश बन गया हूँ। अपने अन्तर्मन की वाणी के समक्ष झुक गया हूँ··।

"सैनिक बनकर मैंने सैकड़ों व्यक्तियों का अन्त किया है। मरने वालों का चीत्कार सुना है। लेकिन मेरी यह चंचल अभिलाषा कभी पूर्ण होगी,

यह जानने की जिज्ञासा है। देखता हूँ, मैं हिंस्रक, मैं क्रूर, मैं इन्सान के प्राणों को तिनके के समान तोड़ देने वाला सैनिक तुम्हारे समक्ष झुका हूँ; भिक्षुक बना हूँ। तुम्हारी दया, ममता और अभिसार की भीख माँगता हूँ। मैं तुमसे ही यह कहने में सन्तोष मानता हूँ कि इस धरती पर अपना कहने वाला मेरा कोई नहीं। मरने के बाद नाम लेने वाला मेरा कोई नहीं। बोलो, कैसा तुच्छ, निन्द्य और अमानुषिक जीवन है, मेरा! निरा अभद्र···निरा पत्थर···"

तभी एकाएक अंजना के मुँह से निकाला, "कैप्टेन, तुम जाओ। मैं तुमसे घृणा करती हूँ।"

कैप्टेन ने कहा, "ओह, कठोर औरत! निरी नादान!" वह खड़ा हो गया। पिस्तौल जेब में डाल लिया और सिर झुकाए, दोनों हाथ बाँधे वहाँ से चल दिया।

किन्तु अभी एक मिनट नहीं बीता था उस कैप्टेन को गये कि अंजना का माथा ठनक गया। जैसे स्वतः ही उसने अपने को अपराधी मान लिया। उसे लगा कि कैप्टेन परेशान है, रोया भी अधिक है। यह सोचते ही, अंजना उठी और मकान बन्द कर सड़क पर पहुँच गई। उसने देखा कि कैप्टेन जा रहा है, सिर झुकाए चला जा रहा है। यह देख, जाने किस प्रेरणा से भर, अंजना उसके पीछे-पीछे चल पड़ी, चली तो चलती गई। कैप्टेन का दृष्टि-लक्ष्य शराब की दुकान था। वहाँ जाते ही उसने शराब माँगी और पैसे देकर जब सड़क पर आया तो एकाएक पछाड़ खा गया और गिर गया। उसका सिर एक पत्थर से टकरा गया। वह बेसुध हो गया। दूर खड़ी अंजना ने यह सब देखा। सड़क पर आदमी जा रहे थे, मोटर और ताँगे भी दौड़ रहे थे। परन्तु उस कैप्टेन की ओर किसी का ध्यान नहीं था। मानो समाज से उसका कोई सम्बन्ध नहीं हो। उसी समय पुलिस की गाड़ी आई, सड़क पर कैप्टेन पड़ा देखा तो उसे उठा ले गई। दूर खड़ी अंजना तब निरी मौन, मानो पत्थर बनी, वहाँ से चली गई और अपने घर पहुँच गई। उस रात वह देर तक नहीं सो पाई। वह अपने कमरे में देखती रही कि जितनी कीमती वस्तुएँ थीं, वे सब कैप्टेन की दी हुई भेंटें थीं, उन वस्तुओं में एक प्रेमी-प्रेमिका की प्रतिमा थी, जो नितान्त सुन्दर और सुहावनी थी। उस

प्रतिमा में प्रेमी अपनी प्रेमिका के प्रति आकांक्षित था, कुछ माँग रहा था। जिस दिन वह प्रतिमा खरीदकर लाया तो उसे देते हुए उसने अंजना से कहा था, "यही है मेरे जीवन की साध! तेरा कोई प्रेमी हो, पति हो तो मुझे बता दे, मैं उसे भी प्यार करूँगा, यह भेंट दूँगा।"

लेकिन उस दिन तो अंजना खिलखिलाकर हँस पड़ी थी, वह भोले कैप्टेन की बातों में खो गई थी।

किन्तु तभी कैप्टेन ने फिर कहा था, "ऐ अंजना, मैं कोई इच्छा नहीं रखता। तू सुन्दर फूल है, मैं सूँघकर इसे भ्रष्ट करना नहीं चाहता। तू ऐसी रहे, परम रहे, सुहावनी रहे। तू रानी बनी रहे, अंजना!"

बात असल में यह थी कि अंजना धीरे-धीरे कैप्टेन से डरने लगी थी। उसके मजबूत हाथ कब उसकी मुलायम गर्दन पकड़ लें, ऐसी आशंका भी उसके मन में उठती थी। किन्तु तब भी, जब कैप्टेन आता तो वह उसका स्वागत करती, उससे हँसती-बोलती, उसके पास बैठती, मानो वह उसके मनोभावों के साथ खिलवाड़ करने लगी थी।

लेकिन उस रात में जब कैप्टेन शराब के नशे में चूर सड़क पर गिर पड़ा, अंजना के समक्ष बैठकर पिस्तौल की गोली छोड़ बैठा तो आधी रात के बाद तक जागती रहकर भी, उसके मन में यह भाव नहीं आया कि अब यदि कैप्टेन उसके पास आये तो उसे बैठायेगी, उससे आत्मीयता का प्रदर्शन करेगी। उसने निश्चय कर लिया कि कैप्टेन के आने पर अब उसे पुलिस में पकड़वा देगी। फौजी अफसरों से शिकायत करेगी। यद्यपि मन में आई इस उपेक्षा, घृणा और उस कैप्टेन के प्रति उदासीनता के समीप, अंजना के अन्तर में यह भी बात थी कि हाँ, यह कैप्टेन रमाकांत सचमुच अभागा है, दीन है, वह सुगमता से रोता ही इसलिए है कि उसका मन घायल है, बीता युग याद करते ही तड़प उठता है। अंजना को इस बात का भी पता था कि कैप्टेन की माँ बड़ी खराब अवस्था में मरी थी। कई दिन की भूखी रहकर अपने प्राण तोड़ सकी थी। यह बात भी उस कैप्टेन को प्रायः याद आती। माँ की याद उसे कभी भी रोने के लिए बाध्य करती थी। लेकिन उस रात, जिस प्रकार की तीव्र घृणा और प्रतिरोध की भावना अंजना के मन में उस कैप्टेन के लिए पैदा हुई, वह अधिक भारी थी, कषैली थी। उस अवस्था में अंजना रात

में देर तक नहीं सो सकी थी।

जब प्रातः हुआ, अंजना अपनी ड्यूटी पर गई, तो उससे अधिक सम्पर्क रखने वाली नीरा ने उसे टँकोरा और कहा, "सुना कुछ, रात तेरा वह कैप्टेन सड़क पर पड़ा था, पुलिस ने उठाया था। शायद शराब के नशे में था।"

अंजना ने इस पर मौन रहना ही उचित समझा।

नीरा बोली, "अब यह बात दूसरों को भी मालूम है कि वह कैप्टेन···तू···"

अंजना बोली, "नीरा, मैं परेशान हूँ। भगवान से चाहती हूँ कि कैप्टेन मेरे पास न आया करे। मैं उसे घृणा का पात्र मानती हूँ··· भूखा कुत्ता···" अंजना बोलती गई, "ऐसी अवस्था रही तो मैं नौकरी छोड़ दूँगी, इस शहर को भी···"

नीरा बोली, "यह कह न कि दुनिया भी छोड़ देगी। भोली भटियारिन, पहले तो मुँह लगा लिया, उस औरत के भूखे को। उससे मीठी-मीठी बातें कीं। अब वह जानवर की तरह से गन्ध पाता हुआ तेरे पास आता है, तो उसको दुतकारती है।"

अंजना चीख उठी, "मैं उसे नर-पशु मानती हूँ, नीरा!"

किन्तु नीरा ने तब भी शान्त और धीरे स्वर में कहा, "मैं ऐसा नहीं मानती। तेरा मन इतना कठोर नहीं हो सकता, यह मैं समझती हूँ। मेरे पास तो आये वह, ऐसा सबक दूँ बच्चू को कि छठी का दूध याद आ जाए। ये इश्क मिज़ाज़ी के तराने···"

अंजना बोली, "मैं कमज़ोर हूँ। स्वयं परेशान हूँ।"

नीरा ने कहा, "नहीं, तू भावुक है। और यह नहीं जानती कि तुझ जैसी खूबसूरत लड़की यदि भावुक बनेगी तो ठगी जाएगी। एक जगह तो तू ठगी गई है। उस डाक्टर जयन्त से। अब और कहाँ-कहाँ की खाक छानेगी। मैं कहती हूँ, तू उस कैप्टेन से विवाह क्यों नहीं कर लेती? सच, आदमी असाधारण है। उसकी प्रतिष्ठा है। अभी आयु का भी अधिक नहीं है। बस, यही तो बात है कि सुन्दर नहीं, शहराती भी नहीं। तू उसकी बात मानेगी तो वह तुझे आँखों पर उठाये फिरेगा। हृदय की रानी बनायेगा।"

अंजना ने क्षुब्ध बनकर कहा, "मैं ऐसा नहीं चाहती। उससे विवाह नहीं कर सकती।"

"तो फिर उसे आने से रोक दे। हाथ जोड़ दे। वह कोई भेंट लाए तो वह भी वापिस कर दे।"

अंजना बोली, "कम्बख्त से बार-बार कहा। द्वार बन्द कर रखा है। पर वह ऐसा ज़िद्दी है कि बस···"

नीरा ने कहा, "वह फौज का आदमी है, कठोर है। जाने अपनी बन्दूक की गोली से कितने आदमी मार चुका है। लड़ना और मारना ही उसका काम है। देख, मैं कहती हूँ कि किसी दिन···"

अंजना ने जैसे सहमकर कहा, "मुझे भी लगता है। वह तो अब मुझे अभिशाप दिखाई देता है···जैसे मेरा काल···"

नीरा बोली, "पर वह तुझे नहीं मारेगा। स्वयं मर जाएगा।"

अंजना ने कहा, "वह पागल है, अन्धा है। वह औरत का भूखा है।"

एकाएक नीरा बोली, "न, न, वह औरत का भूखा नहीं। बस, औरत उसे प्यार करे, ऐसा चाहता है। मैंने सुना है कि वह एकाकी है, अकेला है।"

अंजना बोली, "तुम मेरा उद्धार करो, नीरा ! नहीं तो अब मैंने सोच लिया है कि पुलिस को बुलाऊँगी, और सब बातें उसके सामने रख दूँगी।"

नीरा वहाँ से जाती हुई बोली, "अच्छा-अच्छा, अब तेरे घर आए तो बताना, मुझे खबर देना। मैं तब आ जाऊँगी और उससे बात करूँगी।"

अंजना अपने काम में लग गई। वह अपने वार्ड में गयी और रोगियों की परिचर्या का कार्य सम्पादित करने लगी। किसी पीड़ित रोगी को जाकर समझाती, उसका मन बहलाती और किसी के कहीं दर्द होता तो उसे दूर करने का प्रयत्न करती। अजीब काम था वह रोगियों की सेवा-सुश्रूषा का कि अंजना को बैठने की भी फ़ुरसत नहीं मिलती थी। किसी को दवा देती, किसी के कपड़े बदलती। एक रोगी के पास जाकर खड़ी होती तो दूसरा आवाज़ देता। उस 'सिस्टर' को एक साथ

उसी समय कैप्टेन कराह उठा। उसने क्षीण स्वर में कहा, "पा···नी···"

सुनते ही अंजना ने चम्मच से उसके मुँह में पानी डाल दिया।

किन्तु जब भरी रात आई, चारों ओर सन्नाटा छाया तो उसी निस्तब्धता में कैप्टेन के मुँह से निकला, "अं···ज···ना ··"

एकाएक जैसे छाती पर घूँसा-सा खाकर अंजना उसकी ओर बढ़ गई और ठीक उसके मुंह के समीप जाकर बोली, "कैप्टेन, मैं यहाँ हूँ, अंजना, बोलो, क्या चाहिए ? क्या दूध दूँ ?"

क्षीण स्वर में कैप्टेन के मुँह से निकला, "नहीं, तुम !"

मानो अज्ञात भाव में, अंजना चीख पड़ी। वह रोती हुई बोली, "मैं तुम्हारी हूँ, कैप्टेन ! सच, तुम्हारी !"

कैप्टेन की आँखों पर पट्टी बँधी थी, वह देख नहीं सकता था। परन्तु उसने अंजना का हाथ कसकर पकड़ लिया और उसे अपनी छाती पर रख लिया। वह उसी अवस्था में जैसे एकाएक आल्हादित बनकर बोला, "अंजना, मेरे इस अन्तिम समय पर तुम मिलीं, यह अच्छा हुआ। भगवान तुम्हारा भला करे !"

उसी रात में कैप्टेन रमाकान्त का देहावसान हो गया।

सत्रह

निश्चय ही, मरने से पूर्व, कैप्टेन रमाकान्त को इस बात का आभास मिल चुका था कि वह नहीं रहेगा। रात का समय था। अस्पताल में चारों ओर सन्नाटा था। कैप्टेन की संरक्षिका नर्स अंजना कुछ समय के लिए अवकाश पाकर आराम करने गई थी। वह दो रात से निरन्तर जाग रही थी। कैप्टेन उसे अपने पास रहने के लिए बाध्य करता था। वह जिस भाव-भरी याचना से अंजना को अपने पास बैठने के लिए कहता, उसे टाल देना सरल नहीं था। किन्तु उस समय, जब अंजना वहाँ नहीं

थी तो फौज के कुछ अफसरों के साथ, एक मजिस्ट्रेट वहाँ आया। अस्पताल का सर्जन भी आया। उन्होंने वहाँ बैठकर कुछ लिखा, कैप्टेन रमाकान्त के हस्ताक्षर लिए। जब वे सभी व्यक्ति वहाँ से लौटे, तो तभी, अंजना ने उस कमरे में प्रवेश किया। उसी समय बड़ा डाक्टर मुस्कराया और बोला, "सिस्टर, तुम्हारा रोगी अधीर है, उसे तुम्हारी सेवा की आवश्यकता है। रोगी की अवस्था अच्छी नहीं है। साँस की गति भी खराब है।"

अंजना ने कहा, "डाक्टर साहब, यह कैप्टेन नहीं बचेगा।"

डाक्टर ने तब फिर अंजना की ओर देखा। जैसे उस प्रौढ़ व्यक्ति ने उस युवा नर्स के मुँह पर कुछ खोजना चाहा। किन्तु उसने अपनी बात लेकर कहा, "अच्छा होता, यह कैप्टेन रहता···अभी कुछ और···।" और डाक्टर पैर बढ़ाकर दूसरी ओर चला गया।

वहाँ से अंजना कैप्टेन की चारपाई के समीप पहुँच गई। उसने देखा कि कैप्टेन मौन है, आँखें बन्द हैं। तभी उसके मुँह के पास आकर अंजना से कहा, "कैप्टेन, पानी दूँ?"

आवाज़ सुनकर कैप्टेन ने आँखें खोल दीं। उसकी वे दुर्बल आँखें अंजना के मुँह पर टिक गईं। जैसे सचमुच ही उन आँखों में याचना थी, जीवन की समस्त भावना थी, जिसे देख वह चंचल और युवा सिस्टर एकाएक लजा गई। उसकी आँखें झुक गईं; उसे लगा कि निश्चय ही यह कैप्टेन चल बसेगा, अब नहीं रहेगा और अपने जीवन में वह अब तक जिस अभाव से भरा रहा, जिसके कारण मूर्त्त और मौन बना रहा, वही तो अब भी इस कैप्टेन की आँखों में है, मन में है, वाणी में है। और वह है, प्रेम···नारी का प्रेम···।

अंजना सीधी खड़ी हो गई। वह कमरे के बाहर दूर काले अन्तरिक्ष की ओर देखने लगी। उस समय प्रातः की ठंडी हवा आने लगी थी। वह शीतल पवन अंजना से भी टकरा रहा था। उसके शरीर में फुरहरी पैदा कर रहा था। उस दिन गरम मौसम में भी जैसे अंजना को जाड़ा लगने लगा था। निश्चय ही, उसका मन उस समय समस्त संसार की ओर से छूट, उस कैप्टेन के समीप पहुँच गया था कि जो किसी भी क्षण अपने शरीर से सम्बन्ध तोड़ देने के लिए तत्पर था। अंजना के मन में

बार-बार यह बात आती कि हाय ! यह बेचारा कैप्टेन ···ज़िन्दगी भर लड़ा। देश के लिए मरने और मारने के लिए सदा ही तत्पर रहा, परन्तु इस बेचारे ने क्या पाया ! यह जीवन में किसी को भी अपना आत्मीय नहीं बना सका। किसी एक नारी का प्रेम पाने में भी सफल नहीं बन सका।

उसी समय, क्षीण स्वर में कैप्टेन ने पुकारा, "अंजना···"

चंचल बनकर अंजना उस ओर बढ़ गई। वह कैप्टेन की साँसों पर अपनी गरम साँसें टिकाकर बोली, "मैं यहाँ हूँ, कैप्टेन !"

कैप्टेन ने कहा, "थोड़ा पानी !"

"हाँ, हाँ, पानी लो, बहादुर कैप्टेन !" और उसने चम्मच से पानी उसके मुँह में डाल दिया।

तभी कैप्टेन ने फिर कहा, "मेरी कोई अशिष्टता हो तो उसे भूल जाना, अंजना ! मैंने तुमसे बहुत कुछ कहा। तुमसे भी सुना।"

सुनते ही, घायल पंछी की तरह तड़पकर, अंजना ने कहा, "नहीं, नहीं, तुमने कोई अशिष्टता नहीं की, रमाबाबू ! बोलो, तुम क्या चाहते हो ? क्या मन में लिये हो ? मुझसे कहो। तुम मेरा प्रेम चाहते हो न, अब वही पाओ। मेरा समर्पण स्वीकार करो !" यह सुनकर कैप्टेन की आँखें अंजना की आँखों पर टिक गईं।

किन्तु अंजना बोली, "मैं तुम्हारी भावना समझ चुकी हूँ। तुम्हारे मन की बात मैं समझ गई हूँ। मैं तुम्हारे समक्ष प्रस्तुत हूँ, रमाबाबू ! सच, मैं तुम्हारी···"

लेकिन इतना सुनकर भी कैप्टेन बोल नहीं सका। उसने फिर आँखें बन्द कर लीं। यह देख, अंजना ने उसका हाथ अपने मुलायम हाथों में पकड़ लिया और उस कठोर हाथ को अपने गालों पर रखते हुए कहा, "कैप्टेनबाबू, इस दुनिया में सभी कुछ लेते हैं, कुछ देते हैं। देखती हूँ, तुमने अपने जीवन में दिया बहुत कुछ, पर लिया कुछ नहीं। तुम्हें अवसर नहीं मिला। ऐसा सुयोग नहीं मिला।"

यह सुन कैप्टेन ने फिर आँखें खोलीं। उसकी साँस भी तीव्र हो चली थी। लगता था कि वह बोलना चाहता है पर बोल नहीं पा रहा था। वह अशक्त और निरुपाय बना था।

यह देख, एकाएक अंजना ने अधीर बनकर कहा, "कैप्टेन···"

कैप्टेन फुसफुसाया, "अंजना, तू···तू···"

अंजना ने अपना मुँह उसकी छाती पर रख दिया और एकाएक आवेगपूर्ण बनकर कहा, "कैप्टेन, मैं तुम्हारी हूँ। मुझे अवसर दो ! मेरी याचना स्वीकार करो !"

उसी समय वहाँ पर नीरा आई। देखकर उसने कहा, "अंजना, रोती हो ? अब हटो, जल्दी करो···यह कैप्टेन···"

और सचमुच नीरा के साथ उस विह्वल बनी अंजना ने देखा कि कैप्टेन हिचकी ले रहा है। उसकी अन्तिम साँस बाहर आई और तिरोहित हो गई। उसी समय नीरा ने कैप्टेन का मुँह ढँक दिया।

प्रातः हुआ और कैप्टेन रमाकान्त के शव का सैनिक सम्मान के साथ दाह-संस्कार कर दिया गया। तभी जलती हुई चिता के समक्ष फौज का बड़ा अफसर अंजना के समीप आया और एक लिफाफा अंजना को सौंपता हुआ बोला, "हमें नहीं मालूम था कि आप दोनों का सम्बन्ध कब स्थापित हुआ, परन्तु स्वर्गीय कैप्टेन ने अन्तिम समय पर अपनी वसीयत लिखाई और अपनी सम्पदा का उत्तराधिकारी आपको बनाया है। इसे ग्रहण करें।"

पास खड़े हुए अस्पताल के सर्जन ने कहा, "कुमारी अंजना ने बीमार कैप्टेन की बहुत सेवा की।"

अफसर ने कहा, "हमारे कैप्टेन ने भी यथोचित पुरस्कार दिया। समस्त धन सौंप दिया।" वह लौट पड़ा।

यों, वह दिन भी अन्य दिनों के समान आया और चला गया। परन्तु मानो अंजना के लिए वही विशिष्ट दिन था; सुखपूर्ण भी और खेदपूर्ण भी। जो कैप्टेन अपना सभी कुछ सौंप गया, अंजना अब उसी कैप्टेन को पाना चाहती थी। वह मिल जाए तो उसके चरणों में लोट जाने के लिए प्रस्तुत थी। परन्तु उसका दुःख यह था कि वह कैप्टेन जहाँ चला गया, अब वहाँ से नहीं लौट सकता था। कैसा अजीब आदमी था वह ! एक दिन पहले की रात में ही उसने अंजना से कहा था, "अंजना, अगर मैं जीवित रहा तो अपने हाथों से तेरा भी श्रृंगार करूँगा और तेरे दूल्हे का भी ! तेरी बारात चढ़े, तू दुल्हिन बने तो इतना मैं भी देखना चाहूँगा।"

तब, जैसे खोई-खोई-सी बनकर ही अंजना ने कैप्टेन से कहा, "तो तुम्हें क्या मिलेगा ?" अपने हृदय का समूचा सत्य वाणी में उँडेलकर उस कैप्टेन ने कहा था, "मेरा यह सबसे बड़ा सुख होगा। मैं तुझे प्यार करता हूँ न, तो तुझे सजी हुई दुल्हिन बनी देखना मुझे सबसे प्रिय लगेगा। मुझे तेरा दूल्हा भी ऐसा लगेगा कि जैसे मेरा प्राण हो ; मेरी आत्मा का प्रतिरूप।" उस समय अंजना हँस नहीं सकी थी, रोई भी नहीं। वह पत्थर के समान कठोर बन गई थी। जब बहुत देर बाद उसकी साथिन नीरा उस ओर आई तो वह देखकर चकित थी कि अंजना अपने बीमार कैप्टेन के पास बैठी नीचे को सिर झुकाये अविरल भाव से रोये जा रही है। जिसे देखते ही वह नीरा बोली, "सच, तू निरी भावुक है, निरी भोली है।" उसने कथन जारी रखा, "री, अंजना, बीमार के पास बैठकर रोते नहीं, उसका मन बहलाते हैं। हम नर्सों का काम ही यह है कि घायल और पीड़ित को सान्त्वना देती हैं। हम मुस्कराती हैं, हँसती हैं, बीमार का मन बहलाती हैं। पर तू...मूर्ख कहीं की !" किन्तु उस अवस्था में ही अंजना ने कह दिया था, "नीरा, मैं ऐसे तो पागल हो जाऊँगी। इस बीमार कैप्टेन की सेवा तो क्या करूँगी, शायद अपना ही अन्त करूँगी।"

"छिः, पगली कहीं की।" नीरा ने कहा, "इस ज़िन्दगी में बहुत-सी हवाएँ आती हैं और निकल जाती हैं। उन्हीं में तो एक यह कैप्टेन है; हाँ, अंजना, भूल मत कि तू नर्स का काम करती है, अपने बीमार की सेवा करके स्वयं रोगी बन जाना क्या तेरे लिए शोभनीय है ? जानती तो है शरीर के रोग का इलाज हो सकता है पर मन के रोगी का नहीं। यह असाध्य बीमारी है।"

और अब नहीं रह गया है वह कैप्टेन। परन्तु उसका पचास हजार से अधिक रुपया है, जो अंजना को मिल जाने वाला है। उसका मकान है, ज़मीन है। इस प्रकार वह मरा हुआ कैप्टेन और अधिक अंजना के लिए समस्यात्मक बन गया है। उसे अनुप्राणित कर गया है। इसीलिए वह मरा हुआ कैप्टेन उसे याद आता है। वह रात-दिन उसके आगे-पीछे रहता है।

अंजना मालदार बन गई है। उसको अब पत्र आने लगे हैं। जयन्त

का भी पत्र आया, जिसमें उसने लिखा था कि अब अंजना सम्पन्न है, समाज का विशिष्ट अंग है। किन्तु अंजना को इस प्रकार के पत्र, किसी की वाणी सहन नहीं थी, वह ऐसी आँधी थी कि जिसके आघातों से बचना उसके लिए सरल नहीं था, वह दुर्बल थी, कोमल थी, वह बार-बार चाहती कि कैप्टेन आये और अपना अधिकार वापस ले जाए। किन्तु स्वयं उसकी अवस्था यह थी कि अपनी साथिनों की धारणा के विपरीत न उसने नौकरी छोड़ी, न अपने दैनिक जीवन के रहन-सहन में कोई बढ़ोतरी की। अपितु इसके विपरीत यह हुआ कि अंजना अब बहुत कम साथिनों से मिलती। उसने अपना रहन-सहन भी बदल दिया। अपनी आवश्यकताओं को कम कर दिया। वह कैप्टेनरूपी पंछी उसके पास से उड़कर क्या गया, उसके सभी अरमानों को छितरा गया।

तभी एक दिन अंजना के पास गाँव का मलखान आ गया और उसके साथ प्रोफेसर अतुल। प्रोफेसर अब वृद्ध हो गया था। उसने आते ही कहा, "बेटी, तुझसे मिलने की इच्छा थी। जयन्त से मिलने गया, वहाँ से यहाँ चला आया।"

अंजना ने कहा, "मुझे आपकी आवश्यकता थी। मैं जयन्त बाबू को लिखने वाली थी।"

मलखान बोला, "प्रोफेसर तुमसे मिलने के उत्सुक थे। तुम्हें पता नहीं, गाँव इनका ऋणी है। उस सुखदास को जानती हो न, जिसके पास कोई जाता नहीं था, वही सुखदास इन प्रोफेसर की कृपा से ठीक हो चला है। अब वह गाँव में आता-जाता है। गाँव का कोई घर ऐसा नहीं कि जहाँ प्रोफेसरबाबू का आना-जाना न हो।"

प्रोफेसर अतुल ने पूछा, "यह बताओ, कभी जयन्त आया ?"

अंजना ने कहा, "जी नहीं, कुछ समय पूर्व एक पत्र आया था।"

प्रोफेसर बोला, "जयन्त का जीवन बदल गया है। वह जीती हुई बाज़ी हार गया है। तुम देखो तो समझो कि वह कहाँ से चला था और कहाँ पहुँच गया है। वह मेरे शिष्यों में योग्यतम था, पर उसका तो ऐसा पतन हुआ कि समझ ही नहीं आता।"

मलखान बोला, "अंजनाजी, जयन्तबाबू ने रुपया तो उपार्जित किया,

परन्तु जीवन का सुख उस दाँव पर लगा दिया। पत्नी ऐसी मिली कि उसने उनके घर का सभी वातावरण बदल डाला। बड़े घर की बेटी, पढ़ी-लिखी, जो अपने हाथ से न चक्की पीसती है, न बर्तन माँजती है, न रसोई बनाती है। बहूजी के आते ही उस घर में कई-कई नौकरों का बसेरा हो गया है। आमदनी बढ़ी, तो खर्च भी बढ़ गया। गाँव में भले ही किसी को सवारी के लिए गधा भी मयस्सर न हो, परन्तु डाक्टर जयन्त के पास मोटर है, घोड़ागाड़ी है।"

हँसकर अंजना ने कहा, "अच्छा तो है। ठाठ हैं, जयन्तबाबू के।"

मलखान बोला, "नहीं, नहीं, अंजना बहिन ! जो जयन्त कभी मुफ्त में इलाज करता था, वह अब मुफ्त में बात भी नहीं कर सकता। उसे अधिक पैसा चाहिए, वह इन्सानियत को छोड़कर पैसे का भूखा बन गया है। कोई कह सकता है कि जयन्त कभी कुछ और था ?"

प्रोफेसर अतुल उस समय गम्भीर था, निरा ठोस। वह तभी अपने हाथ की मुट्ठी बाँधकर बोला, "अफसोस होता है उस जयन्त को देखकर ! बड़ा निर्मल, बड़ा साफ था कभी। मैं अब भी उसे बदलना चाहता हूँ। उससे ममता रखता हूँ। मैं क्या पहलेवाले जयन्त को भूल सकता हूँ ?"

मलखान बोला, "जी, अब पानी सिर से उतर चुका है।"

प्रोफेसर ने कहा, "मैं नहीं मानता। आदमी में सत्य हो तो वह कभी भी देखा जा सकता है।"

अंजना ने कहा, "मेरी परीक्षा का यह अन्तिम वर्ष है। मैंने सरकार को किसी स्थान पर एक अस्पताल खोलने के लिए लिखा है। मुझे मृत कैप्टेन का पचास हज़ार रुपया मिलने वाला है तो उसी का सदुपयोग करना मैंने सोचा है। यही मैंने सरकार से निवेदन किया है। मृत कैप्टेन के नाम पर ही वह अस्पताल चलेगा।"

एकाएक हर्षित होकर प्रोफेसर ने कहा, "शाबाश, बेटी !"

मलखान बोला, "तुम्हारा विवाह कब हुआ था, उस कैप्टेन से ?"

अंजना ने कहा, "वह कभी नहीं हुआ। परन्तु अब मैं मृत कैप्टेन की पत्नी हूँ, उसी के नाम पर वैधव्यता स्वीकार कर चुकी हूँ। मेरे

जीवन का उत्थान और पतनेच्छा से क्या मुँह मोड़ना सरल होता है ?"

सुनकर मलखान मौन रह गया। कि मनुष्य नहीं रुक सकता। वह

अंजना बोली, "मेरा ध्येय निश्चित है। कब्र स्वयं ही खोद लेगा।"
करना है। मैं इस बात को नहीं भूल सकती कि इसकों में कुछ मीठा था।
ने दी है। परन्तु अब वह यों उलझ चुके हैं इसका मुझे पता न
वैसे गृहस्थी बनकर यही सब होना था।"

प्रोफेसर ने कहा, "बेटी, आदमी स्वयं परेशानी खरीदता है। अन्धकार में जाता है। जब जीवन की माँग अधिक बढ़ जाती है तो मनुष्य असंयत बन जाता है।"

उसी समय नीरा वहाँ आ गई। अंजना ने उसको प्रोफेसर का परिचय दिया। नीरा ने मलखान को देखकर कहा, "इन्हें तुम्हारे गाँव में देखा था।" उसी समय उसने प्रोफेसर और मलखान को बताया, "यह अंजना संन्यास लेना चाहती है। वह कैप्टेन क्या मरा, इसका रूप बदल गया। वह जैसे इस अंजना को भी मार गया। सब लोग देखते हैं अब यह अंजना नीचे ज़मीन पर सोती है, कम्बल बिछाती है। सादा भोजन और सादा पहनावा पसन्द करती है। यह तो अब भरी जवानी में योग साधना करने चली है।"

प्रोफेसर अतुल ने कहा, "बिटिया, तुम्हारी बात सत्य हो तो यही श्रेयस्कर है। इस अंजना के लिए शुभ है।"

अंजना ने कहा, "प्रोफेसर साहब, आप कुछ समय रहिए। मुझे सेवा का अवसर दीजिये!"

प्रोफेसर हँस दिया, "मैं सेवा कराता नहीं, करता हूँ। मेरी कोई आवश्यकता नहीं है।"

मलखान ने कहा, "प्रोफेसर साहब कहीं भोजन नहीं करते। अपना भोजन भी साथ रखते हैं। सूखे फल खाते हैं।"

प्रोफेसर ने कहा, "मैंने बहुत भोजन किया। अब कहाँ तक इस पेट को भरूँगा। इच्छाएँ असीमित हैं। वे सभी कष्टदायक हैं।"

नीरा ने कहा, "प्रोफेसर साहब, आपका नाम सुना था, आज आपके शुभ दर्शन किये। बताइये तो जीवन की इच्छा को मारना क्या संगत है? फिर इस विश्व का निर्माण कैसे हो सकता है? ऐसी अवस्था में इन

परन्तु जीवन का सुख उस दाँव पर लगा दिया का तत्व है, वह उसी में दबा उसने उनके घर का सभी वातावरण सुस्त बन जाएगा।" पढ़ी-लिखी, जो अपने हाथ से प्रोफेसर मुस्कराया, और बोला, "यदि ऐसा न रसोई बनाती है हुगा। मनुष्य शान्त और स्थितप्रज्ञ बनेगा। धरती पर बसेरा हो जाएगा।" उसने कहा, "बेटी, ये निर्माण-कार्य सभ्यता का विस्तार करने के लिए हैं, इन्सान को अधिक गुलझटदार बनाने के लिए हैं। तभी आदमी दास बनता है। बोलो, तुम सौ रुपये मासिक की अपेक्षा पाँच सौ पाने लगो तो क्या करोगी? तुम और अधिक भौतिक पदार्थों का क्रय-विक्रय करोगी। अभाव तुम्हारा तब भी रहेगा जिसकी कोई सीमा नहीं। आत्म-कल्याण और समाज-कल्याण का कोई भाव तुम्हारे मन में नहीं आएगा। देर से यह इन्सान गन्दा पानी उलीचता आया है, उसी में तुम्हारा भी भाग होगा। इस निर्माणों की भीड़ में आदमी खो गया है, आत्महीन बन गया है। सजा हुआ इन्सान खोखला और नर-पशु के अतिरिक्त और कुछ नहीं रह गया। तुम बढ़िया खाओ, बढ़िया पहिनो, बढ़िया मकान में रहो, तो इससे समाज को क्या मिला? तुमने क्या दिया? तुमने तो बढ़ियापन को पाने के लिए चोर और डाकू का रूप अंगीकार किया। यही कारखानेदार करता है, यही वकील और यही डाक्टर करता है! जो समाज का गुरु है, अध्यापक है, वह भी इसी मनोवृत्ति का परिचायक बन गया है। अब तो जन-सेवा का भाव नहीं दिखाई देता। इन्सान संग्रह करने की मनोवृत्ति को अपना रहा है। वह मूर्ख स्वयं अपनी आत्मा का हनन कर रहा है।" इतना कहते हुए प्रोफेसर रुक गया। उसका पीला और दुर्बल चेहरा लाल पड़ गया। मन का रोष उसकी वाणी में फूट आया और वह चेहरे पर भी उतर आया। तभी प्रोफेसर फिर बोला, "ये ऊँचे-ऊँचे महल, ये भव्य नगर ऊपर से भले ही प्रगति और नव-युग के प्रतीक हों, परन्तु इनके अन्तकाल में जो कुछ है, वह भयानक है, वीभत्स है, सड़ाँद से भरा है। लगता है कि यहाँ का प्रत्येक व्यक्ति सर्प के समान फूत्कार कर रहा है। मनुष्य ही मनुष्य का वध करता दिखाई देता है।"

नीरा ने साँस भरी और कहा, "प्रोफेसर साहब, आपका कहना तो सत्य है, परन्तु इस तेज़ प्रवाह में बहता हुआ मनुष्य क्या सहज में रुक

सकता है ? कामना और इच्छा से क्या मुँह मोड़ना सरल होता है ?"

प्रोफसर ने कहा, "यह ठीक है कि मनुष्य नहीं रुक सकता। वह बहेगा। ऐसे तूफान में उड़कर मरेगा। अपनी कब्र स्वयं ही खोद लेगा।"

उसी समय अंजना गिलासों में दूध ले आई, साथ में कुछ मीठा था। उसने गिलास दोनों को थमा दिए।

प्रोफेसर ने कहा, "आज का इन्सान पैसे का दास बन गया है। पैसा है तो जीवन है, रोटी है, कपड़ा है, सिर छिपाने को घर है। बोलो, यह कैसी विवशता है। यह सरमायेदारों का षड्यन्त्र है। कुछ व्यक्तियों का पाप है !"

आतुर बनकर नीरा ने कहा, "जी।"

प्रोफेसर ने दूध पी लिया। उसने मिठाई का एक टुकड़ा भी मुँह में डाल लिया। वह अंजना को देखकर बोला, "बेटी, तुम चाहो तो मेरे साथ चलो। कुछ पहाड़ी गाँवों में घूमो। तुम्हारा जो संकल्प है उसे और कोई प्रोत्साहन दे या नहीं, परन्तु मैं हृदय से सराहूँगा। तुम्हारे कार्य में मैं भी योग दूँगा। मेरे पास जितना रुपया है वह भेंट कर दूँगा।"

चतुर नीरा ने कहा, "आपके पास भी रुपया है ?"

प्रोफेसर मुस्कराया, "हाँ, बेटी ! मेरे पास रुपया है। मैंने अध्यापन काल में जो किताबें लिखीं, वे अभी चलती हैं। उनकी रॉयल्टी मिलती है। कुछ काम तो मुझे भी करना पड़ता है।"

अंजना ने कहा, "प्रोफेसर साहब, मुझे पथ-प्रदर्शक चाहिए, आपका आशीष !"

उसी समय मलखान बोला, "तुम गाँव चलो, अंजना ! वहाँ अँधेरा है। वहाँ का इन्सान पत्थर है।"

अंजना ने कहा, "हाँ, भैया ! मुझे वहीं जाना है। मैं सफर की तैयारी कर रही हूँ। सरकार मेरे पत्र का क्या उत्तर देती है, इसकी प्रतीक्षा है।"

उसी समय प्रोफेसर ने अपना झोला और लकड़ी का डण्डा उठा लिया और वह बोला, "अब मैं जाऊँगा। यहाँ से कुछ दूरी पर एक स्थान है, मुझे वहीं जाना है।"

आतुर बनकर अंजना बोली, "आज ही ! अभी-अभी तो आप आए हैं।"

प्रोफेसर ने कहा, "मैं जल्दी लौट आऊँगा। यहाँ से पहाड़ी गाँवों जाऊँगा। तुम चाहो तो मेरे साथ चल सकती हो।"

उत्साह से भर अंजना ने कहा, "हाँ, मैं आपके साथ चलूँगी। ऐसे अवसर का उपयोग अवश्य करना चाहूँगी।"

मलखान भी उठ पड़ा और बोला, "मुझे यहाँ काम था, साथ ही तुमसे भी मिल लिया।"

सभी चले गये, बाद में नीरा भी। वह कहती गई कि यह प्रोफेसर विचित्र था, सचमुच अनोखा था। अंजना ने बात सुन ली और सहज भाव से केवल मुस्करा भर दिया।

अठारह

एक मास से ऊपर हो गया था जब अंजना प्रोफेसर अतुल के साथ पहाड़ पर गई और वहाँ के अनेक गाँवों में घूमकर, प्रोफेसर के कार्य की गतिविधि देखती रही। अनेक स्थानों पर अंजना स्वयं प्रोफेसर की सहायक बनी। उस पर्यटन में उसको लगा कि जैसे वह जन्म-जन्मान्तर से प्रोफेसर के साथ थी, उसकी पुत्री थी, सहायिका थी। उसी प्रवास में जब एक दिन प्रोफेसर अतुल के साथ अंजना एक झरने के पास बैठी थी, तो तभी, प्रोफेसर ने उसका ध्यान भंग किया और कहा, "बेटी अंजना, सच कहना, क्या सच ही तुम्हें विवाह नहीं करना होगा ? देखो, भावुकता में न बह जाना। जीवन की वास्तविकता को देखना।"

अंजना ने कहा, "मेरे लिए केवल आपका ही यह प्रश्न नहीं, दूसरी जगह भी मुझसे यह सवाल किया गया है। परन्तु मैं सोचती हूँ कि विवाह का प्रश्न गौण है, शरीर की भूख मिटाना मात्र ही इसका ध्येय है, और मेरे मन में जो कुछ है वह इससे ऊँचा है।"

प्रोफेसर बोला, "बिटिया, बात ऊँची है। निभा सको तो इससे श्रेष्ठ दूसरा पथ नहीं है।"

अंजना ने कहा, "वह निभेगा, निभाया जाएगा। अ. ...ाब हैं जो चाहिए।"

गद्गद भाव से प्रोफेसर बोला, "यह प्रकृति भी तुम्हें आशीष देगी। सुनो, मैं तुम्हें बता नहीं सका, कल मुझे जयन्त का पत्र मिला था। पत्नी से प्रायः उसका झगड़ा रहता है। उस जयन्त का जीवन क्लिष्ट बन गया है।"

साँस भरकर अंजना बोली, "जयन्तबाबू अच्छे हैं, सरल हैं। वे सदा मेरे सामने रहते हैं।"

प्रोफेसर ने कहा, "जयन्त अतिशय भावुक है। आओ अब चलें। ठण्ड बढ़ गई है। तुम अपने स्वास्थ्य का भी ध्यान किया करो। यह शरीर-धर्म की बात है। शक्ति से परे काम न किया करो। देखता हूँ, तुम कांतिहीन बन चली हो। इस पहाड़ पर आकर तुम्हें और स्वस्थ होना चाहिए था, पर तुम दुर्बल ही बनी रही हो।"

अंजना ने अपने श्वेत मोतीसरीखे दाँतों से हँसकर कहा, "अब इस शरीर का क्या होगा! एक दिन नष्ट हो जायेगा। केवल राख का ढेर ही दिखाई देगा।"

प्रोफेसर ने कहा, "नहीं, नहीं, ऐसा समझना गुनाह है, आत्मघात है। तुम्हारा अभी जीवन ही कितना है, अभी तो बहुत चलना है। अभी इसने बहुत काम करना है। तुम्हारा तो अभी सभी काम अधूरा है। जब जीवन पाना है तो इसका मोल समझना चाहिए। चिर-जीवित रहने के लिए उत्साहित बनना चाहिए।"

अंजना ने कहा, "मैं अभी नहीं मरूँगी, अभी रहूँगी। जो मन में बात है, उसे पूरा करना है।"

बातें करते-करते दोनों डेरे पर पहुँच गये। वहाँ जाते ही वे दोनों अपने-अपने बिस्तर पर पड़ गये। रात का आगमन हो चुका था। प्रातः होते ही प्रोफेसर ने सफर की तैयारी की। दोनों के बिस्तर बँध गये। वे दोनों चल पड़े। अगले दिन जब अंजना घर में पहुँची तो उसे घर पर सरकार का पत्र मिला। अंजना का आवेदन स्वीकार कर लिया गया था। उसने सरकार से निवेदन किया था कि यदि सरकार कैप्टेन रमाकान्त के नाम पर एक अस्पताल निर्माण करने में सहायता दे तो

प्रोफेसर -ट्न का समस्त रुपया और जायदाद सरकार को भेंट
जाएँ ।। है। जब उसके प्रस्ताव की स्वीकृति उपलब्ध हुई तो वह एक गद्गद होकर प्रोफेसर अतुल की ओर देखने लगी। उसकी आँखें आईं।

प्रोफेसर ने कहा, "अंजना बेटी, मुझे लगता है कि तुम्हारे मन भगवान बोलता है। तुम्हारे जीवन का यह शुभारम्भ नितान्त प है।"

उस समय अंजना की आँखें बाहर की ओर उठी थीं; नीलाक को देख रही थीं। उसी ओर देखते हुए वह बोली, "प्रोफेसर साह मेरे मन की पीड़ा भी अगाध है। जिस व्यक्ति ने मुझे इस सुन्दर पर बढ़ने का संकेत दिया, देखती हूँ, उसने मुझे उपेक्षा और तिरस्क का पात्र समझ लिया। पर एक वह थे कैप्टेन रमाकान्त, तनिक कल्प तो कीजिये, जाने किस संस्कारवश उनके मन में मेरे प्रति अनुराग आया था। भगवान ने मुझे उस कैप्टेन के समक्ष ले जाकर खड़ा दिया।"

प्रोफेसर अतुल उस समय अत्यन्त गम्भीर थे। वे निश्चय ही अंज के हृदय की उस गहराई में उतर गये कि जहाँ उसकी पीड़ा छुपी थी तभी उन्होंने अपना दुर्बल और काँपता हुआ हाथ अंजना के सिर रखा और कहा, "बिटिया, इस दुनिया में यही होता है। ऐसा ही सु और समझा जाता है। पर यह समझ लो, जयन्त तुम्हें खोकर सु नहीं है। वह स्वयं अपनी जाति की वेदी पर आत्मघात कर चुका है।

अंजना का सिर और अधिक झुक गया। उसके मन का उद्वेग आँखों में उतर आया। वह रो उठी, तड़पकर बोली, "मैं भी अपराधि हूँ। जीवन में बहुत बड़ा पाप कर बैठी हूँ मैं। मैं उस मृत कैप्टेन उपेक्षा तथा तिरस्कार के अतिरिक्त और कुछ नहीं दे सकी। यदि उसे एक बार भी बताती, तनिक भी कहती कि मैं..."

प्रोफेसर ने कहा, "बेटी, धैर्य रख। अब शान्त हो। सचमुच, व कैप्टेन भी अनुराग का भूखा था। नारी की अनुभूति चाहता था। व ऊँचे हृदय का था। तूने उसे कुछ नहीं दिया तो क्या हुआ, वह तो तु अपना सभी कुछ दे गया।"

तभी आवेगपूर्ण बनकर अंजना बोली, "पर एक जयन्तबाबू हैं जो त के भूखे हैं, जातिवाद के उपासक हैं।"

विचलित बनकर प्रोफेसर ने काँपती वाणी में कहा, "हाँ, हाँ, मैं अब समझता हूँ, बेटी ! परन्तु जयन्त ने तुम्हें धोखा नहीं दिया। ऐसा भी नहीं कि वह तुम्हारा मूल्य नहीं आँक सका। निश्चय ही जयन्त दुर्बल निकला, परन्तु हृदयहीन नहीं। वह तुम्हें पाता। निःसन्देह, वह भाग्यहीन रहा, मुझे पता है। तुमने स्वयं ही उसे जीवन-भर भटकते रहने को बाध्य किया।"

उसी दिन प्रोफेसर अंजना से विदा हो गया। लेकिन अंजना के लिए भले ही यह कोई अनोखी समस्या न हो कि वह विचार नहीं करेगी, परन्तु जो उसकी साथिनें थीं, उस बड़े अस्पताल के डॉक्टर तथा अन्य कर्मचारी थे, उनकी दृष्टि में वह अंजना मानो रहस्य से भरी थी, वह न समझने वाली समस्या थी। यह बात सभी ओर फैल चुकी थी कि अंजना ने प्राप्त समस्त रुपया लौटा दिया है। इससे भी अधिक कौतुक की बात यह थी कि अंजना अब विवाह करने की बात में रुचि नहीं लेती। जब उससे अधिक कहा जाता तो कह देती, मेरा विवाह हो गया है।

—तो प्रश्न किया जाता, "किसके साथ ?"

अंजना सरल भाव से कह देती, "कैप्टेन रमाकान्त के साथ।"

"उस कैप्टेन के साथ···वह तो मर गया।"

"हाँ, वह गया, तो मुझे वैधव्य मिल गया।"

"तो विधवा है तू ! सच ! अरी अंजना, भावना में बहकर जीवन को धोखा न दे। उस सुहावने यौवन को यों बरबस ही न नष्ट कर दे। इसे पनपने का अवसर दे। बोलने दे।"

तब, सचमुच ही, नितान्त कठोर और गम्भीर बनकर अंजना कहती, "इस जीवन से यदि भावना तिरोहित हो जाए तो इसमें फिर रह क्या जाएगा। तब तो निरा खोल ही होगा, यह जीवन ! मुझे ऐसा ही रहने दो। कुछ दिन जीना है, तो जीने दो।"

यों बात चलती और रुक जाती। कहने वाले को फिर आगे बात चलाने की क्षमता न रहती।

लेकिन अंजना की उस मनोदशा के समय ही एक दिन, संध्या के

समय, जयन्त वहाँ दिखाई दिया। निश्चय ही, वह अंजना के पास आया था। अंजना ने देखा कि वह बहुत कुछ बदल गया है। कांतिहीन हो गया है। वैसे अंजना को इस बात का पता था कि अब जयन्त के पास रुपया है। वह मालदार है। देखते ही अंजना ने कहा, "कहिये, ठीक तो हैं आप ! आपकी पत्नी···बच्चे···"

जयन्त ने कहा, "हाँ, अंजना, सब कुछ ठीक है। जो प्राणी इस धरती पर आता है, चलता है, चले ही जाता है। पर सोचता हूँ कि तुम्हारा चलना, तुम्हारा इस धरती पर आना मुझे सार्थक दीखता है।"

अंजना उसके इस कथन पर चुप रही। उसने अपना मुँह ऊपर काले हो आए आसमान की ओर उठा दिया और उसी ओर देखते हुए साँस भरकर कहा, "जयन्तबाबू, ऐसा न कहते तो ठीक था। कम-से-कम आपके मुँह से ऐसा सुनना मुझे नहीं रुचता। देखते हैं आप ! मैं एक गरीब माता-पिता की लड़की हूँ, आपकी जाति से बहुत छोटी, मैं समाज के इसी अभिशाप से आज भी अभिशप्त हूँ, केवल अस्पताल के मरीज़ों की सेविका हूँ।"

जयन्त इतनी भारी बात सुनकर भी मौन बना रहा। वह सहज ही समझ गया कि इस अंजना के मन में पीड़ा है। कोई फोड़ा है, जो सूज रहा है। उसकी बात से वह कसक गया है। अतएव, वह उदास भाव से मौन बैठा रहा।

अंजना बोली, "परन्तु मुझे यह देखकर प्रसन्नता है कि आप सुखी हैं। आपकी पत्नी शुभदा···मेरे लिए खेद का विषय है कि मैं उनसे नहीं मिल सकी।"

जयन्त ने मन में उठी बात को लेकर कहा, "अंजना, मैं अपना पाप समझता हूँ। मैं स्पष्ट देखता हूँ कि मेरे जीवन की पूजा भ्रष्ट हो चुकी है। फलस्वरूप, मैं अशान्त हूँ। मनुष्य कहाँ चैन पाता है और कहाँ पीड़ा—यह सुगमता से नहीं समझा जाता। जिस पैसे से, प्रतिष्ठा से एक आदमी सुख पाने की कल्पना करता है, तो यह ज़रूरी नहीं कि वह ऐसा कुछ पाकर भी सुखी बने। मैंने इस जीवन में यही समझा है। शुभदा सुन्दर है, सम्पन्न परिवार की बेटी है, उसके साथ मेरे घर में सम्पत्ति भी आ सकी है, परन्तु यह सब पाकर मैंने जीवन की शान्ति खो दी है। मुझे

लगता है कि वह शुभदा आग है···अँगारा·· वह ईर्ष्या और हीनता से भरी है। तुम्हारे विषय में गाँव की स्त्रियों ने उसे बता दिया है। उसने अनेकों बार तुम्हारा नाम लिया है।"

बलात् अंजना ने कहा, "नहीं, नहीं, मैंने तो सुना है कि शुभदा सरल है, स्नेहमयी है। मैं कभी आऊँगी। उसने उपेक्षा दिखाई, तो भी बुरा न मानूँगी।"

किन्तु इतना सुनकर जयन्त ने साँस भरी और कहा, "काश ! तुम उस शुभदा को समझ पाती; तुम उस नारी के हृदय में उतर सकती। तुम यहाँ बैठी उसकी प्रशंसा करती हो और वह तुम्हें आज भी अपने रास्ते का पत्थर मानती है। मेरा जवीन और अधिक विषम तथा कठोर न हो, इसीलिए मैं तुम्हारे पास नहीं आया। परन्तु इस सत्य को स्वीकार करो, तुमने मेरा जीवन विषाक्त बना दिया।"

चंचल बनकर अंजना ने कहा, "छोड़िए इस बात को ! बताइये, आप चाय लेंगे या शरबत !"

जयन्त बोला, "मैं कुछ नहीं लूँगा। मैं अभी लौट जाना चाहता हूँ।"

अंजना बोली, "आप अपने स्वास्थ्य का ध्यान नहीं रखते। पत्नी से ममता रखिये। मुझे तो केवल इतना कहना होगा कि इस अंजना को न भूलें।"

जयन्त ने कहा, "काम अधिक है। अब तो स्वयं अपने प्रति मन में ग्लानि हो गई है। जीवन में सन्धि नहीं है।"

बात सुनकर अंजना मुस्करा दी। उसने कहा, "ऐसा सभी कहते हैं। मरने की बात भी सोचते हैं। पर जो जीवन का धन्धा है सब उसी को करते दिखाई देते हैं।"

जयन्त बोला, "यह विवशता है। मनुष्य दास है, याचक है।" यह कहते हुए वह खड़ा हो गया। उसने अपना हैण्ड बैग उठा लिया।

अंजना बोली, "तो अभी, आज ही···" उसका स्वर रुक गया।

जयन्त स्वयं खिन्न था, बोला, "हाँ, अंजना ! मुझे कुछ काम है। तुझे भी आज पा लिया है। किसी ने बताया तो होगा नहीं कि मैं यहाँ कई बार आया हूँ और लौट गया हूँ।"

अंजना ने कहा, "मैं अब स्थायीरूप से यह स्थान छोड़ दूँगी। गाँव

में अब मेरा कोई रहा नहीं तो इस नौकरी को करके क्या करूँगी। मैं अब प्रोफेसर अतुल के निर्देश पर चलूँगी।"

जयन्त बोला, "प्रोफेसर महान व्यक्ति है, अद्भुत !" यह कहते हुए वह द्वार की ओर बढ़ चला। तभी उसने रुककर कहा, "अंजनादेवी, मैं ऐसा कहने का अधिकार तो नहीं रखता, परन्तु कहे बगैर रुक नहीं पाता। अच्छा यही है कि तुम विवाह कर लो। इस सुहावने जीवन को यों उजाड़ देने के लिए उद्यत मत बनो। बोलो, मैं कोई अशुभ बात तो नहीं कहता !"

तुरन्त ही अंजना ने कहा, "नहीं, नहीं, आप मेरे लाभ की ही बात कहेंगे।"

जयन्त ने कहा, "तुमने जो त्याग किया, वह अनुपम है, महान् है। आज यदि वह कैप्टेन रमाकान्त जीवित होता तो तुम्हारी इस भावना को पाकर प्रसन्न होता।" यह कहते हुए जयन्त ने पैर बढ़ाये और बाहर चला गया।

उसी समय क्षुब्ध भाव में एकाएक अंजना के मुँह से निकला, "निरा बेचारा।"

उसे लगा कि सचमुच यह जयन्त बदल गया है। पूरा दुनियादार बन गया है। ज़िन्दगी की दलदल में फँस गया है।

उसके अगले दिन ही अंजना ने अपनी नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया। इसकी सूचना उसने प्रोफेसर अतुल को भी दी। उसी पत्र में उसने प्रोफेसर को बता दिया कि अब वह कहाँ रहेगी और क्या करना पसन्द करेगी।

उन्नीस

लेकिन जयन्त की मन:स्थिति उन दिनों निश्चय ही, अतिशय दयनीय बनी थी। उसकी पत्नी शुभदा यह देखकर स्वयं परेशान थी कि उसका पति या तो पागल है, अथवा अत्यन्त मेधावी बनने की लालसा

में स्थिर नहीं रहा। आरम्भ में उसने समझा था कि उसका पति सरल है, भावुक है, जीवन की अनेक अनुभूतियों से भरा है; परन्तु शनैः-शनैः उसे लगा कि नहीं, उसका पति जर्जर है, कठोर है। वह आत्मानुभूति से परे है। अपनी पत्नी के साथ किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए, उससे भी अनभिज्ञ है। उसका पति केवल अपना स्वरूप देखता है, नारी का नहीं। ठीक इसी प्रकार की शिकायत जयन्त को शुभदा से थी।

परन्तु सत्य क्या था, कदाचित् इसे न शुभदा ने समझा न डॉक्टर जयन्त ने। वह रोगियों का शारीरिक उपचार करना जानता था, मानसिक नहीं। यही कारण था कि वह शुभदा के मन को तो क्या शान्ति देता, स्वयं अपने रोग का उपचार करने में समर्थ नहीं था। स्थिति यह थी कि उसके पास उभरते दरिया के समान पैसा तो आ रहा था, वह नित-नित अधिक परिश्रमी भी बनता जा रहा था, वैभवशाली भी हो गया था, परन्तु उसका मन निरन्तर ही अशान्त और उद्विग्न रहता था। उसके मन में जैसे दीमक का कीड़ा चिपट गया था कि जो नित-नित ही उसे काटता जा रहा था। शुभदा सुन्दर थी, सुशिक्षित थी, लेकिन जयन्त का मन उसके पास जाने को प्रस्तुत नहीं था। कदाचित् यही कारण था कि एक-एक सप्ताह हो जाता कि जयन्त और उसकी पत्नी में दो घड़ी बैठकर वार्तालाप भी न हो पाता। शुभदा यदि ऐसा अवसर पाना चाहती तो जयन्त रास्ता काट जाता। किसी काम का बहाना करके घर से चल देता। रात में भी वह देर से घर पहुँचता और भोजन करते ही अपने कमरे में चला जाता। शुभदा यदि वहाँ पहुँचती तो वह नींद में सोया होता अथवा किसी किताब को लिए पढ़ने में लगा होता।

यों, देर से, उस परिवार में उन दो प्राणियों के मन में एक ऐसा बीज पनप रहा था कि जिसे न शुभदा समझ पाती थी न जयन्त। दोनों के मन का बोझ आये दिन बढ़ता जा रहा था।

तभी जयन्त को पता चला कि दूर पर्वतीय प्रान्त में सरकार ने कैप्टेन रमाकान्त के नाम पर एक अस्पताल खोला है, अंजना उस अस्पताल की संरक्षिका है। जयन्त को यह भी समाचार मिला कि अंजना उस क्षेत्र में सभी की परिचित है। ऐसे समाचार से प्रेरित होकर जयन्त के मन में आया कि वह पर्वतीय क्षेत्र में जाए और उस अस्पताल को

देखे। वह भी उस मिशन को अपना योग दे। किन्तु वह देखता था कि उसका जीवन तो बँधा है। इस शुभदा ने पकड़ लिया है। इसके बच्चों ने···और जयन्त उस अंजना के पास जाने के लिए लालायित था, उसका मन छटपटा रहा था। वह उस अंजना से एक बार फिर अपने मन की बात कह देने के लिए तत्पर था। किन्तु जयन्त के मन की इस ऊहापोह के मध्य ही एक दिन शुभदा ने उसे टँकोरा और कहा, "आखिर क्या है, तुम्हारे मन में ? क्या वह अंजना···ऊँ, तुम उसके पास जाओगे तो मैं नहीं रोकूँगी ? मैं तुम्हारा पथ अवरुद्ध नहीं करूँगी।"

अप्रत्याशित भाव से जयन्त शुभदा की बात सुनकर भी मौन बना रहा।

किन्तु शुभदा ने फिर कहा, "मैं समझी थी कि मनुष्य सरल है, साफ है। परन्तु मैं तुम्हें देखकर यह समझती हूँ कि नहीं, मनुष्य रहस्य से भरा है, कठोर है। बोलो, क्या तुम्हारे मन में वह चमार की लड़की अंजना··"

जयन्त तुरन्त चीख पड़ा, "शुभदा !"

शुभदा ने कहा, "मैं भगाई हुई नहीं हूँ, विवाहिता हूँ। मैं एक भले माँ-बाप की बेटी हूँ। तुम्हारे लिए यदि और बीवियाँ हो सकती थीं, तो मेरे लिए···"

"ओह, मूर्ख शुभदा !" जयन्त फिर झल्ला पड़ा।

किन्तु शुभदा तो उस दिन जैसे सभी कुछ कह देने के लिए प्रस्तुत थी। वह बन्दूक की भरी गोली की तरह छूट पड़ी और बोली, मैं "मूर्ख हो सकती हूँ, परन्तु पाप की पोट नहीं।"

जयन्त ने भावावेश में मेज़ की दराज़ से पिस्तौल निकाल लिया और उसका घोड़ा छोड़ बैठा। साथ ही उसने चीत्कार किया, "मैं तुझे जान से मार दूँगा, शुभदा की बच्ची ! तुझे घमण्ड है कि तेरा बाप मालदार है तो उस पर थूक दूँगा।"

अवसर की बात थी कि गोली शुभदा की कनपटी के ऊपरी हिस्से को छूती हुई निकल गई। वह कमरे की दीवार में घुस गई। शुभदा के सिर से खून निकला और वह वहीं कमरे के फर्श पर सिर पकड़कर बैठ गई। घर के नौकर कमरे में आ गए। शुभदा के बच्चे भी दौड़े आये।

वे रो पड़े, लेकिन जयन्त तो क्रोध में था। वह नौकरों को देख चिल्ला पड़ा, "तुम लोग चले जाओ यहाँ से।" और वह स्वयं पिस्तौल को रख कमरे से बाहर निकल गया। वहाँ से सीधा गाँव के मन्दिर पर पहुँच गया। उसने देखा कि उस रात के सन्नाटे में भी मन्दिर का देवता मुस्करा रहा है, हँस रहा है। जयन्त उसी मन्दिर के चबूतरे पर घूमने लगा। ऊपर आसमान में चाँद निकल आया था। चारों ओर चाँदनी फैल गई थी। दूर जंगल का दृश्य अत्यन्त मनोरम लग रहा था। तभी जयन्त के मन में बात आई, यह वैभव और पैसा मुझे बड़ा महँगा पड़ा। इस शुभदा ने मेरा सर्वस्व हरण कर लिया। और एक वह थी अंजना, निरी सरल। आह! अब मैं उससे भी दूर हो गया।

संयोग से उसी समय मन्दिर का पुजारी वहाँ आ गया। वह बूढ़ा था। उसे कम दीखता था। किन्तु जब वह निकट आया और उसने मन्दिर के चबूतरे पर गाँव के सबसे बड़े आदमी डॉक्टर जयन्त को देखा तो वह चकित बनकर बोला, "भैया, तुम!"

जयन्त ने कहा, "हाँ, पुजारीजी, मैं हूँ।"

किन्तु पुजारी ने कहा, "बहुत दिन पहले भी तुम आते थे, तब तुम्हारे साथ वह लड़की अंजना भी आती थी।"

जयन्त ने साँस भरकर कहा, "हाँ, पुजारीजी, अब वह दिन नहीं आ सकते। वे दिन दिखाई भी नहीं देंगे।"

पुजारी ने कहा, "भैया, जो गया वह नहीं आता। समय भी नहीं।" वह बोला, "पर भैया, आज तुम कैसे आए?"

जयन्त ने कहा, "मैं परेशान था, मन खिन्न बना था। यहाँ देखता हूँ कि सदा के समान भगवान आज भी मुस्कराता है, हँसता है।"

पुजारी ने कहा, "भैया, भगवान आदमी के समान न रोता है, न हँसता है। उसके मन का भाव क्या कभी बदलता है? निर्लेप है भगवान।"

जयन्त चुप रहा। वह ऊपर आकाश की ओर देखने लगा। मानो वह आकाश का चन्द्रमा भी उसी की ओर देखकर हँस रहा हो। किन्तु जयन्त के मन की यह कैसी विवशता थी कि उसका मन रो रहा था। वह पीछे घर पर जो काण्ड उपस्थित कर आया था वह उसकी आँखों

के समक्ष घूम रहा था। उसी समय उसे लगा कि सच, इस जयन्त के मानस में राक्षस बैठा है। वह चीत्कार करता है, हँसता है।

उसी समय जयन्त लौट पड़ा। वह तेज़ चाल से चल घर पहुँच गया। जाकर देखा कि शुभदा के बच्चे सो गए हैं। वह स्वयं भी बिस्तर पर पड़ी है। सिर में पट्टी बँधी है। पास जाते ही उसने शुभदा से कहा, "मैं अपराधी हूँ, शुभदा ! मैं दुःखी हूँ।"

सुनते ही, शुभदा उठकर बैठ गई। वह तुरन्त ही कातर और रुक्ष स्वर में बोली, मैं समझती थी कि तुम देवता हो, पर आज समझ सकी कि तुम क्या हो।"

जयन्त ने कहा, "हाँ, शुभदा ! मैं राक्षस हूँ, जंगली हूँ। निश्चय ही, मैं तुम्हारे अयोग्य हूँ। मैं अब जीवन नहीं चाहता, मौत चाहता हूँ।"

किन्तु शुभदा ने तीक्ष्ण दृष्टि से जयन्त को घूरकर कहा, "कहते क्यों नहीं, तुम मेरी मौत चाहते हो।"

उस समय जयन्त का सिर झुक गया। वह अपनी पत्नी की दृष्टि में अपराधी बन गया। उसी तरह सिर झुकाए वह अपने कमरे में लौट गया।

किन्तु प्रातः होने पर जब शुभदा जयन्त के कमरे की तरफ से निकली तो नौकर ने एक पर्चा शुभदा के हाथ पर रखा और कहा, "बाबूजी बाहर गए हैं।"

शुभदा ने पर्चा पढ़ लिया जिसमें लिखा था कि वह बाहर जा रहा है। पहले पिस्तौल पुलिस में लौटा देगा, बाद में कहीं अन्यत्र जाएगा। वह एक सप्ताह से पूर्व नहीं लौटेगा।

शुभदा फिर अपने कमरे में लौट आई। रात में उसने स्वयं निश्चय किया था कि वह अपने पिता के घर चली जाएगी। इस प्रकार वह इस घर में नहीं रहेगी। किन्तु जब उसने देखा कि जयन्त स्वयं चला गया, पिस्तौल लौटाने का भी विचार कर लिया, तो बरबस ही, उसके मन में आया कि रात जो कुछ हुआ, उसका परिणाम भी अब सुखकर नहीं होगा। कदाचित् अब उसका भविष्य उज्ज्वल नहीं बन सकेगा, एक नारी के रूप में। उस शुभदा ने क्षणभर में समझ लिया कि वह और उसके बच्चे निरावलम्ब हैं, पथ-भ्रष्ट हैं। उसने अपने मन में सुन्दर कल्पनाओं

का एक महल निर्मित किया था, वह हवा का एक ही झोंका खाकर गिर गया। मानो उस शुभदा का संसार लुट गया हो।

किन्तु इसके विपरीत, वह जयन्त था जो अपने गाँव से चलकर नगर में गया। उसने पिस्तौल वापिस कर दिया और वहाँ से एक ऐसे स्थान की ओर चल दिया कि जो उसके लिए अपरिचित नहीं था। दूसरे दिन ही वह उस पर्वतीय स्थान में पहुँच गया। वहाँ पहुँचते ही उसे प्रोफेसर अतुल मिला जिसने मुस्कराते हुए उसका स्वागत किया। प्रोफेसर ने कहा, "मैं जानता था कि तुम आओगे। यहाँ आकर भी अंजना से मिलोगे।" उसने बताया, "अंजना यहाँ नहीं है। आजकल यहाँ मलेरिया है न, तो वह बीमारों की परिचर्या में लगी है। आज आराम करो, कल चलेंगे उसके पास।"

जयन्त ने कहा, "अंजना का जीवन पवित्र है। गंगा का जल है।"

प्रोफेसर ने कहा, "अंजना अब भिक्षुणी बन चुकी है। उसने आज ब्रह्मचर्य-व्रत ले लिया है। वह विधिवत् बौद्ध-धर्म में दीक्षित हुई है।"

जयन्त ने साँस भरकर कहा, "यह उसकी तपस्या है।"

"हाँ, सो तो है ही!" प्रोफेसर ने कहा, "अब तुम आराम करो। अंजना ने इस अस्पताल के काम में मुझे भी लपेट लिया है। उसके पीछे मुझे यहाँ रहना होता है। इस क्षेत्र में लोग गरीब हैं, रोगी भी अधिक होते हैं। अंजना के कहने पर मैंने अपना अन्तिम स्थान यही चुन लिया है।"

वह दिन बीत गया। रात आ गई। प्रोफेसर अतुल मौन भाव से अपने बिस्तर पर पड़ा था। कुछ फासले पर ही जयन्त अपने बिस्तर पर बैठा था। तभी उसने कहा, "प्रोफेसर साहब, मेरे मन में एक बात है।"

प्रोफेसर ने उसकी ओर देखा, "क्या?"

जयन्त ने कहा, "मैं सोचता हूँ, अपनी सेवाएँ इस अस्पताल को समर्पित कर दूँ।"

सुनकर प्रोफेसर रुक गया। एकाएक नहीं बोला। जयन्त की ओर देखने लगा, जैसे उसके अन्तर्मन की बात को समझने लगा हो।

जयन्त बोला, "एक दिन मेरे मन में यही साध थी। समय बदला कि मैं भूल गया। अब उसे याद करता हूँ तो···"

प्रोफेसर ने कहा, "तुम विषम परिस्थिति में हो, जयन्तबाबू ! तुम गृहस्थी हो।"

जयन्त ने कहा, "पत्नी के पास पैसा है, जायदाद है।"

प्रोफेसर बोला, "परन्तु ये सभी गौण हैं। उसे पति चाहिए।"

जयन्त ने कहा, "प्रोफेसर साहब, आप मेरे मन की स्थिति नहीं समझते। शुभदा से मेरे विचार नहीं मिलते। वैसे अब वह दो बच्चों की माँ है।"

सुनकर प्रोफेसर मुस्कराया और हँस दिया। तभी उसने कहा, "अब सो जाओ। प्रातः बात करना। अभी अंजना को सूचना दे दी गई है, वह प्रातः आ जाएगी।"

जयन्त लेट गया। प्रोफेसर सो गया, परन्तु जयन्त उस रात में देर तक नहीं सो पाया।

प्रातः हुआ। जब सूर्य पहाड़ की ओट से ऊपर आया, तभी अंजना वहाँ आ गई। उसके शरीर पर काषाय वस्त्र थे। जयन्त को देखते ही वह हँस दी और कहा, "मुझे समाचार मिल गया था कि आप यहाँ आए हैं।"

जयन्त ने कहा, "मुझे प्रोफेसर ने बता दिया था कि तुम···"

"हाँ, जयन्तजी ! काम बहुत है। यहाँ का समाज गरीब है, निरुपाय है। आपने अस्पताल देखा है न !"

जयन्त ने कहा, "हाँ, देखा है। कैप्टेन रमाकान्त की प्रस्तर प्रतिमा का भी दर्शन किया। मैं प्रोफेसर से सुन चुका हूँ कि तुम उस प्रतिमा की पूजा करती हो। सचमुच, यह सब तुम सराहनीय कार्य कर रही हो। उस स्वर्गीय आत्मा को शान्ति प्रदान कर रही हो।"

उसी समय प्रोफेसर वहाँ आया। अंजना ने कहा, "प्रोफेसर साहब, यह जयन्तजी मेरी प्रशंसा करते हैं। यह तो कहते नहीं कि मैं कहाँ भूल करती हूँ, कहाँ भटक जाती हूँ।"

प्रोफेसर ने कहा, "जयन्त सत्य बोलता है। इसके मन में भी है कि वह अपनी सेवाएँ अस्पताल को प्रदान करे।"

चकित बनकर अंजना ने कहा, "ऐसा कैसे होगा ? यह नहीं होगा। इनकी पत्नी, बच्चे···यह नहीं हो सकेगा।"

"अच्छा फिर आऊँगी," कहकर अंजना ने दोनों को अभिवादन करके विदा ली।

उस दिन के समान जो और दिन आये तो वे भी बीतते चले। डॉक्टर जयन्त को वहाँ दो मास हो गए। वह योग्य और परिश्रमी डॉक्टर था। जिस रोगी का उपचार करता, वह अच्छा हो जाता। मानो उस अस्पताल को डॉक्टर जयन्त क्या मिला, वरदान मिल गया हो। प्रोफेसर अतुल और अंजना ने पूर्णरूप से गाँवों में घूमने और ग्रामीणों की सेवा करने का काम ले लिया। सभी का खयाल था कि अस्पताल शरीर है तो डॉक्टर जयन्त उसकी आत्मा है। वह अब कोई 'बाबू' नहीं, संन्यासी है। सिर के बाल बढ़ गए हैं, दाढ़ी बढ़ गई है। उसका खान-पान और पहनावा भी बदल गया है। उसको एक ही लगन है—रोगियों की सेवा करना।

लेकिन एक प्रातः प्रोफेसर अतुल और जयन्त जब अंजना के पास पहुँचे तो वे दोनों देखकर चकित हुए कि अंजना गम्भीर है, मौन है और उसी के पास बैठी हुई शुभदा विनीत भाव से कह रही है, "मैं तुमसे भिक्षा माँगने आई हूँ, मेरा पति मुझे लौटा दो···मेरे बच्चों का पिता···"

बीस

शुभदा की वह अवस्था प्रोफेसर अतुल और जयन्त को भले ही रुचिकर न लगी हो, परन्तु स्वयं अंजना उस सुन्दर और स्नेहमयी नारी की करुण वाणी में ऐसे खो गई कि मानो उन क्षणों में, उसकी आत्मा के परकोटों में उस वाणी के करुण कोलाहल को छोड़ और कुछ नहीं रह गया हो। जयन्त और प्रोफेसर अतुल तुरन्त ही उस स्थान से लौट गए। जयन्त अपने काम पर जा लगा। जाते ही वह मरीज़ों के करुण-नाद में खो गया। प्रोफेसर को पास के एक गाँव में जाना था। अब उसका अपना कोई निजी परिवार तो था नहीं, इसलिए वह एक से अनेकों में बँट गया था। रात में ही अंजना को इस बात का पता चला कि करतारपुर

गाँव में जो यशोदा नाम की विधवा रहती है उसकी युवा लड़की मालती के विवाह का प्रबन्ध प्रोफेसर के पैसों से हो रहा है। प्रोफेसर अतुल ने ही लड़का चुना है। जब रात में प्रोफेसर ने अंजना से उस मालती के विवाह में सम्मिलित होने की बात कही, तो अंजना ने उन्हें सहज ही भाव से बता दिया कि उसका अब इन दुनियावी विवाह-शादी के उत्सवों से कोई सम्बन्ध नहीं रहा। इतना सुनकर प्रोफेसर मौन रह गया। किन्तु जब प्रातः के समय अंजना अपने नित्य कर्मों से निवृत्त होकर दिनभर के कार्यक्रम पर विचार करने बैठी, तो तभी, उसे प्रोफेसर अतुल की बात याद हो आई। उसने निश्चय किया कि वह मालती के विवाह में अवश्य जाएगी। हो सका, तो जयन्त को भी साथ ले जाएगी।

वहाँ शुभदा और उसके बच्चे भी गये। वे सभी सुहावने और मन-भावने लग रहे थे। देर से अंजना को मौन देख शुभदा ने कहा, "अंजनाजी, देखती हूँ, तुम मुझसे ऊँची हो। भाग्य की बात है कि तुम ..."

"ओह, ऐसी प्रसंगहीन बात भी कहती हो। न, न, तुम बड़ी हो। तुम माँ हो। तुम इन सुन्दर सुकुमार बच्चों का निर्माण कर सकी हो।" सहज भाव से अंजना ने कहा, "सच मानना, मैं इन बच्चों में ही भगवान का रूप पाती हूँ। तुम्हारे मातृत्व को धन्य समझती हूँ। विश्वास रखो, मैं जयन्तबाबू से कहूँगी कि वे लौट जाएँ। अपनी सुन्दर दुनिया में चले जाएँ।"

उस समय शुभदा की दृष्टि कमरे के बाहर गई हुई थी। समीप ही ऊँचा पर्वत खड़ा था। वर्षा हो चुकी थी, इससे पर्वत भी हरियाला बन गया था ; सुन्दर लग रहा था, आँखों में छा रहा था। किन्तु उस विशाल पर्वत की ओर देखते हुए ही शुभदा के मन में जिस प्रकार का कोलाहल भरा था वह तरल बनकर आँखों में उतर आया ; शुभदा के गोरे गालों पर बह चला।

यह देख, अंजना ने आहत स्वर में कहा, "रोती हो शुभदा बहिन ! बोलो, क्या मन में लिये हो ?"

शुभदा जैसे चौंक गई। उसने एक बार पास बैठी अंजना की ओर देखा और तब अपनी गर्दन झुकाकर सहमे स्वर से कहा, 'देखती हूँ कि मैं अब तक धोखे में थी, मैं गर्वित बनी थी। पर आज तुम्हें देखकर

तो...''

अंजना मुस्करा दी और अपना हाथ बढ़ाकर शुभदा के हाथ पर रखती हुई बोली, ''मेरी अच्छी शुभदा !''

शुभदा ने कहा, ''वे ऐसा ही चाहते हैं, तो करें, वे रहें। अब मैं उनके रास्ते में नहीं आऊँगी।''

तुरन्त ही अंजना ने अपने स्वर पर ज़ोर देकर कहा, ''नहीं, नहीं, ऐसे तो जयन्तबाबू की साधना सफल नहीं होगी। वह जीवन की जिस समाधि में बैठ जाना चाहते हैं वह तुम्हारे इन आँसुओं में बह जाएगी।''

उसी समय वहाँ पर प्रोफेसर अतुल आ गये। वह अंजना के कमरे के द्वार पर आकर बोले, ''मैं करतारपुर जा रहा था, लौट आया। मैं रात कहना भूल गया था कि मालती की माँ बीमार है, वह अछूत है न, तो गाँव के ब्राह्मण लोग और उनकी पत्नियाँ उसके पास भी नहीं आएँगी। इसलिए मालती की चोटी गूँथने, उसे विवाह के कपड़े पहनाने और घर के अन्य काम-धन्धे देखने के लिए किसी दूसरी नारी की आवश्यकता है। बोलो, क्या ये जयन्तबाबू की पत्नी शुभदादेवी...''

अंजना ने कहा, ''इसकी मानसिक स्थिति ठीक नहीं है। अभी-अभी तो आँखों में आँसू...''

उसी समय शुभदा ने अपनी आँखें पोंछ लीं और ऊपर मुँह उठाकर कहा, ''मैं आपके काम आ सकती हूँ तो वह मेरे अहोभाग्य होंगे।''

प्रोफेसर अतुल ने कहा, ''शुभदादेवी, वह अछूत कन्या हज़ार ब्राह्मण कन्याओं से श्रेष्ठ है, निर्मल और पवित्र है। तुम उसे देखोगी तो खुश हो जाओगी !''

आतुर बनकर शुभदा ने कहा, ''जी, मैं उस अनुपम कन्या का श्रृङ्गार करूँगी, उसके सिर के बाल गूँथूँगी, मैं उसे सजाकर ससुराल भेजूँगी।''

प्रोफेसर दरवाजे की चौखट से लग गया। वह सामने खड़े पर्वत की ओर देखने लगा। तभी अंजना ने कहा, ''शुभदा बहिन, इस लड़की का विवाह करने के लिए प्रोफेसर ने अपना सब-कुछ दे दिया है। पता है, वह लड़की जन्मान्ध है। परन्तु रूपवती इतनी कि चित्रकार भी उसे देखकर शरमा सकता है। बचपन में उसकी माँ ने लड़की के पालन-पोषण

गमें कमी नहीं की, तो अब भाग्य से मिल गई इन प्रोफेसरजी क
सहायता।"

शुभदा ने साँस भरकर कहा, "प्रोफेसरजी देवता हैं।"

अंजना बोली, "उस लड़की की आँखों का इलाज भी चल रहा है
आँखों का डॉक्टर कहता है कि रोशनी आ सकती है। वह मालती इ
सुन्दर संसार को अवश्य देख सकेगी। और जो लड़का विवाह कर रह
है वह स्वयं डॉक्टरी पढ़ रहा है। प्रोफेसर उसकी पढ़ाई पर भी व्यय क
रहे हैं। विवाह के बाद ही वह लड़का विशेष शिक्षा के लिए विदेश जा
वाला है।"

तभी प्रोफेसर ने कहा, "अंजना, मैं स्पष्ट देखता हूँ कि उस मालत
का भाग्य रानी-महारानियों से कम न होगा। यह मेरा मन कहता है।"

अंजना ने हँसकर कहा, "भगवान करे, आपका आशीष सत्य हो!"

प्रोफेसर बोला, "अच्छा, अब मैं जाता हूँ।"

अंजना ने कहा, "हम लोग भी आएंगे। जयन्तबाबू मरीज़ों से छुट्टी
पा लें तो सब वहाँ इकट्ठे पहुँच जाएँगे।"

प्रोफेसर ने कहा, "जयन्त ने रात ही मुझे एक हज़ार रुपया इस
विवाह के लिए दिया है। उसने कहा है कि वह लड़के की पढ़ाई पर भ
देगा।" प्रोफेसर ने शुभदा की ओर देखकर कहा, "तुम चिन्ता न करो
जयन्त तुम्हारा है। वह तुम्हारा आदर करता है। परन्तु उसकी आत्म
में जो स्वर गूंजता है उसे तुम भी सुनो। जयन्त चलते-चलते भटक गय
था। पर अब फिर अपनी दिशा देखता है। क्या यह अच्छा न होगा कि
उसके दिशा-संकेत पर तुम भी चलो। तुम भी अपने मन का उदात्त-पक्ष
इस निर्बल और असह्य बने समाज को भेंट करो।"

शुभदा ने कहा, "प्रोफेसर साहब, आप मेरे पति के गुरु हैं, तो मेरे
भी पूज्य हैं। आपका आदेश मुझे सर्वमान्य होगा।"

प्रोफेसर मुस्कराया और वहाँ से आगे बढ़ गया।

उसी समय अंजना ने शुभदा के दोनों बच्चों को अलमारी से निकाल-
कर मिठाई और फल दिये। उसने शुभदा से कहा, "रात-भर रेल का
सफर किया है, थकी होगी। उठो, स्नान करो, कपड़े बदलो। जयन्तबाबू
अभी देर में आएँगे। यहाँ के कर्मचारी एक ही भोजनालय में भोजन करते

हैं । कोई विशेष परहेज़ करती हो तो बता दो ।

शुभदा ने कहा, "मेरी चिन्ता न करो । जो मिलेगा, कर लेना ।

अंजना ने कहा, "अवसर की बात है कि इस समय रसोइया है । वैसे यहाँ इस प्रकार की पाबन्दी नहीं है । मैं जानती हूँ कि तुम···

शुभदा ने कहा, "अंजना बहिन, इस समय मैं तुम्हारे यहाँ आई हूँ । वैसे भी भिखारिन बनकर आई हूँ । क्या यह होगा कि तुम···?"

आतुर बनकर अंजना ने कहा, "न, न, तुम मेरे लिए आदरणीय हो । जयन्तबाबू की पत्नी के प्रति न मैं उपेक्षा रख सकती हूँ, न उपहास कर सकती हूँ । मैं इतनी धृष्ट नहीं हूँ ।" यह कहते हुए अंजना गम्भीर बन गई । उसका मुँह लाल पड़ गया । सचमुच उसे शुभदा की बात से कुछ सुख नहीं मिला । उसी अवस्था में उसने फिर कहा, "शुभदाजी, मैं तुम्हारे समान सौभाग्यवती नहीं । जानती तो हो कि मैं निर्धन और अछूत घर में पैदा हुई । इस जीवन की डगर पर भी कहीं ठौर नहीं पा सकी । जगह-जगह फिरी । मैं तुम्हारे पति की ऋणी हूँ । इन प्रोफेसरजी की भी आभारी हूँ कि जिन्होंने मुझे यह दिशा बता दी । यह रास्ता संकटों से तो भरा है, लेकिन फिर भी यहाँ शान्ति है, चैन है ।"

शुभदा ने कहा, "तुम भाग्यवान हो अंजनादेवी ! सच, पुण्यमयी हो ।"

अंजना ने उदास आँखों से बाहर देखते हुए कहा, "मैं सोच नहीं पाती कि मैं क्या हूँ । पर इतना समझती हूँ कि मेरा संचालन कोई और करता है । कोई भगवान है, तो वही मुझे प्रेरणा प्रदान करता है ।"

इतनी देर में बच्चे मिठाई और फल खा चुके थे । देखकर अंजना ने कहा, "और लोगे ?"

लड़के ने कहा, "नहीं ।" उसका नाम ललित था ।

अंजना ने लड़की की ओर देखकर पूछा, "और मुन्नी तुम ?"

मुन्नी ने सिर हिला दिया जिसका अर्थ था नहीं । उसका नाम सुधा था ।

जब अंजना ने उन दोनों के नाम मालूम किए तो उसने सहज भाव से मुस्कराया, "लड़का पिता पर गया है, लड़की माँ पर ।"

शुभदा ने कहा, "यह स्वाभाविक है ।"

गर्में कमी नहीं की बोली, "हाँ-हाँ।"

सहायता।" सुधा की ओर देखकर कहा, "तू मेरे साथ रहेगी ?"

सुधा ने कहा, "हाँ, रहूँगी।"

"और ललित तू! देख तो यहाँ कैसे ऊँचे पहाड़ हैं। बोल, रहेगा ?"

ललित ने सिर हिलाकर स्वीकार कर लिया।

तभी अंजना ने हँसकर कहा, "अरे, तुम नहीं रहोगे भैया! अपनी माँ को छोड़कर भला यहाँ कैसे रहोगे ?" उसने शुभदा को देखकर कहा, "जयन्तबाबू ऊपर के कमरे में रहते हैं। वह बड़ा कमरा है। आदमी तुम्हारा सामान वहीं पहुँचा देगा।"

तुरन्त ही शुभदा ने कहा, "क्या इस कमरे में ठीक नहीं रहेगा ? यहाँ आकर मुझे तुम्हारे समीप रहना ही शोभनीय लगेगा।"

अंजना बोली, "यह भी तुम्हारा कमरा है। पर जयन्तबाबू के मन में क्या है, इसे तो एकान्त में ही बैठकर समझा जाएगा।"

शुभदा ने कहा, "मैं उनके मन की बात समझती हूँ। मैं देर से जानती हूँ कि जिस डोरी को खींचा गया वह अब टूट भी सकती है। उसकी सीमा है। मैं अब वही करूँगी कि जिसमें इन बच्चों के पिता की मतैक्यता होगी।"

इतनी बात सुनकर, अंजना फिर गम्भीर हो गई। वह खड़ी हो गई। जब वह बाहर जाने लगी तो बोली, "इतना बताना असंगत नहीं होगा कि जयन्तबाबू जो कुछ करते हैं उसमें अपने प्राणों की समस्त आस्था समर्पित कर देते हैं। आज जयन्तजी इस अस्पताल के प्राण हैं। रोगी उन्हें अपना भगवान मानते हैं। मैंने देखा है कि रोगों के उपचार में जयन्तबाबू अपना भोजन भी भुला देते हैं। वे सच्चे सेवक हैं।"

शुभदा ने कहा, "हाँ-हाँ, यह मैं भी मानती हूँ। लेकिन क्या यह गृहस्थ जीवन उपेक्षणीय है ? यह भी तो सेवा है।"

मानो इस एक बात में ही अंजना ने शुभदा के मन का स्वरूप पा लिया। उसने समझ लिया कि इस सुन्दर नारी के मन में क्या है। अतएव, उसने कहा, "यह तो श्रेयस्कर है ही।"

यह सुनते ही शुभदा को जैसे बल मिला। उसने कहा, "तब भला वे गृहस्थी से क्यों भागते हैं ? क्या योगी बनना चाहते हैं ? मैं तो यही

समझी हूँ अब तक।"

अंजना ने वहाँ से जाते हुए कहा, "अब आई हो तो बात कर लेना। समझा-बुझाकर जयन्तजी को साथ ले जाना।"

निश्चय ही, उस समय यदि अंजना कुछ और खड़ी रहती तो शुभदा तुरन्त कह देती, तुम जिस आदमी की बात करती हो, वह मेरा पति भले ही हो, परन्तु मन से वह तुम्हारा पूजक है, मेरा नहीं। उस पर मेरी बात का प्रभाव नहीं, तुम्हारा है।

लेकिन अंजना तो वहाँ से जा चुकी थी। जब शुभदा उस कमरे में अकेली रह गई तो देखा कि दोनों बच्चे पहले से ही बाहर निकल गए थे। वे मैदान में खेलने लगे थे। तभी शुभदा ने देखा कि अंजना के उस कमरे में बहुत ही सीमित सामान है, शायद अंजना धरती पर सोती है। सामने दीवार के आले में भगवान बुद्ध की एक मूर्ति रखी है। वहाँ धूप जल रही है। उस मूर्ति के गले में माला पड़ी है। एक तरफ कुछ किताबें रखी हैं। उस अवस्था में ही शुभदा खड़ी हो गई, वह देर से बैठी थी। कमरे के बाहर निकलकर जब वह अस्पताल के एक पार्श्व की ओर चल पड़ी, तो तभी उसके दोनों बच्चे वहाँ आये और बोले, "अम्मा, चलो, देखो तो वह बुढ़िया कितनी रो रही है।"

शुभदा ने पूछा, "अरे, कौन बुढ़िया ?"

ललित ने कहा, "माँ, वह बुढ़िया बीमार है। तड़प रही है।"

निरुद्देश्य बनी शुभदा बच्चों के साथ आगे बढ़ गई। अब वह एक कमरे के द्वार पर पहुँची तो देखती है कि अंजना स्वयं उस बुढ़िया के सिर पर हाथ फेर रही है। उसकी कमर सहला रही है। उसे शान्त रहने के लिए कह रही है।

पास आते ही शुभदा ने पूछा, "इस माई को क्या रोग है ?"

अंजना ने कहा, "इसे मौत का रोग है। मौत आयेगी तो इस रोग से छूट जाएगी।" वह वृद्धा को छोड़कर खड़ी हो गई और बोली, "इस जीवन में पीड़ाओं के अतिरिक्त भला और क्या है ? सभी पीड़ित हैं, रोगी हैं। तुम रोगी हो तो मैं भी रोगी हूँ। इस संसार में सब रोग-ग्रस्त हैं।"

चकित होकर शुभदा उस ओर देखने लगी, वह जैसे अंजना की

बात का अर्थ नहीं समझ सकी ।

किन्तु अंजना ने फिर कहा, "शुभदादेवी, तुम भी एक रोग लेकर यहाँ आई हो—पति-वियोग का रोग ! और इस बुढ़िया ने भी जीवन में जो कुछ किया, उसका अब फल भोगती है। यह अपने यौवनकाल मे कितनी कुटिल और भयावनी रही, यह मैं सुन चुकी हूँ। आज पीड़ित बनी है, तो रोती है, चिल्लाती है। सच ही कहा है किसी ने, जवानी आँधी के समान आती है और निकल जाती है। जब बुढ़ापा आता है तो पीड़ा प्राप्त होती है। तब क्या जीवन की कहानी किसी को याद आती है ?"

जैसे निर्मम भाव से शुभदा ने कहा, "याद तो आती है।"

उदास भाव में अंजना बोली, "शायद आती हो।"

शुभदा ने कहा, "पर अंजना बहिन, तुम जानती हो कि यह बुढ़िया जवानी में अच्छी औरत नहीं रही, तो तुम फिर भी इसके साथ यह सद्-व्यवहार क्यों करती हो ? इसे क्यों मरने से बचाना चाहती हो ?"

अपने स्वर पर ज़ोर देकर अंजना ने कहा, "इस अस्पताल के मिशन का यही उद्देश्य है। और पापी को पापी समझना मेरा काम नहीं। मेरा काम सेवा करना है। इस बुढ़िया के लिए यदि मेरे प्राणों की भी आवश्यकता पड़े तो दिये जा सकते हैं। यही मेरी निष्ठा है।" यह कहते हुए अंजना दूसरे मरीज़ की ओर बढ़ गई। शुभदा भी उसके साथ चल पड़ी। उस कमरे में लगभग बीस चारपाइयाँ थीं कि जिन पर बीमार पड़े थे। उनमें कुछ जवान थे, कुछ बूढ़े थे। केवल वह वृद्धा ही उस कमरे में महिला के रूप में थी।

अंजना ने कहा, "यहाँ अधिक बीमार नहीं रह सकते। एक कमरा औरतों के लिए है, एक पुरुषों के लिए। हम लोगों को आस-पास के गाँवों में अधिक जाना पड़ता है।" वह उस कमरे से निकल स्त्रियों के वार्ड की तरफ चली। शुभदा और उसके बच्चे साथ थे। वहाँ जाकर दोनों एक-एक चारपाई के पास गईं। कुछ मरीज़ स्त्रियों को अंजना ने यह भी बताया कि ये डॉक्टर जयन्त की पत्नी हैं। आज ही आई हैं। उस कमरे से अंजना अभी बाहर नहीं हुई थी कि उसके द्वार के पास एक चारपाई पर पड़े बच्चे को लक्ष्य कर उसने शुभदा को बताया कि

देखो, इस बच्चे को भी नियति का अभिशाप मिला है। गाँव में बीमारी आई और इस बच्चे को अनाथ बना गई। माँ-बाप उस आँधी में उड़ गए। अब यह एकाकी है, बीमार है।"

एकाएक पीड़ित बनकर शुभदा ने कहा, "राम-राम।"

अंजना ने वह कमरा छोड़ दिया और फिर अपने कमरे की ओर पैर बढ़ाते हुए कहा, "इस धरती पर यही दिखता है। लोग जिसे सुख मानते हैं, मुझे तो उसके अन्तराल में हाहाकार सुनाई पड़ता है।"

सुनकर शुभदा चुप रही। कदाचित् उससे कुछ कहा नहीं गया।

इक्कीस

वह अजीब अवस्था थी कि शुभदा को अपने घर से दूर, उस पर्वतीय क्षेत्र में आये कई दिन बीत चुके थे परन्तु जयन्त के साथ उसका वार्तालाप नहीं हुआ। जयन्त भी इस बीच में अधिक व्यस्त रहा। अस्पताल से दूर भी रहा। किन्तु उस नये क्षेत्र में आकर शुभदा ने अस्पताल में कार्य करने वाले व्यक्तियों का कार्य-क्रम देखा तो उसने इस बात को मान लिया कि वह जीवन का अभूतपूर्व पथ है जो उसने पहले नहीं देख पाया था। वह देखती रहती कि अंजना और प्रोफेसर नित्य ही प्रातः चार बजे उठते और अपने नियमित कार्यों से छुट्टी पाकर रोगियों की परिचर्या में लग जाते। एक दिन संध्या के समय जब शुभदा अपने बच्चों के साथ खुले मैदान में बैठी हुई चन्द्रमा के प्रकाश में पर्वत की शोभा देख रही थी, तो तभी, अकस्मात् प्रोफेसर अतुल उस ओर आ गए। उन्हें देखते ही शुभदा उठ खड़ी हुई। किन्तु प्रोफेसर ने तुरन्त ही कहा, "बैठो-बैठो।" और वह स्वयं भी, समीप पड़ी पत्थर की शिला पर बैठ गये।

तभी प्रोफेसर ने कहा, "जयन्तबाबू आज भी नहीं आएँगे।"

एकाएक शुभदा ने कहा, "आज भी नहीं! बाहर गए हुए उन्हें दो

दिन तो हो गए।"

प्रोफेसर ने कहा, "हाँ, बेटी ! जयन्तबाबू को इस प्रकार एक-एक सप्ताह हो जाता है। यह पहाड़ी क्षेत्र उनका ऋणी बन गया है। पता है न, जिस गाँव में वह गये हैं, वहाँ कालरा फैला है। वहाँ कई वृद्ध और जवान मौत के मुँह में पड़े हैं। यदि मरीज़ मौत से लड़ता है तो डॉक्टर को भी उससे कम संघर्ष नहीं करना पड़ता।"

इतना सुनकर शुभदा ने गहरी साँस खींची और छोड़ दी। तभी उसने कहा, "मैं नौकरों पर घर छोड़ आई हूँ। दवाखाना भी नष्ट हो गया। जो काम इन्हें यहाँ करना है वह तो वहाँ भी था।"

सुनकर प्रोफेसर सहज भाव से मुस्कराया। उसने अपनी श्वेत दाढ़ी पर हाथ फेरा और सिर पर खड़े पर्वत की ओर देखते हुए कहा, "हाँ, काम तो वहाँ भी था। मरीज़ थे। जयन्तबाबू की वहाँ भी आवश्यकता थी।" यह कहते हुए उन्होंने शुभदा की ओर देखा। तभी धीर भाव में प्रोफेसर ने फिर कहा, "परन्तु बहू, वहाँ में और यहाँ में अन्तर है। वहाँ पैसा है, रोज़गार है। वहाँ का मरीज़ दूसरा डॉक्टर भी प्राप्त कर सकता है। लेकिन यहाँ कौन आयेगा ? यहाँ का इन्सान तो आधार-हीन है।"

शुभदा बोली, "प्रोफेसर साहब, भगवान यहाँ भी है। वह देखता है। रक्षा का हाथ बढ़ाता है।"

प्रोफेसर ने अपने श्वेत फेनिल सरीखे दाँतों से हँस दिया और कहा, "हाँ, यह भावना देर से परिचालित है, जो सत्य भी है। परन्तु मुझे तो लगता है, जब मनुष्य की दया यहाँ नहीं आ पाती, तो वह भगवान भी नहीं आ पाता। इस धरती पर बसा हुआ मनुष्य कितने खानों में बँटा है, शायद यह तुमने नहीं समझा। वर्ग-भेद और जाति-भेद पग-पग पर इस इन्सान का रास्ता रोकता है। तुम समझती हो कि दुःख, दारिद्रय भगवान देता है। मेरा तो खयाल है, मनुष्य ही मनुष्य के लिए त्रास का कारण बनता है। और जो दुर्भाव, पीड़ा और अभाव हम इस जगत् से पाते हैं उसका विकास-स्रोत और कहीं नहीं, हमारा मन ही है।"

शुभदा ने कहा, "कोई आधार तो हो या कोई कारण···।"

प्रोफेसर ने बीच में ही कहा, "बेटी, आधार हमारी दुर्बलता है,

अज्ञानता है ; और कुछ नहीं।" वह बोले, "मैं अनुभव करता हूँ कि तुम भी परेशान हो। भला यह तुम्हारी कैसी विवशता है कि सुन्दर, सुशिक्षित पति पाकर भी, धनी और मातृत्वमयी बनकर भी, तुम अभावभरी हो। तुम अशान्त बनी हो।"

शुभदा ने कहा, "मेरी मनःस्थिति कठोर बन गई है, प्रोफेसर साहब ! मैं हीन हूँ। कायर बन चुकी हूँ।"

प्रोफेसर ने मृदु स्वर में कहा, "पर ऐसा क्यों है ?"

शुभदा ने कहा, "मेरी यही कठिनाई है कि मैं नारी हूँ।"

प्रोफेसर बोला, "नहीं, तुम्हारी कठिनाई यह है कि तुम कमज़ोर हो, कुछ ईर्ष्यालु हो। शायद दम्भी भी !" प्रोफेसर ने कहा, "शुभदा बेटी, यह तो सत्य है कि मैं नारी का विज्ञान ठीक से नहीं समझता, लेकिन इतना मैं भी मानता हूँ कि यदि कोई नारी या पुरुष अपने कर्तव्य को छोड़ केवल अधिकार की बात ले तो वह शान्त नहीं रहेगा। उसके पास जो आत्मानुभूति है उसे न स्वयं पा सकेगा न दूसरे को दे सकेगा। इसी से कहता हूँ कि तुम मत भटको ; अपना पथ प्रशस्त करो ; जीवन का लक्ष्य निर्धारित करो। और इतना समझने के लिए न ऊँची जाति की आवश्यकता है, न ऊँचे ज्ञान की। केवल चाहिए मन की भावना। और वह तुम्हारे पास है। तुम्हारे इस सुन्दर शरीर में वह बोलती है। बाहर निकलने के लिए छटपटाती है। किन्तु कठिनाई यह है कि तुम्हारे मन में जो ज़हरीला धुआँ घुट रहा है वह चारों ओर फैल गया है। उसमें कुछ दिखाई नहीं देता। तुम्हारा प्राण छटपटा रहा है।" यह कहते हुए प्रोफेसर ने साँस भरी और फिर कहा, "जयन्तबाबू मेरे शिष्य रहे हैं। वे मुझसे कुछ नहीं छिपाते। उन्होंने मुझे एक दिन बताया था कि उनके मन में ग्लानि है, पश्चात्ताप का धुआँ घुट रहा है कि उन्होंने तुम पर पिस्तौल चलाई।"

इतनी देर में शुभदा की आँखों में आँसू आ गये। वे उसके गालों पर बह गये। पास ही दोनों बच्चे बैठे थे। वे शान्त थे। बातें सुन रहे थे। जब प्रोफेसर ने पिस्तौल की बात उठाई, तो तभी, तड़पकर शुभदा ने कहा, "वे पुरुष हैं, वे बलवान हैं, मुझे मार सकते हैं।"

प्रोफेसर ने अपने स्वर पर ज़ोर देकर कहा, "नहीं, नहीं, जयन्तबाबू

अत्यन्त दुर्बल हैं। वे अपने मन में भरे पश्चात्ताप को लिए प्रायः रोते हैं। देखती हो न, जयन्तजी आज किस तरह परिश्रमी बन गये हैं। कैसा जीवन बना बैठे हैं, इस अल्पकाल में! उनकी सेवा, उनका त्याग और परिश्रम इस क्षेत्र के लिए चिरस्मरणीय बन गया है।''

किन्तु लगता यह था कि उस संध्या के सुहावने प्रहर में चन्द्रमा के प्रकाश में बैठी हुई प्रकृति के विराटरूप के समक्ष नत हुई वह सुन्दर शुभदा अपने हृदय पर छाये काले धुएँ में ऐसे खो गई थी कि जैसे सचमुच ही उस धरती पर उसका कोई अस्तित्व नहीं रह गया हो। प्रोफेसर अतुल जिस सद्भावना, अपनेपन और नेहभरे स्वर में अपनी बात कह रहा था शुभदा पर उसका विपरीत प्रभाव पड़ा। उसे प्रोफेसर की बात से किसी भी प्रेरणा का आभास नहीं मिला।

लेकिन प्रोफेसर ने तभी फिर कहा, ''शुभदाजी, मैं देखता हूँ कि तुम अब केवल माँ हो। तुम्हारा वह समय पीछे छूट गया कि जब तुम किसी पुरुष की अनुभूति और नेहभरी आकांक्षा से अनुप्राणित होती थी। अब तो तुम्हारे मानस में केवल मातृत्व भरा है। एक दिन मेरे भी बच्चे थे, पत्नी थी। पर आज वे सब नहीं रहे। किन्तु देखती हो, नियति का कैसा व्यापार है कि मैं अपने में कोई अभाव नहीं मानता। मैं उस नारी या नर के किसी प्राणी का जनक नहीं देखता कि जो उन्हें पैदा करने का दम्भ करता हो। मैं तो उस व्यक्ति को ही निर्माता मानता हूँ जो उस मांस के लोथड़े को भावना और कला के साँचे में ढालता है। मैं तुमसे आज इस प्रकृति के समक्ष बैठकर कहता हूँ कि इस जयन्त के मानस में व्याप्त भावना को जगाने के लिए मैंने कम परिश्रम नहीं किया। और देखती हो, इस अंजना को, क्या थी यह एक दिन; एक निर्धन और क्षुद्र परिवार की बालिका थी। परन्तु जयन्तबाबू ने इस अंजना के हृदय में जिस प्रकाशमयी जोत को जगाया है वह सचमुच अलौकिक है, दर्शनीय है। यह अंजना आज यौवन की भरी दोपहरी में योग और सेवा का व्रत ले बैठी है। तनिक सोचो तो, यह क्या है? आज अंजना समर्थ है। वह कैप्टेन रमाकान्त अपनी जितनी सम्पत्ति छोड़ गया था वह इसके लिए पर्याप्त थी। उसे भोग सकती थी। परन्तु इस भावनामयी और यौवनमयी अंजना ने उस धन का अपने लिए उपयोग नहीं किया। उसी का प्रतीक

यह अस्पताल है। देखती हो, वह दूर खड़ी कैप्टेन रमाकान्त की मूर्ति ! अंजना उसकी पूजा करती है। जिसे जीते जी अपना मनुहार समर्पित नहीं किया, तो उसकी मृत्यु के बाद अपना सर्वस्व दे बैठी है।"

शुभदा ने क्षुब्ध भाव से कहा, "प्रोफेसरजी, आप जिस पथ की कल्पना करते हैं वह सबके लिए नहीं।"

"ओह, निरी भोली बच्ची। मैं कल्पना ही नहीं करता, उसे साकार देखना चाहता हूँ। मैं इस जीवन में सच्चे इन्सानों का निर्माण करना पसन्द करता हूँ।"

उदास भाव से शुभदा बोली, "आपका यह स्वप्न भावनावादी है, यथार्थवादी नहीं। इस धरती पर सभी योगी नहीं बन सकते।"

इतना सुनना था कि प्रोफेसर ने विस्फारित बनकर सामने बैठी शुभदा की ओर देखा। आसमान पर चाँद चमक रहा था। उसका चारों ओर प्रकाश था। शुभदा उस चाँदनी में शुभ्र और मोहक लग रही थी। परन्तु उसकी ओर देखते हुए प्रोफेसर को आभास हुआ कि इस गुलाब रूपी शुभदा में काँटा भी है; इस सुन्दर काया के अन्दर अँधेरा है; अमृत-घट के समीप ही विष का भरा कुण्ड है।" इन्हीं विचारों में डूबा हुआ प्रोफेसर गुमसुम बैठा रहा !

तभी शुभदा की लड़की सुधा ने कहा, "अन्दर चलो, माँ !"

लेकिन शुभदा के कानों में बच्ची की बात नहीं रेंगी। वह विचारों में खोई थी। उसके मन में तो उस समय हाहाकार था जो उस शुभदा का मन्थन कर रहा था। अतएव, उसकी यह अवस्था देख प्रोफेसर ने भी समझ लिया कि ज़रूर यह शुभदा अशान्त है, निर्मम है और कठोर है। यह देखते ही उसने कहा, "शुभदादेवी, नारी का विज्ञान है कि यह सदा से समर्पण का पाठ पढ़ती आई है। विसर्जन करना ही इस नारी का स्वभाव है। एक नारी अनेक में बँट जाती है। अपने मानस का कुछ प्यार पति को देती है और फिर जो शेष रहता है वह सन्तानों के ऊपर समर्पित कर देती है। बोलो तो, तुमने क्या दिया। तुम्हारे पति ने तुमसे क्या लिया ? क्या भोग···वासना ! री, शुभदा, जीवन का यह भैरवराग तो देर से गूँजता रहा है। इस राग के प्रभाव में जहाँ पुरुष अपने मार्ग से दूर हटा है वहाँ नारी भी ठगी गई है। मैं कहता हूँ कि तुम अपने पति और बच्चों

को वह सब कुछ दो जो एक विशिष्ट नारी को देना चाहिए।"

एकाएक जैसे चीखकर शुभदा ने कहा, "मैं अग्निदाह में तप रही हूँ, प्रोफेसर साहब! आप कल्पना नहीं कर सकते कि मैं कितनी अशान्त हूँ।"

प्रोफेसर ने कहा, "हाँ, हाँ, मैं पूर्णरूप से नहीं समझ सकता। किन्तु कल्पना करता हूँ कि तुम···"

शुभदा ने जैसे तड़पकर, रोते हुए कहा, "मैं भी नारी हूँ। हाड़-मांस से बनी हूँ। मैं पत्थर नहीं हूँ। आपके शिष्य क्यों यहाँ आकर बसे हैं, मैं सहज ही उसकी कल्पना कर सकती हूँ।"

तुरन्त प्रोफेसर ने प्रश्न किया, "भला क्यों?"

शुभदा ने तड़पकर क्षुब्ध भाव से कहा, "क्यों क्या, वह इस अंजना के कारण आये हैं। मैं इतना तो देव-स्थान में जाकर भी कह सकती हूँ।"

प्रोफेसर अतुल इतनी बात सुनते ही सहम गये। वह जैसे उस पथरीली शिला पर पहले के समान बोझीले न बन, पत्ते के समान हल्के हो गये। शुभदा की बात सुनकर वह कातर और पीड़ित भाव से उसकी ओर देखने लगे।

तभी शुभदा ने फिर कहा, "मैं पूरे विश्वास के साथ कह सकती हूँ कि आपके शिष्य डॉक्टरसाहब विवाह करके भी इस चमार की लड़की अंजना को नहीं भूल सके। देखती हूँ कि आज वह अंजना समर्थ है, विशिष्ट है, तो स्वभावतः ही उसके प्रति उनका आकर्षण और बढ़ा है।"

एकाएक काँपते स्वर में प्रोफेसर अतुल चीख पड़े, "शुभदा···मूर्ख!"

लेकिन शुभदा ने जैसे पूर्णरूप से तत्पर बनकर फिर कहा, "मैं समझती हूँ कि आपके योग्य शिष्य को आपका भी प्रोत्साहन मिला है।"

सचमुच प्रोफेसर काँप रहा था। क्रोध उसकी छाती से सरककर आँखों में उतर आया था। प्रोफेसर के समीप ही पत्थर का टुकड़ा पड़ा था। उसके मन में आया कि उसे उठा ले और सामने बैठी अप्सरा के तुल्य लगती शुभदा के मुँह पर खेंच मारे। किन्तु ऐसा करना तो उसके लिए विवेकहीन था। वह इतना मूर्ख नहीं था।

तभी शुभदा बोली, "प्रोफेसर साहब, आप मेरे पिता समान हैं।

आपका ज्ञान और अनुभव बड़ा है। परन्तु आप खुद ही सोचिये कि मैं अपने पति को खोकर क्या चैन पा सकती हूँ? आज मेरे बच्चे अनाथ हैं। मेरा घर बिगड़ गया है। मेरे घर में जो प्रतिदिन की आय होती थी वह नष्ट हो चुकी है। उस गाँव के समाज में मेरा जो सम्मान था वह धूल में मिल चुका है। मैं सभी की दृष्टि में उपेक्षा की पात्र हूँ। अब सभी कहने लगे हैं, गाँव के नर-नारी मेरे मुँह पर सुनाकर बताने लगे हैं कि आखिर अंजना की जीत हुई, मेरी हार···और आप तो जानते ही हैं कि मैंने कोई पाप नहीं किया, दुराचार नहीं किया। मैं एक पति की पत्नी हूँ। उसीसे अपना अधिकार माँगने आई हूँ। मुझे यहाँ आये चार दिन हो गए हैं, किन्तु उन्होंने न तो मुझसे बोलने की इच्छा की और न ही बच्चों को दुलारने की। बताइये, क्या मैं पत्थर हूँ? आपको मेरी बात असंगत तो लगेगी, परन्तु कहे देती हूँ कि ऐसे तिरस्कृत जीवन से तो मैं मौत श्रेयस्कर मानती हूँ। अब मैं वही पाना चाहती हूँ।"

यह सुनते ही प्रोफेसर खड़ा हो गया। उसने हाथों की मुट्ठियाँ बाँध लीं और घूमने लगा। उस समय सर्दी बढ़ चली थी। फिर वह धीरे-धीरे अपने शयन-कक्ष की ओर बढ़ गया। उसके पीछे ही शुभदा ने बच्चों को साथ लिया और कमरे में चली गई।

बाईस

उस रात प्रोफेसर अतुल की मानसिक स्थिति जितनी भयावह और करुण दिखाई दी उतनी कभी देखने को नहीं मिली थी। आधी रात से पूर्व ही अंजना और जयन्त अस्पताल में लौट आये थे। जयन्त कई दिन का थका था। रातों-रात जागा भी था। अतएव, अपने डेरे पर आकर कटी डाल की तरह वह पड़ गया और सो गया। परन्तु अंजना जब अपने कमरे में पहुँची तो वह यह देखकर चकित हुई कि शुभदा उस रात के भरे प्रहर में भी जाग रही है। वह अपने बिस्तर पर बैठी हाथ की हथेली

पर ठोढ़ी रखे थी और सामने जलते हुए दीपक की ओर एकटक निहार रही थी। वहाँ पहुँचते ही अंजना ने उसे टँकोरा तो वह चौंक गई, जैसे पहाड़ से नीचे गिर गई हो।

यह देख सहज भाव से मुस्कराकर अंजना बोली, "क्यों शुभदाज़ी, तुम्हारे मन में कोई गहरी बात है? रात तो अधिक हो गई है, लेकिन आप अभी सोई नहीं!"

इतनी बात सुनकर भी शुभदा मौन बनी रही। उसने साँस भरी और अपना मुँह अंजना की ओर उठा दिया। उसने देखा कि वह अंजना साधुनी का वेश धारण किये कितनी अलौकिक है। अब जाने कितनी दूर से आई है, फिर भी चेहरा चमक रहा है। यौवन का तेज छलक रहा है। तभी उसके मन में बात आई कि एक वह है जो यौवन की भरी दोपहरी में ही मुरझा गई। बुढ़िया हो गई। भला ऐसा क्यों?

शुभदा कुछ कहती कि तभी अंजना ने बताया, "जयन्तबाबू भी आ गए हैं। अपने कमरे में गये हैं।" वह बोली, "इस बार जयन्तजी ने बड़ा परिश्रम किया है। मौत से भी भयभीत नहीं हुए। गाँव के कई व्यक्तियों को मौत के मुँह से निकालकर सच्ची मानवीयता का परिचय दिया। मैं कल उन्हीं के साथ गई थी। मैं सोचती थी कि तुम आई हो, तो जाने क्या कहोगी कि मैं आई और मेरा पति बाहर भेज दिया गया। खैर अब तुम आई हो तो उन्हें वापिस ले जाना। जयन्तबाबू के जाने से अस्पताल का काम तो बिगड़ेगा, लोगों का एक बड़ा सहारा छूटेगा, पर किया क्या जाए। उन पर अधिकार तुम्हारा है, वे तुम्हारे हैं। तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध चलकर क्या वह अपने संकल्प में पूरे उतर सकते हैं, कभी नहीं!"

उसी समय अस्पताल का कर्मचारी दौड़ा हुआ आया और अंजना से बोला, "प्रोफेसर साहब की हालत खराब है। उनकी छाती में दर्द उठ रहा है। चलिए, शीघ्र चलिए!"

सुनते ही अंजना चीख पड़ी, "प्रोफेसर साहब···" तुरन्त प्रोफेसर के कमरे में पहुँची, तो देखती है कि जयन्त ने प्रोफेसर को एक इंजेक्शन लगाया है। अंजना को देखते ही उसने कहा, "इनके दिल में दर्द हुआ है। चिन्ता की बात नहीं।"

अंजना ने कहा, "यह तो चिन्ता की बात है। इनका नया रोग है।"

लेकिन जयन्त ने कोई उत्तर नहीं दिया।

उसी समय प्रोफेसर ने आँखें खोलीं, सभी की ओर देखा। अंजना के पीछे शुभदा खड़ी थी, वह उसी को लक्ष्य करके बोले, "आओ बेटी! बैठो।"

शुभदा पास आ गई और बैठ गई। उसने पूछा, "आपको क्या हुआ?"

प्रोफेसर ने धीरे से कहा, "कुछ नहीं। दिल घबड़ाया था। मैं आज अनजाने ही पीड़ित बन गया था। तुम अभी सोई नहीं?"

अंजना ने कहा, "मैं जब आई थी तो ये जाग रही थीं।"

उसी समय प्रोफेसर ने जयन्त की ओर देखा। उसका हाथ पकड़ लिया और कहा, "जयन्तजी, एक बात कहनी है। अवसर की बात है कि तुम सभी यहाँ हो। सुख का विषय है कि मेरे प्रति तुम लोग अनुराग रखते हो। सो भाई, अच्छा यह है कि तुम अपने गाँव लौट जाओ। सेवा का क्षेत्र वहाँ भी है। समझते हो न, यह शुभदादेवी तुम्हें लेने आई हैं। इनका तुम पर अधिकार है।"

जयन्त ने कहा, "यह बताइये कि इस समय आपकी तबीयत कैसी है? यह एक गोली भी ले लीजिए।"

प्रोफेसर ने कहा, "भैया, मैं अब बूढ़ा हूँ। कभी भी जा सकता हूँ। मुझे इसकी चिन्ता नहीं कि कैसे मरूँगा।"

जयन्त ने कहा, "मरने की चिन्ता करना व्यर्थ है।"

प्रोफेसर ने कहा, "लेकिन मनुष्य इसी भय से उत्पीड़ित रहता है। वैसे तो मनुष्य एक दिन में जाने कितने बार मरता है।" वह बोले, "अब तुम सभी सो जाओ। आराम करो। शुभदा बेटी, तुम भी!"

शुभदा ने कहा, "ये लोग जा सकते हैं। थके हैं। मैं बैठती हूँ!"

तब जयन्त और अंजना चले गए। जब शुभदा उस कमरे में अकेली रह गई तो प्रोफेसर ने तकिये के नीचे से निकालकर उसके हाथ पर बटुआ रखा और कहा, "इस अस्पताल का जमादार ईमानदार है। यह बटुआ तुम्हारे कमरे के सामने पड़ा था। उसे मिल गया। देख लो, इसमें रखे रुपये पूरे तो हैं?"

शुभदा ने बटुआ देखा, तो ले लिया।

किन्तु प्रोफेसर ने तभी एक पुड़िया दिखाते हुए कहा, "और यह पुड़िया भी इस बटुए में थी। भाग्य से मैं डाक्टरी पढ़ा हूँ तो सहज ही समझ सकता हूँ कि इस पुड़िया में क्या है। बोलो, तुम्हारे मन में क्या आया था। क्या अपने पति को यह ज़हर देना चाहती हो, या अंजना को, या स्वयं अपने को ··?"

एकाएक शुभदा चीख पड़ी, "प्रोफेसर साहब···"

प्रोफेसर ने कहा, "चिन्ता न करो, शान्त बनो। मैं तुम्हारे मन की स्थिति समझता हूँ। लेकिन तुम इतनी कातर, भयावह और कठोर बन सकती हो, मैं इसकी कल्पना नहीं कर सकता था। एक सुन्दर नारी ऐसा दुस्साहस कर सकती है, मैं सोच भी नहीं सकता। बोलो, यह विचार कैसे आया, तुम्हारे मन में ?"

शुभदा ने कहा, "प्रोफेसरजी, मैं मरना चाहती हूँ।"

प्रोफेसर ने कहा, "देखो, मेरे दिल को पीड़ा मिली है। अभी कुछ क्षण पूर्व मौत मेरे जीवन का द्वार खटखटाकर लौट गई है। पर यह बताता हूँ कि इस ज़हर की पुड़िया ने मुझे सब कुछ बता दिया है कि तुम्हारे मन में क्या है।"

शुभदा का सिर प्रोफेसर के पैरों पर गिर पड़ा। उसने रोना आरम्भ कर दिया।

यह देख, तत्क्षण ही, प्रोफेसर उठ खड़ा हुआ और शुभदा के सिर पर हाथ रखकर उसे सहलाता हुआ बोला, "तुम सरीखी कोमल और मनोरम मेरी बिटिया भी थी। सच, तुम वहीं हो। मेरी रमा की आत्मा तुममें है। मैं तो तुम्हारे पिता की आयु से भी बड़ा हूँ। इसलिए मुझसे दुराव क्यों ! मुझे लगता है कि भगवान तुम्हारा सहायक है। तुम अपने जीवन में एक भयानक अपराध करने जा रही थीं, पर उस प्रभु ने रोक दिया। इन दोनों में से यदि एक भी तुम्हारे द्वारा मारा जाता तो निःसन्देह, तुम्हारा जीवन नष्ट हो जाता। भले ही कानून की तलवार तुम्हारी गर्दन पर न पड़ती, परन्तु जो भगवान तुम्हारे मन में बैठा है वह नित्य-प्रति धिक्कारता, तुम्हारे जीवन का प्राण तोड़ता।"

"मैं क्षमा माँगती हूँ, प्रोफेसर साहब ! अपना अपराध स्वीकार करती हूँ।" अपनी वे पीड़ित और कातर आँखें ऊपर उठाते हुए शुभदा ने कहा।

किन्तु प्रोफेसर ने उन्हीं आँखों को देखते हुए नितान्त सदय भाव से कहा, "न बेटी ! चिन्ता न करो। भूचाल उतर गया। तुम्हारे मन में जो कुछ आया, वह भी स्वाभाविक था। ईश्वर की कृपा है कि मैं भी बच गया। तुम्हारे पति ने बचा दिया। जयन्त योग्य और अनुभवी है। कुछ चुनी हुई दवाएँ रखता है। वह डॉक्टर बनकर ही जन-सेवा का व्रत पूरा करता है।"

शुभदा ने कहा, "प्रोफेसर साहब, मैं अब उनसे कुछ नहीं कहूँगी, उन्हें बाँधकर नहीं रखूँगी। आज रात मैंने यही निश्चय किया है।"

इतना सुनकर भी प्रोफेसर के मुँह पर प्रसन्नता नहीं आई। वह मौन बना रहा।

शुभदा ने कहा, "मैं सोचती थी कि जल्दी यहाँ से लौट जाऊँगी। परन्तु अब तो मन में आता है कि मैं भी कुछ करूँ। जन-सेवा में लग जाऊँ।"

किन्तु प्रोफेसर तो गम्भीर बना था। उसके माथे में सलवटें पड़ी थीं। दुर्बल और पतले होंठ भी सूखे थे। वे बार-बार हिल रहे थे।

शुभदा बोली, "संध्या समय आपको जो कुछ कहा उसका भी मुझे दुःख है।"

प्रोफेसर ने कहा, "अब मुझे कुछ याद नहीं। जाओ, तुम आराम करो। तुम स्वयं निर्णय करो कि तुम्हारा उचित कर्म क्या है।"

शुभदा खड़ी हो गई और अपने कमरे की ओर चल पड़ी। किन्तु जब वह अपने कमरे के समीप पहुँची तो उसके मन की ऐसी स्थिति बनी कि जैसे अपराधिनी के रूप में अब उस अंजना के समक्ष जाएगी। अतएव, उसके पैर लड़खड़ाए, मन में भय पैदा हुआ। श्वास भी अवरुद्ध हुआ। आँखों के आगे अँधेरा हो गया। अपने मन की इस अवस्था को लिए जब वह कमरे में प्रविष्ट हुई तो देखती है कि अंजना उसके बिस्तर पर बैठी है और उसकी लड़की के भूरे और मुलायम बालों पर हाथ फेर रही है।

देखते ही अंजना बोली, "मुन्नी जाग पड़ी थी। अभी-अभी सोयी है।"

शुभदा ने कहा, "तुम्हें कष्ट हुआ। इतना समय भी जागने में कट गया।"

अंजना अपने बिस्तर पर जा बैठी, फिर पड़ गई। तभी वह बोली, "जाने कितनी रातें मैंने खड़े पलकों पर बिता दी हैं। अब मेरा ऐसा ही स्वभाव बन गया है।" उसने कहा, "तुम्हें पता नहीं इन चार दिन की रातों में जयन्तबाबू को भी आराम नहीं मिला।" यह कहते हुए अंजना ने अपने ऊपर चादर डाल ली और सोने का प्रयत्न करने लगी।

किन्तु अपने बिस्तर पर पड़ी हुई शुभदा जाग रही थी। उसकी आँखों में नींद नहीं थी। जब वह देर तक बिस्तर पर पड़ी रही तो बलात् उठ बठी और चादर ओढ़कर कमरे के बाहर चल पड़ी। रात में वह जिस पत्थर पर जाकर बैठी थी उसी पर गई। उस समय आकाश में चन्द्रमा नहीं था। वह पहाड़ की ओट में हो चुका था। इसलिए चारों ओर अँधेरा था। किन्तु प्रातः की अरुणिमा पूरब की ओर से उभर आई थी। दूर पर प्रवाहित नदी या झरने के पास चकवा-चकवी बोल रहे थे। उस समय शान्त और सुहावना मौसम था। ठण्डी और भीनी-भीनी हवा चल रही थी। यद्यपि शुभदा ने गरम दुशाला ओढ़ रखा था, परन्तु उसे ठण्ड लग रही थी। वह ठण्ड बाहर की भले ही न हो, अन्दर की अवश्य थी। फलस्वरूप, शुभदा के मन में कम्पन था। प्रोफेसर अतुल ने उसके बटुवे से जिस पुड़िया को निकालकर देख लिया, मानो वही शुभदा के मन का चोर था। उस चतुर प्रोफेसर ने सहज ही इस बात को समझ लिया कि उप पुड़िया में रखे जहर का उपयोग किसी-न-किसी पर अवश्य होता···शायद अंजना पर··

किन्तु अजीब बात थी कि उस ठण्डी हवा के चलने से छाती के नीचे कम्पन की हिलोरें आने के बाद भी शुभदा के माथे पर पसीना था। उसका सिर घूम रहा था। उस अवस्था में ही उसने होंठ फड़फड़ाये और अपने-आप कहा, तो इसमें झूठ ही क्या था। मैं इस अंजना को विषबेल समझ बैठी थी, इसे जड़ से उखाड़ना था।

"शुभदाजी !" एकाएक प्रोफेसर का स्वर सुन पड़ा। शुभदा ने पीछे फिरकर देखा कि वह वृद्ध तथा संन्यासी के समान लगता हुआ प्रोफेसर उसके पीछे आकर खड़ा है। वह मुस्करा रहा है।

प्रोफेसर ने कहा, "लगता है, रात तुम्हें नींद नहीं आई। मन की बात मन में ही रही, जो तुम्हें परेशान करती रही !"

शुभदा उठ खड़ी हुई। उसने सिर झुका लिया, कुछ बोल नहीं !"

प्रोफेसर ने कहा, "आओ, कुछ आगे चलें। चल सकोगी न, उस नदी तक ?"

शुभदा ने कहा, "चलिये।"

प्रोफेसर के हाथ में डण्डा था। उसका वह समय घूमने का था। जब वह शुभदा को साथ लेकर आगे बढ़ा तो बोला, "कैसे संयोग की बात है कि अन्य दिन जयन्तबाबू साथ होते थे आज तुम हो। यह भी शुभ बात है। निश्चय ही रात तुम्हें नींद नहीं आई। मुझे यह देखकर सुख मिला कि तुमने अपनी भूल को स्वीकार कर लिया। और बेटी, भूल करना इन्सान का ही काम है। वह आदमी अन्धा और मूर्ख है कि जो रातभर अपने कर्म को अकर्म समझकर भी सचेत न हो जाये। इस रात जगने का अर्थ ही यह है कि तुमने अपने को सचेत कर लिया है। तुमने यह समझने का प्रयत्न किया होगा कि अब तुम्हारा कर्तव्य क्या है। देखो, बचकर चलना। नीचे खाई गहरी है। पथ अँधियारा है। इस सँकरी पगडण्डी पर चलता हुआ अभी कुछ दिन हुए एक मुसाफिर इस खड्ड में गिर पड़ा था। और जानती हो, वह मुसाफिर कौन था ? प्रसिद्ध चोर ! खूनी। उस दिन भी वह कहीं से चोरी और खून करके बहुत-सा माल ले आया था। देखो, कैसी विवशता है इस इन्सान की कि कानून और समाज से बचकर भी मनुष्य भगवान के नियन्त्रण से नहीं छूट पाता। यही सबकी बात है। मेरी और तुम्हारी बात है। आओ, इस रास्ते से चलो। वह सामने नदी है। इस नदी का पानी भी बड़ा निर्मल है। जाने हिमालय पर्वत की किस ओट से निकलकर इस नदी में जल आता है। यह नदी जाने कितने मानवों का उद्धार करती है, नया जीवन प्रदान करती है। पर एक मनुष्य है, हम-तुम हैं, ऐसे अनेक हैं कि जो जीवन के निपट अन्धकार में पड़े नित-नित खोते जा रहे हैं, भटके पथिक के समान अन्धकार में ही विलीन होते जा रहे हैं, हम लोग।"

वे दोनों नदी-तट पर पहुँच गए। आकाश निखर आया था। पक्षी उड़ने और चहचहाने लगे थे। कुछ पक्षी उस नदी के जल में डुबकियाँ लगाकर परस्पर किलोल करने लगे थे। उसी निर्मल जल की अंजलि भर-कर, पीते हुए और मुँह तथा आँखें धोते हुए शुभदा ने कहा, "बड़ा ठण्डा

अंजना एकदम बर्फ के समान है।"

प्रोफेसर मुस्कराया, "यही इसकी विशेषता है।"

शुभदा ने फिर कहा, "प्रोफेसर साहब, पर यह आदमी गरम है, ईर्षित है, आग का अंगारा है।"

सुनकर प्रोफेसर गम्भीर बन गया और बोला, "हाँ, यही इन्सान की हीनता है।"

"परन्तु क्यों ? किसलिए ?" एकाएक शुभदा ने प्रश्न किया।

प्रोफेसर ने सीधे-स्वभाव से कह दिया, "अपने से पूछो। तुम भी तो आग हो, जलना और जलाना जानती हो।"

तेईस

प्रोफेसर से वह अप्रत्याशित बात सुनी, तो शुभदा का चेहरा लाल हो गया। उसकी आँखें चढ़ गईं, मुँह सुर्ख हो गया। उससे एकाएक कुछ कहते नहीं बना। उसने नितान्त कातर भाव में, अपने मुँह में आया थूक सटक लिया। उस अवस्था में ही, शुभदा ने तेज़ धारवाली नदी पर अपनी आँखों को पसार दिया।

किन्तु प्रोफेसर ने फिर कहा, "बिटिया, झूठ नहीं कहता, नारी भी आग है; ईर्ष्या का भण्डार है। मैं रात देर तक इसी बात पर टिका रहा। मैं सोचता रहा कि भगवान ने तुम्हारे ऊपर बड़ी कृपा की। तुम जीवन में एक भयानक पाप करने चली थी लेकिन भगवान के आदेश पर तुम्हारी वह इच्छा व्यर्थ गई। इस धरती के दो सुन्दर प्राणी बच गये। उनसे समाज को जो कुछ मिलता था अब भी मिलता रहेगा। बोलो तो तुम्हारी उस ईर्ष्यामयी आग में क्या अंजना न जलती ?···वह जयन्त नहीं ?···"

एकाएक चीखकर शुभदा ने कहा, "प्रोफेसर साहब, मैं अपराधिनी हूँ। कहें तो इस नदी में डूब जाऊँ। जो बात आपने रात में कही, वह

अब भी···ओह ! कितनी निर्मम और कठोर प्रतारणा है, आपकी !"

प्रोफेसर सूखे भाव से मुस्कराया, "बेटी, मैं जानता हूँ, तुम मरना नहीं चाहती, अभी तुम्हें जो कुछ भोगना है वह तो भोगना ही पड़ेगा। इस प्रभात की बेला में, रात की बात फिर कहने का मेरा मन्तव्य यह है कि तुम्हारे मन की ग्लानि धुल जाए। तुम अपने हृदय की बात कहो कि तुम्हारी क्या आकांक्षा है। बोलो, जयन्त···क्या अंजना की मौत···।"

मानो तड़पकर शुभदा ने कहा, "प्रोफेसरजी, मैं कुछ नहीं चाहती··· सच, अब कुछ नहीं।"

किन्तु प्रोफेसर ने तब भी कहा, "नहीं, तुम्हारे मन में कुछ है। अपने अधिकार की बात है। यह दुनिया अपना अधिकार पाने के लिए सभी-कुछ करती है। और मुझे पता है, जहाँ तरल है, वहाँ वज्र के समान कठोर भी है।"

शुभदा से साँस भरकर कहा, "अब मैं शान्ति चाहती हूँ। मर जाना भी पसन्द करती हूँ।"

"ओह, नादान औरत ! तू इस सुन्दर काया को मिट्टी में मिला देने की बात करती है !" प्रोफेसर ने क्षुब्ध भाव में कहा, "कभी सोचा, इस काया को सँजोने के लिए तुम्हारे माँ-बाप ने कितना कष्ट उठाया होगा ! भगवान ने किस ममता से इस सुन्दर ढाँचे का निर्माण किया होगा। जब जीवन तुम्हारा नहीं तो मौत भी तुम्हारी नहीं।"

शुभदा ने कहा, "तो मैं क्या करूँ। मैं परेशान हूँ। सचमुच, मैं अपने मन की आग में ही जल जाना चाहती हूँ।"

बात सुनी तो प्रोफेसर इच्छा करके भी हँस न सका, अपितु नदी की गहराई में आँख गड़ाकर उसने कहा, "मैं कहता था न, तुम्हारे मानस में शीतलता नहीं, आग भरी है। वह तुम्हें झुलसा रही है। वह आग किसी दूसरे को भी अपनी लपटों में समेट लेने के लिए नागिन की तरह जीभ लपलपा रही है।"

शुभदा देर से खड़ी थी। वह थक गई। पास के पत्थर पर बैठकर नदी के पानी में हाथ देती हुई उसे खलबलाने लगी।

प्रोफेसर ने कहा, "शुभदारानी, तुम्हें उदार बनना चाहिए। तुम्हारा पति यदि किसी दूसरी नारी के सम्पर्क में पहुँचता है, तो जाने दो। तुम

अपना मार्ग देखो। यद्यपि तुम्हारी जो शंका है, वह निर्मूल है, लेकिन यदि ऐसा हो तो तुम्हें आपत्ति क्यों! दो हृदय यदि अपनी भावना एक-दूसरे के समक्ष रखना पसन्द करते हैं, तो तुम्हें उससे विराग क्यों? ईर्ष्या क्यों!"

शुभदा ने कहा, "मैं आपत्ति नहीं करती। क्षोभ या ईष्या भी नहीं।"

प्रोफेसर ने कहा, "करती तो हो, परन्तु करनी नहीं चाहिए। तुम्हें देखना चाहिए कि यह विश्व आत्म-समर्पण की एक कहानी है। चिर-पुरातन से यही चला आया है। बोलो तो, जिस समाज में तुम पैदा हुई उसे अब तक क्या दिया? शायद कुछ नहीं। और जानती हो, लो और दो के व्यापार पर ही यह संसार टिका है। तुमने पत्नीत्व और मातृत्व पाया है तो इसके प्रतिरूप में दिया कुछ नहीं।"

शुभदा ने अपना सिर घुटनों पर रख लिया और कहा, "मैं क्या करूँ, प्रोफेसर साहब! मैं असहाय हूँ, दुःखी हूँ।"

प्रोफेसर आगे बढ़ा और शुभदा के झुके हुए सिर पर हाथ रखकर बोला, "शुभदारानी, यह दुःख तुम्हारे मन से पैदा हुआ है। तुम भी वही रास्ता अपनाओ कि जो तुम्हारे पति और अंजना ने स्वीकार किया है। वह सेवा का मार्ग सरल है, निस्पृह है, मानवता का प्रतीक।"

शुभदा ने कहा, "तो मुझे भी उस मार्ग पर ले चलिए, मेरे मन में भी वह प्रकाश फैला दीजिए।"

प्रोफेसर ने कहा, "तुम्हारे लिए अंजना अधिक सहायक बनेगी। वह उदार है। उसकी आत्मा कोमल है, प्रकाशमान है।"

उसी समय प्रोफेसर ने देखा कि अंजना और जयन्त उसी ओर बढ़े आ रहे हैं। वे दोनों शुभदा के बच्चों को भी गोद में उठाये ला रहे हैं। वे पास आ गये।

अंजना ने कहा, "मैं समझती थी कि आप यहीं होंगे।" उसने बैठी हुई शुभदा की ओर देखकर कहा, "और तुम शुभदाजी, बच्चों को सोता छोड़ आईं। ये उठे और माँ-माँ करके रोने लगे।"

हँसकर प्रोफेसर ने कहा, "तो इसमें आपत्ति क्या! तुम तो थीं।"

अंजना ने कहा, "हाँ मैं थी, पर इतनी सिद्धस्थ कहाँ कि रोते बच्चे

को चुप करा दूं। यह तो जयन्तजी थे, अपने पिता को देख बच्चे चुप हो गये।" यह कहते हुए उसने लड़की सुधा को गोद से उतारा और शुभदा के पास खड़ी कर दिया। जयन्त ने भी लड़के ललित को उतार दिया।

उसी समय प्रोफेसर ने कहा, "अब बना है हमारा पूरा संसार। बिना बच्चों के क्या कुछ अच्छा लगता है? बड़ा आदमी तो अपनी बुद्धि का उपयोग करता है, गलत दिशा चुनता है। वह दूसरों के लिए तो परेशानी पैदा करता है, अपने लिए भी खाई खोदता है। पर ये बच्चे··· ये सरल···ये परमात्मा के रूप···"

दोनों बच्चे खेलने लगे, भागने लगे। वे हँसने और शोर करने लगे।

जयन्त ने कहा, "यह सभी माया है। जीवित मोह है।"

प्रोफेसर बोला, "सो तो है ही। परन्तु इससे अरुचि क्यों! इन्हीं बच्चों में तो विश्व के नियन्ता के दर्शन होते हैं। और यह अंजना भी क्या जाने कि बच्चों के पालन-पोषण में कितना कष्ट मिलता है, कितना सुख।"

हँसकर अंजना ने कहा, "जी, यह तो तथ्य है। मैं अनभिज्ञ हूँ।"

प्रोफेसर ने कहा, "इस ज्ञान का पाठ तुम शुभदा से प्राप्त कर सकती हो। वह माँ है। इस रहस्य को समझती है।"

उसी समय बच्चे खेलते हुए दूर निकल गये थे। जयन्त ने आवाज़ दी, "अरे, कहाँ जाते हो? इधर आओ।"

प्रोफेसर ने कहा, "खेलने दो, भागने दो।"

किन्तु उसी समय दूर पर गई लड़की सुधा चीख उठी, "माँ!"

शुभदा चिल्लाई, "अरी, क्या है!"

उसी समय जयन्त के मुँह से बरबस ही फूट पड़ा, "ओह, सुधा!" और वह प्रोफेसर के हाथ से डण्डा ले उसी ओर दौड़ पड़ा। क्षणभर में बात सभी ने समझ ली और प्रोफेसर ने सहमे हुए स्वर में चीत्कार किया, "अजगर!"

निःसन्देह एक बड़ा अजगर उन बच्चों को देख एक बड़ी चट्टान के नीचे से निकला और उनकी ओर बढ़ा। उसी को देखकर सुधा ने

चिल्लाया था। अजगर ने उस सुधा को पकड़कर अपने मुँह में ले लिया होता कि उसी समय जयन्त ने डण्डे का भरा हाथ उस अजगर के मुँह पर दे मारा। अंजना ने एक बड़ा पत्थर उठाया और अजगर पर पटक दिया। उसी समय शुभदा ने दौड़कर लड़की को उठा लिया और छाती से चिपका लिया। इतनी देर में चुटीला बना अजगर फिर पत्थर की शिला के नीचे सरक गया। किन्तु उस एक क्षण में जो कुछ वहाँ हो गया उसकी विषमता को सहज भाव से सभी ने अनुभव किया। अजगर का भयानक मुँह उस बालिका से दो-तीन फुट की दूरी पर रह गया था। यदि एक क्षण और बीतता तो वह उस बच्ची को पकड़ लेता और अपने विशाल मुँह में देकर सटक जाने का प्रयत्न करता।

उसी समय एक लम्बी साँस लेकर प्रोफेसर ने कहा, "इस संसार में सभी एक-दूसरे के शत्रु हैं। इस प्रभातकाल में हमें एक बार फिर यह समझने और देखने का अवसर मिला कि होता वही है, जो भगवान कराता है। हमारी आँखों के समक्ष ही एक बड़ा काण्ड हो जाने वाला था कि उस परमपिता ने समय पर रक्षा की। यह बेचारी अबोध बालिका बच गई।"

जयन्त दे देखा कि शुभदा की आँखों के आँसू उसके मुँह पर उतर आए हैं। वह कातर है। इतना प्रोफेसर और अंजना ने भी देखा। तभी पास आकर अंजना ने कहा, "अब उठो, चलो।"

जयन्त मौन था। गम्भीर बना था। उसने लड़के ललित की उँगली पकड़ ली और चल दिया। प्रोफेसर सबसे पीछे था। हाथ में डण्डा लिये वह धीरे-धीरे चल रहा था। जब शुभदा और अंजना आगे बढ़ गईं तो तभी जयन्त को टँकोरकर प्रोफेसर ने रुकने को कहा। पास आकर उन्होंने जयन्त के कन्धे पर अपना हाथ रखा और कहा, "जयन्तजी, भला यह कैसी अशुभ बात है कि शुभदा आई और तुमने एक बार भी कुशल-समाचार नहीं पूछा। अच्छा यही है कि अब तुम अपने गाँव जाओ। शुभदा की उपेक्षा करना न उचित है, न माननीय है। सामाजिक रूप से तम उससे बँधे हो। यह तो समझते ही हो कि वह यहाँ क्यों आई है?"

...न्त ने कहा, "सब समझता हूँ।"

अंजना ने फिर पूछा, "तो निर्णय क्या किया? यह पत्नी ··ये

बच्चे···तुम्हारा संसार तो सचमुच ही जुदा बन गया है, जयन्तजी !"

जयन्त ने कहा, "मेरी दुनिया बदल गई है।"

सुनकर प्रोफेसर ने एकाएक अपनी राय ज़ाहिर नहीं की। किन्तु जब वे पहाड़ पर चढ़ने लगे तो तभी प्रोफेसर ने रुककर जयन्त को रोकते हुए कहा,"जयन्त भाई, मैं अनुभव करता हूँ कि सभी समान नहीं बनते। शुभदादेवी का अपना स्थान है, उसकी अपनी परम्परा है। तुम्हें यों सेवा-भाव में लिप्त होना था, तो ऐसी ममतामयी शुभदा को अपनी अर्द्धांगिनी बनाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए था। अब तो एक सरल और ममता-भरे जीवन के साथ धोखा होगा। तुम अपने अधिकार और स्वार्थ की बात जहाँ सोचते हो, वहाँ यह भी तो देखो कि उसका भी कोई अधिकार है। नारी रूप में उसकी भी कुछ आकांक्षाएँ हैं, मान्ताएँ हैं जयन्तजी, तुम इस बात को छुपा नहीं सकते कि तुम्हें नारी की भूख थी। अब वह भूख तृप्त हुई, तो उस नारी के पास से भागते हो।"

जयन्त ने कहा, "प्रोफेसर साहब, मैं दलदल में फँस गया हूँ। मैं सोचता हूँ कि मुझे विवाह नहीं करना चाहिए था।"

प्रोफेसर ने अपने स्वर पर ज़ोर देते हुए कहा, "नहीं, नहीं, विवाह तुम्हें करना था। और जानते हो, मेरे मन में यह भी बात है कि यह अंजना तुम्हारे द्वारा तिरस्कृत न की गई होती तो आज इसका जीवन भी कितना सुखमय होता। तुम समझते हो न, यह नारी वसुन्धरा है। यह अपनी कोख से कंकड़ भी उगलती है और हीरा भी। आज तुम्हारी बच्ची जिस समय अजगर के मुँह के सामने पड़ी, तो मैंने यह भली प्रकार देखा कि शुभदा के समान, यह अंजना भी मर्माहत बन गई थी। उसकी चीख बड़ी भयावह थी। पर तुमने अंजना के साथ तो पाप किया ही, अब शुभदा के साथ भी करने चले हो। भला क्यों ? किसलिए ? इसलिए कि अंजना आज तुम्हारी दृष्टि में श्रेष्ठ है। यहाँ अंजना है तो तुम यहाँ रहना पसन्द करते हो। इस संन्यासिनी कुमारी के पास ! मैं समझता हूँ यह भी तुम दोनों की मूक वासना की एक प्रकार से पूर्ति है। सन्तोष करने का अवलम्ब है। परन्तु इसकी जो प्रतिक्रिया है, जो कि भयंकर है, वह क्या अभी दिखती है ? उसकी क्या सहज में कल्पना हो सकती है ? न, अभी नहीं।" यह कहते हुए प्रोफेसर चल पड़ा।

आश्चर्य कि उस अवस्था में जयन्त मौन था जैसे पत्थर हो। वह यह सुनकर भी चकित नहीं बना कि वृद्ध प्रोफेसर ने ठीक वही बात कही जो जयन्त के मन में थी। मानो उसके मन का वह चोर प्रोफेसर ने पकड़ लिया हो। इसलिए वह एक अभियुक्त के समान, प्रोफेसर के साथ चला। जब वे दोनों अस्पताल के समीप पहुँचे, तो तभी अपने कमरे की ओर जाते हुए प्रोफेसर ने कहा, "जयन्तजी, मैं अब यहाँ से जल्दी चला जाऊँगा। लेकिन जाने से पूर्व, मैं यह देखकर सुख मानूँगा कि शुभदा बहू के मन को कष्ट न हो। वह सुखी हो। आज उसे जिस प्रकार की पीड़ा मिली, एक क्षण में उसकी आत्मा जिस प्रकार दर्द से कराही, वह हम सभी के लिए शिक्षादायक बात थी। मुझे यह देखकर भी सन्तोष नहीं होता कि अंजना ने जो मार्ग चुना है, वही उसके लिए शुभ है। वह विषम तथा कठोर है। ऐसी कोमल युवती ने असमय ही अपने-आपको सेवा और योग की भट्टी में झोंक दिया है। यह त्याग इस युवती से निभे, अब यही श्रेयस्कर है। कभी मेरे मन में यह बात भी आती है कि इस अंजना का किसी योग्य डॉक्टर से विवाह करा दिया जाए। परन्तु अभी इस अंजना के मन में ऐसा नहीं आता। उसे नहीं रुचता। मैंने समझ लिया है, तुम्हारे अतिरिक्त उसे किसी मनुष्य में अनुराग नहीं लगता।"

जयन्त ने कहा, "अंजना विवाह नहीं करेगी।"

प्रोफेसर ने फिर अपनी वाणी पर जोर दिया, "वह क्यों नहीं करेगी यह भी जानते हो ? उसका कोई और कारण हो या न हो, परन्तु एक तुम अवश्य हो। तुम्हारी उपेक्षा ने अंजना के मन को चोट पहुँचाई है। तुमने उसके हृदय में जिस भावना का अंकुर बोया, उसे स्वयं ही उखाड़ दिया। जिसने उसे जीवन दिया उसी ने उसका सर्वस्व छीन लिया।"

एकाएक जयन्त बोल पड़ा, "नहीं प्रोफेसर साहब ! मैंने अंजना को ठगा नहीं। उसने स्वयं मुझे छोड़ा। मेरा त्याग किया। मैं समझता हूँ, उसके माता-पिता ने भी बाध्य किया।" उसने कहा, "पर अब अंजना ने जो मार्ग ग्रहण किया है, उससे पीछे लौटना भी अशुभ होगा। उसे स्वीकार नहीं होगा।"

"हाँ, हाँ, यही तो। नियति ने स्वतः ही उसे अंधकार से निकालकर प्रकाश दिखाया है। उसकी छाती के नीचे दबी हुई भावना और अनुभूति

को जागृत किया है। अब तुम भी उसकी सहायता करो। तुम्हीं ने अंजना के निर्माण में योग दिया, तो आगे भी सहायक बनो। उसके मिशन को फेल मत होने दो। मेरा खयाल है कि तुम यहाँ मत रुको। अंजना की दबी हुई वासना को मुँह उठाने का अवसर मत दो।" यह कहते हुए प्रोफेसर ने साँस भरी और कहा, "यदि तुम दोनों पति-पत्नी का रूप स्वीकार करते तो निश्चय ही दोनों का जीवन सुखमय बनता, परन्तु नियति को यह स्वीकार नहीं था। समाज के समक्ष तुम्हें झुकने के लिए बाध्य होना पड़ा। मैं अनुभव करता हूँ अंजना के मन में यही कसक है, पीड़ा है। इससे वह भी परेशान हो उठती है। मुझसे कह चुकी है कि जयन्तजी यदि ब्राह्मण के घर में न पैदा होते तो मेरे प्रति अधिक अनुराग रखते; मुझे अपने समीप पाते। वह तुम्हारे प्रति आज भी कितनी अनुरागमयी बनी है, इसका मुझे पता है। तुम्हारे लिए मैंने उसे रोते देखा है।"

जयन्त कुछ कहने चला था कि तभी अंजना वहाँ आई और बोली, "लड़की डर गई है, बिस्तर पर चुप पड़ी है। उसके पास आप दोनों चलिए न, शुभदा रो रही है।"

और इतना सुनते ही प्रोफेसर और जयन्त उसी ओर बढ़ गये।

चौबीस

निःसन्देह शुभदा चाहती थी कि जो कुछ उसके मन में है उसे निकाल दे। परन्तु अन्ततः वह नारी थी; अपने अधिकार की माँग करती थी। और जयन्त उन दिनों सचमुच ही उन्मन था, थका था। वह किसी से भी अधिक न बोल पाता। प्रायः अस्पताल के काम में लगा रहता। कभी किसी मरीज़ को उसके गाँव में जाकर देखने की बात आती तो देख आता। एक दिन सन्ध्या के समय जब वह अपने कर्म से निवृत्त होकर कमरे से बाहर निकला तो सीधा एक पहाड़ की ओर चल दिया। उस समय अँधेरा

बढ़ चला था। जयन्त एक पत्थर पर बैठ गया। वहाँ से अस्पताल के कमरों का प्रकाश अच्छा लग रहा था। उस पर्वतीय भू-क्षेत्र में बना वह अस्पताल इतने दिनों के बाद जयन्त को श्रेष्ठ संकल्प प्रतीत हुआ जिसके चारों ओर शान्त वातावरण था। उस अवस्था में ही उसने देखा कि वह कैप्टेन रमाकान्त की पत्थर की प्रतिमा भी जैसे अनायास दर्शकों का आवाहन कर रही थी। उस समय सदा की भाँति सन्ध्या का दीपक उस प्रतिमा के समक्ष भी रखा था। वह दीपक अपने शीतल प्रकाश से उस प्रतिमा के चरणों को पखार रहा था।

तभी जयन्त ने एक लम्बी साँस ली और छोड़ दी। उसे लगा कि वह कैप्टेन, बन्दूक से आदमी का कलेजा भेदने वाला सैनिक, जाने कितना अच्छा भाग्य पा गया, किस संस्कारवश इस अंजना को मिल गया कि मरते समय न केवल अपने जीवन का समस्त प्यार इस कुमारी को भेंट कर गया, अपितु अपना धन भी दे गया। और यह भी कैसी अजीब बात कि इस अंजना ने उस कैप्टेन के नाम पर ही योग धारण कर लिया। उसकी स्मृति में अपना जीवन सर्मपित करना स्वीकार किया। और एक मैं हूँ...''

''जयन्तबाबू !'' एकाएक पीछे से स्वर सुन पड़ा। चौंककर जयन्त ने देखा कि अपने मधुर होंठों पर मुस्कान लिये अंजना वहाँ आ पहुँची है। वह अपनी प्यारी आँखों से भी हँस रही है। पास आते ही उसने कहा, ''इस एकान्त में क्या सोच रहे हैं आप ? क्या कोई नई बात है ?''

जयन्त ने साँस भरी और बड़े याचक तथा दीन भाव में अंजना को देखकर कहा, ''कुछ नहीं, अंजना ! थका था तो इधर चला आया। आओ, बैठो।''

अंजना ने कहा, ''आज गाँव का गड़रिया गोधू कहता था कि इस पहाड़ पर भी कुछ जानवर उतर आए हैं। उसने एक दिन शेर देखा, फिर रीछ देखा, लकड़बग्घे तो यहाँ आते ही रहते हैं।''

जयन्त ने बात सुन ली, किन्तु उसने कोई उत्तर नहीं दिया। वह पहाड़ की ऊँचाई को देखता रहा।

अंजना फिर बोली, ''शुभदादेवी गाँव लौटने की बात कहती थीं।''

जयन्त ने कहा, ''ठीक तो है, उसे जाना चाहिए।''

"और आप ?" अंजना ने कहा, "आपका क्या विचार है ? आप भी जाइये गाँव !"

जयन्त ने कहा, "फिर तुम्हारा यह मिशन कौन चलाएगा ?"

अंजना ने कहा, "शहर से एक डॉक्टर आ रहा है। सरकार ने देना स्वीकार किया है। आज पत्र मिला है।"

"तो मैं चला जाऊँगा। गाँव न गया तो कहीं भी चला जाऊँगा।"

इतनी बात सुनी तो अंजना सहम गई। वह स्वयं कातर बन गई। सहज में बोल नहीं सकी।

किन्तु जयन्त ने फिर कहा, "मैं बड़ी स्थिरता से इस विचार पर टिका हूँ कि अपनी दिशा चुन लूँ। मेरा और शुभदा का सम्बन्ध स्थायी नहीं रहेगा। निभ नहीं सकेगा। हम दोनों के विचारों में भेद है, जीवन को देखने में भेद है।"

एकाएक अंजना ने प्रश्न किया, "आखिर क्यों ?" कोई कारण तो हो ? मैं तो शुभदा बहिन में कोई कमी नहीं देखती।"

जयन्त ने पवत की सघनता की ओर देखते हुए कहा, "तुम मेरी आँखों से नहीं देखती। मेरे मन से नहीं समझती कि मैंने जीवन में एक भूल की, तो आज उसी के प्रायश्चित्त के रूप में मेरा मन ग्लानि से भरा है। मुझे आज अपना जीवन ही···"

एकाएक अंजना सचमुच ही अधीर बन गई। वह और अधिक जयन्त के समीप हो गई। उसके मुँह के समीप अपना मुँह ले जाकर और उसकी आँखों पर अपनी आँखें टिकाकर बोली, "जयन्तबाबू, मुझे बार-बार पागल न बनाओ। तुम अपना एक आधार पाकर शांति नहीं पाना चाहते तो मुझे यह अवलम्ब प्राप्त कर लेने पर पथ से न भटका दो। कुछ मेरे मन की अवस्था भी समझो। मेरी विनय है शुभदा का जीवन कष्टमय मत बनाओ।"

जयन्त ने कहा, "ऐसा मैं नहीं समझता। वैसे मुझसे कल ही प्रोफेसर ने कहा है कि मैं यहाँ न रहूँ। तुमसे दूर हो जाऊँ। सो, मैं चला जाऊँगा। मैं तुम्हारे योग में, इस त्याग-भाव में अवरोध न पैदा करूँगा।"

जैसे अनजाने अंजना बोली, "तुम्हारे इस प्रस्थान का स्वागत करके भी, मैं इतना समझती हूँ कि तुम जाओगे तो भला फिर मेरे पास क्या

रहेगा ? मुझे कौन उद्‌बोधना प्रदान करेगा ? इस सेवा और त्याग की प्रेरणा कौन देगा ?"

जयन्त ने उदास स्वर में कहा, "वह तुम्हारे पास है। अब तुम्हें प्रेरणा की आवश्यकता नहीं है।"

अंजना ने कहा, "न, जयन्तजी ! मुझे अब भी प्रेरणा चाहिए। तुम यहाँ हो, तो मैं समझती हूँ कि अकेली नहीं, साथी के रूप में तुम मेरे पास हो। मुझे दिशा प्रदान करते हो। और क्या मुझे यह भी कहना पड़ेगा कि जब से तुम यहाँ आये हो तो मुझमें काम करने का अधिक उत्साह आ गया है ? लगता है कि यह सब तुम्हारे लिए है, तुम्हारे सहयोग से है।"

इतनी बात सुनी तो जयन्त मूक-वधिक के समान, अपने-आप में सहम गया। उसे लगा कि अंजना अभी वही है जो कुछ वर्ष पूर्व थी, यह नहीं बदली। बच्ची से जवान नहीं हुई। कहने को इसने गेरुए वस्त्र धारण कर लिये हैं, परन्तु मन नहीं रँगा है। मन में इतनी बात आते ही उसने कहा, "प्रोफेसर का आदेश है कि मैं जब तक यहाँ रहूँगा तुम्हारी साधना को बल नहीं मिलेगा। प्रोफेसर को भय है कि मैं···"

सुनते ही अंजना ने तेज़ स्वर में कहा, "मैं आज भी समाज को सुना सकती हूँ कि शरीर से भले ही तुमसे दूर रहूँ, पर मन से, अपनी भावना से मैं तुम्हारे पास हूँ।"

जयन्त बोला, "तब तो प्रोफेसर का कहना ठीक है। मुझे संगत लगता है कि यहाँ से चला जाऊँ। तुमसे दूर हो जाऊँ।"

अंजना ने कहा, "तुम जाओगे तो यह अस्पतालरूपी शरीर क्या खड़ा रहेगा ? उसमें आत्मा का निवास नहीं रहेगा। ऐसे ही एक मैं···मुझे अब इस सत्य का उद्‌घोष करने में आपत्ति नहीं लगती कि तुम्हें देखकर मुझे लगता है कि मैं अधिक काम करूँ, मैं तुम्हें बताऊँ कि जो कुछ मुझे सिखाया गया उसका शक्तिभर पालन करती हूँ।"

जयन्त बोला, "लेकिन अब मैं अपने को तुम्हारा पथ-निर्देशक नहीं मानता। वह स्वर्गीय कैप्टेन रमाकान्त तुम्हें कहाँ से कहाँ पहुँचा गया है। वह आँधी के समान तुम्हारे जीवन में आया और तिरोहित हो गया। वह बेचारा सैनिक···वह मानवी प्रेम का प्यासा······"

अंजना ने कहा, "जयन्तजी, मैंने उस कैप्टेन के साथ न्याय नहीं किया। क्या ही अच्छा होता कि मैं उसे नारी का विसर्जन और स्नेहदान देती! परन्तु मैं तो उससे घृणा करती रही। वह आता, तो फटकारती, उपेक्षा दिखाती।

जयन्त बोला, "वह तुम्हारा पाप था।"

उदास भाव में अंजना ने कहा, "हाँ, वह मेरा पाप था। उसी कैप्टेन से मुझे यह अभिशाप मिला कि मैं आज भी शान्त नहीं हूँ। अभिशप्त बनी इस अस्पताल के रोगियों और गाँव वालों की सेवा में लगी अपने को भुला देना चाहती हूँ। पर जब भी मैं एकान्त में होती हूँ तो सोचती हूँ कि मैं तो निकम्मी बनी, अदूरदर्शी और अविचार अपने मानस में लिये-लिये इस धरती पर आ गई, परन्तु बताइये तो, तुमने इतनी शिक्षा-दीक्षा पाकर भी क्या पाया? मुझे समीप लाकर भी क्या दिया? अच्छा होता कि मैं अपने जीवन के अँधेरे में होती। आज इस प्रकार भावनावादी बनकर त्रास तो न पाती।"

जयन्त एकाएक चीख पड़ा, "अंजना!"

किन्तु अंजना तो जैसे अपने मन का सभी जहर निकाल देना चाहती थी। वह बोली, "आप नहीं समझते, मैं आज अभिशप्त हूँ। समाज मुझे योग की पुजारिन समझता है। पर मैं क्या हूँ, उसे खूब समझती हूँ। आपने जिस सेवा, त्याग और भावना की चादर ओढ़कर मेरा आवाहन किया, वही तो आज मुझे सालता है। मेरा मन छटपटाता है। भला क्यों? इसलिए न कि मैं प्रेम की पुजारिन बनी। मैं आपकी भावना के समक्ष जीवन में एक बार ही आँख मूँदकर नतमस्तक हो गई।"

बलात् जयन्त के मुँह से निकला, "मैं तुम्हारे लिए आज भी प्रस्तुत हूँ, अंजनादेवी!"

अंजना सीधी खड़ी थी, तुरन्त बोली, "अब देर हो गई है; हवा आई थी, निकल गई। आपने जातिवाद और अपने विशिष्टवाद पर मेरे प्रेम की हत्या की तो मैंने उस मृत कैप्टेन की कुरूपता को देख अपने हृदय की समस्त घृणा प्रदान की। हाय! मेरी यह कैसी विवशता थी, कितनी हृदयहीनता की बात थी कि वह कैप्टेन, वह देश और समाज के लिए अपने प्राण न्योछावर करने वाला इन्सान, मुझ नारी का सदय भाव पाने

के लिए सदा आकांक्षित रहा। वह नित-नित ही मुझे प्रसन्न करने के लिए सुन्दर भेंटें लाता, परन्तु मैं उनका कोई महत्व न आँकती। बताइए तो, मेरे प्रति उस कैप्टेन के मन में कितना अथाह सागर खलबला रहा था, पर मैंने उसमें एक बार भी गोता नहीं मारा। मैं तुम्हारी कल्पना करती रही, मैं नित्य ही इस बात की कल्पना करती रही कि तुम···तुम मेरे हृदय के उज्ज्वलतम भाव···पर तुम्हारा धर्म तुम्हारी जाति···हे राम! इतने कठोर बने तुम कि एक बार भी नहीं आये मेरे पास! मानो तुम्हारे लिए शुभदा ही सब-कुछ थी। तुम्हारा सर्वस्व थी। इसलिए न कि वह ब्राह्मण की लड़की थी! धनिक की पुत्री थी। तुम्हारे घर में आने के साथ दहेज में धन लाई। मुझसे अधिक अपने शरीर पर सौन्दर्य लाई।"

जयन्त ने अपना सिर पकड़ लिया और कहा, "मैं अभागा निकला, अंजनादेवी! अब और क्या कहोगी; आज तुमने सभी कुछ कहा। संक्षेप में कहूँ कि जो तुमने समझा, वह मैंने नहीं पाया। मैंने अपना जीवन खो दिया। सोने की जगह तांबा पा गया।"

साँस भरकर अंजना बोली, "वस्तुतः हम दोनों अपराधी हैं। इन्सानियत के शत्रु हैं। हमने एक-दूसरे को धोखा दिया है। देखती हूँ कि मैं सन्तप्त हूँ, तो तुम भी उसी में घुल रहे हो।"

जयन्त बोला, "मेरी कठिनाई है कि मैं शुभदा को अपने से दूर पाता हूँ; उससे आत्मीयता का भाव नहीं पा सकता। मैं आज इस सन्ध्या के समय केवल तुम्हारे समक्ष एक ऐसे रहस्य को खोलना चाहता हूँ कि जिसे मेरे अतिरिक्त और कोई नहीं जानता। और वह बात है इस शुभदा की। इसकी आत्महीनता की। विवाह से पूर्व इसका एक युवक से प्रेम था। यह शुभदा उस युवक को प्रेम करती थी या नहीं, यह तो राम जाने, परन्तु वह युवक अवश्य ही इसके प्रति अपना आत्म-समर्पण कर चुका था। वह दूसरी जाति का था। निर्धन भी था।" यह कहते हुए जयन्त ने साँस भरी और कहा, "जब शुभदा का विवाह हुआ तो वह युवक पागल हो गया। आदमियों ने उपचार कराया। अन्त में पागलखाने पहुँचा दिया। एक बार जब मैं उस नगर में शुभदा को साथ लेकर गया तो संयोग से अपने मित्र डॉक्टर से मिलने पागलखाने भी पहुँच गया। इस डॉक्टर ने

देखकर बोले, "चोट कैसे लगी ? क्या मार लिया ?"

जयन्त ने कहा, "जब मन भागता है तो आदमी भी भागता है। मन अन्धा होता है तो आदमी भी अन्धा हो जाता है।"

इतनी बात सुनकर प्रोफेसर मुस्कराए नहीं, उन्हें हँसी भी नहीं आई। वह जयन्त के समान गम्भीर बनकर बोले, "इसके लिए कोई कारण तो हो।"

जयन्त कमरे से बाहर जाने लगा और बोला, "मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु उसका मन है, प्रोफेसर साहब ! जब मन में चोर होता है तो शंका भी होती है। दूसरे के प्रति सन्देह भी पैदा किया जाता है।" जयन्त वहाँ से चला गया। किन्तु कमरे में रह गए प्रोफेसर ने अंजना से कहा, "इस शुभदा को उठाओ। कमरे में ले चलो।"

जैसे चौंककर अंजना ने कहा, "जी।"

प्रोफेसर ने कहा, "शुभदा बेटी की देखभाल तुम्हें ही करनी होगी, यह कोमल है। ज़रूर इसके मन पर कोई बात है।"

अंजना ने कहा, "लेकिन जिस बात का कोई सिर-पैर न हो, उसे अपने मन में लिये रखना क्या अच्छा है ? ऐसे तो रोगी बनना है।" उसने शुभदा से कहा, "अब उठो, चलो। अपने बिस्तर पर पहुँचकर आराम करो।"

शुभदा कमरे में पहुँच गई। उसी समय अस्पताल का जमादार उसके दोनों बच्चों को लिए वहाँ आया। वे दोनों देर से उसके साथ थे, खेल रहे थे। जमादार बूढ़ा था और वे दोनों बच्चे उससे हिल-मिल गये थे। वह उन्हें पहाड़ी मिठाई देता, कहानियाँ सुनाता था। लेकिन अपनी माँ को बिस्तर पर पड़ी देख वे बच्चे जैसे आकुल बन गए। ललित ने कहा, "यह क्या हुआ, माँ ?"

किन्तु शुभदा ने मुँह से कुछ नहीं कहा। उसने बच्चों को पास बैठा लिया।

उसी समय प्रोफेसर ने कहा, "यह संसार भी अजीब है, माया नगरी है। तनिक-से जीवन में आदमी जाने क्या-क्या सोच बैठता है। राग-वैराग्य की बातें करता है, अपना-पराया देखता है, और यह कोई नहीं समझता कि यहाँ जो कुछ है वह सब मिथ्या है। मायावी है। टूट जाने

वाला है। पति, पुत्र कोई भी तो अपना नहीं बनता। सभी का झूठा नाता है।"

अंजना उस समय शुभदा के पायताने बैठी थी। उसने हाथ की हथेली पर मुँह रखा था। जब प्रोफेसर ने अपनी बात कही तो वह उदास भाव से बोली, "प्रोफेसर साहब, आदमी से यह कैसे समझा जाएगा। इन्हीं सब अवस्थाओं से तो वह अपनी दुनिया का निर्माण करता है। देखा न आपने, तिनके जोड़-जोड़कर पंछी अपना घोंसला बनाता है। परन्तु आँधी का एक ही झोंका उसे तोड़ देता है। निर्माण और महानाश का काम साथ-साथ चलता है। आदमी अपने मन में यदि इतना सब-कुछ न ले, तो यह सजा हुआ संसार क्या दिखाई दे सकता है!"

प्रोफेसर ने कहा, "निःसन्देह, यह कठिन समस्या है—कठोर।"

अंजना मुस्करा दी, "सो तो है ही। पर आदमी इसे भी सुलझाता है।"

प्रोफेसर ने कहा, "मैं देखता हूँ कि आदमी उलझता है, दम तोड़ता है और अपनी बनाई समस्याओं के झुरमुट में स्वयं फँस जाता है।"

उसी समय शुभदा कराही और बोली, "प्रोफेसरजी, मुझे कल गाड़ी पर चढ़ा दीजिए। मैं जाऊँगी।"

प्रोफेसर ने कहा, "अभी नहीं। यह नया रोग जो पाल लिया है इसे ठीक कर लो। देखता हूँ कि तुम परेशान हो। अपने-आप में सन्तप्त हो।" वह बोले, "शुभदा बेटी, पाप करने से बुरा उसको छुपाना है, उससे चिपके रहना है। मैं अनुभव करता हूँ कि तुम ..."

उसी समय शुभदा तड़प उठी। वह एक बच्चे के समान रोती हुई बोली, "सचमुच, मैं पापिनी हूँ। मैं अपने मन में पाप लिए हूँ।"

जल्दी से जैसे आतुर बनकर प्रोफेसर ने कहा, "नहीं, नहीं, तुम्हारे पास कोई पाप नहीं। तुम्हें भ्रम है। मुझे लगता है कि तुमने स्वयं अपने को अंधेरे में डाल रखा है। अपने मन और आत्मा को क्लेश पहुँचाया है। मैं यह भी अनुभव करता हूँ कि तुम दोनों पति-पत्नी ने एक-दूसरे को गलत समझा है। शायद दोनों में इतनी क्षमता नहीं कि एक-दूसरे को क्षमा कर दिया जाय। मैं स्पष्ट देखता हूँ कि जयन्त अब तुमसे दूर होता जा रहा है। अभी उसने डॉक्टर का कर्तव्य तो पूरा किया परन्तु उससे

अधिक जो पति का कर्तव्य था, उसे करना नहीं चाहा। वह यहाँ नहीं आया। अब कैसा हो गया है वह जयन्त...''

उसी समय चौकीदार वहाँ आया और बोला, ''डॉक्टरबाबू जनकपुर गाँव में गये हैं। एक किसान घोड़ा लाया और उन्हें ले गया। उसका लड़का निमोनिया में पड़ा है।''

अंजना ने कहा, ''अब गये हैं, इस रात में ?''

प्रोफेसर ने कहा, ''हाँ-हाँ, जयन्त डॉक्टर है न, उसे जाना ही चाहिए। डबल निमोनिया होगा, तभी तो दौड़कर वह किसान आया।''

शुभदा उस समय मौन थी। वह आँखें बन्द किये थी। किन्तु उन बन्द आँखों के नीचे से सारा जल रिस-रिसकर बाहर आ रहा था। वह उसके गालों पर बहने लगा था। यह देख अंजना ने अपनी धोती का पल्ला उसके मुँह पर रख दिया और कहा, ''अपना मन स्वस्थ करो, शुभदा बहिन !''

सुनते ही शुभदा और अधिक तड़प उठी और आँखें खोलकर बोली, ''मैं अब मरना चाहती हूँ, अपनी मौत चाहती हूँ। सचमुच, मैंने अपने पति को नहीं समझा।''

अंजना ने कहा, ''जयन्तजी में न समझने की कोई बात नहीं। तुम धीरज से काम लो।''

प्रोफेसर ने कहा, ''जयन्त अब यहाँ नहीं रहेगा। गाँव जाएगा।''

अंजना ने कहा, ''उन्हें यही करना चाहिए।''

शुभदा ने फिर अपनी आँखें बन्द कर लीं। उसके होंठ फड़फड़ाने लगे जैसे अपने-आप ही कुछ कहने लगी हो।

उसी समय प्रोफेसर ने खड़े होकर कहा, ''शुभदा को दूध दो। बच्चों को सुला दो, आराम करने दो।'' कहते हुए वह वहाँ से चल दिये। लेकिन प्रोफेसर इस कमरे से बाहर जाकर अपने कमरे में नहीं गए। वह बीमारों के उस वार्ड में पहुँच गए कि जहाँ एक दिन पूर्व ही एक व्यक्ति घायल अवस्था में भरती हुआ था। उसका किसी ने सिर फोड़ दिया था, शरीर के कई स्थानों पर भी आघात किया गया था। जाकर देखा कि वह व्यक्ति जाग रहा है। उसने प्रोफेसर को देखकर हाथ जोड़े। प्रोफेसर ने पास जाकर कहा, ''कहो, कैसी तबीयत है ? ज़ख्मों में पीड़ा तो नहीं है ?''

उस व्यक्ति ने धीर भाव से कहा, "जी नहीं।"

प्रोफेसर और पास आ गये और बोले, "कहो तो यह चोट कैसे लगी ? किस बात पर तुम्हारी फौजदारी हुई ? क्या किसी पड़ौसी ने चोट मारी ?"

उस व्यक्ति ने कहा, "बाबा, ज़माना बेईमान है। एक आदमी को रुपया दिया था। जब माँगा तो मार-पिटाई कर बैठा। मुझे सोते में..."

"ओह, ऐसा था वह आदमी ! इतना क्रूर !" प्रोफेसर ने कहा, "तो तुम रुपये का लेन-देन करते हो ? सूद लेते हो ?"

बात सुनी तो वह व्यक्ति चुप हो गया। और दिन में ही, उस बीमार के गाँव के एक अन्य व्यक्ति ने प्रोफेसर को बताया था कि वह आदमी पक्का सूदखोर है। मूल से ब्याज अधिक लेता है। जिस आदमी ने इसके साथ मार-पिटाई की वह दबी हुई चींटी के समान तिलमिला गया था। इस सूदखोर ने उसकी ज़मीन छीन लेनी चाही थी और उसकी लड़की पर भी अधिकार करना चाहा था।"

दिन में सुनी बात को याद करके ही प्रोफेसर ने अब उस बीमार की बात सुनी तो बोले, "भैया, यह पैसा भी झगड़ा कराता है। एक और भी झगड़े की जड़ है, जिसका नाम है, नारी। मुझे लगता है कि तुम भी इससे छूटे नहीं हो।"

बीमार ने कहा, "बाबा, रुपया लेना आसान है, देना कठिन।"

प्रोफेसर ने पूछा, "तो तुम अपने रुपये के लिए उस किसान की ज़मीन लेना चाहते थे ? मैंने सुना है कि तुम उसकी लड़की पर भी निगाह रखते थे ?"

घायल बोला, "बाबा, जब लेने वाला रुपया वापिस न करे तो ज़मीन ली जाएगी। और रही उसकी लड़की की बात ; यह तो उसकी इच्छा की बात थी। मेरी घरवाली मर गई तो मैंने सोचा कि वह रुपया देने से छूट जाएगा और मेरे घर का अभाव पूरा हो जाएगा।"

खिन्नभाव में प्रोफेसर ने कहा, "राम-राम ! तुम इतने निकृष्ट हो ! गाँव की लड़की जो तुम्हारी बेटी के समान है उसी के प्रति ऐसे भाव ! और जितना रुपया तुमने उसे दिया, मैंने सुना है, तुम उससे सूद भी वसूल कर चुके हो। अरे, कैसे पत्थर हो, भाई तुम ! इतने कठोर ! इतने

ने कमरे की ओर जाने लगे तो बोले, "शुभदा
निर्मम ! तुम तो कसाई बनकर
चाहते हो ।"
ई है, उसके बच्चे भी सो गए हैं ।"
इतनी बात सुनकर वह घायल प्रोफे
ा गाँव में लौट आया । वह
ही, उसे प्रोफेसर का कहना कुछ अच्छा नहीं ल
था, निःशक्त बना था । वह भीमकाय व्यक्ति ज
समान तड़पकर रह गया था ।

लेकिन प्रोफेसर ने उसके मन की उस अवस्था पर ध्य
उन्होंने सीधे स्वभाव से फिर कहा, "देखो भाई, मैं तुम्हारे मन
कुछ कहकर तुम्हें परेशान या दुःखी नहीं करना चाहता । परन्तु तुम बीस
तरह चारपाई पर डालकर यहाँ लाये गए हो उससे स्पष्ट है कि तुम्हार
शरीर भले ही बलिष्ठ हो परन्तु आत्मा मर चुकी है । तभी तुमने यह चोट खाई । किसी ने ठीक ही कहा है कि आत्महीन व्यक्ति जीवित नहीं रह सकता । तुम जिस समाज में रहते हो उसकी विवशता से लाभ उठाना तुम्हारा सबसे बड़ा अपराध है, पाप है । लगता है कि तुम 'जियो और जीने दो' के सिद्धान्त को नहीं मानते । सुबह तुम्हारे साथ जो आदमी आये थे उन्होंने मुझे बताया कि जिसने तुम्हें चोट पहुँचाई वह अतिशय दुर्बल आदमी है । परन्तु उसने तुम पर आघात किया तो इससे स्पष्ट होता है कि वह अपनी आत्मा में बल रखता है । आदमी बनो भाई ! इन्सानियत का सबक पढ़ो । जब भगवान सब पर दया करता है तो क्या तुम इस जीवन को पाकर दयाभाव नहीं दिखा सकते ? तुम भी तो भगवान के रूप हो ।"

बीमार ने फिर हाथ जोड़े और कहा, "मैं शर्मिन्दा हूँ, बाबा !"

प्रोफेसर ने कहा, "यह अस्पताल भी इन्सान की दया पर टिका है। यदि तुम कुछ अनुभव करो तो समझो । पाप तुम्हारा था, उस निर्बल किसान का नहीं । इस अस्पताल से अच्छे होकर जाओ तो उससे क्षमा माँगना । प्रतिशोध का भाव मन में हो तो उसे भुला देना । अब तक तुम ज़हर उगलते आये, अब तनिक अमृत भी दो । इन्सान को दया दो, सहानुभूति दो । तुम अनुभव करो कि जो कुछ तुम्हारे पास है वह समाज का है, तुमने प्राप्त किया है । तब भला समाज का अधिकार क्यों छीनते हो ? यह चोरी है, अन्याय है ।" यह कहते हुए प्रोफेसर वहाँ से चल दिए ।

उस व्यक्ति ने धीर भाव से कहा, "जी न

प्रोफेसर और पास आ गये और बो... न कमरे की ओर चले ही थे

लगी ? किस बात पर तुम्हारी फौजदा... एक महिला अतिशय दीन और

मारी ?" ... अंजना से कह रही है, "मैं मरना

उस व्यक्ति ने कहा, "ब...

रुपया दिया था। जब म... र भी उस कमरे में पहुँच गए। उन्होंने जाते

"ओह, ऐसा था... या, "क्या तकलीफ है इस नारी को ?"

तुम रुपये का ले... हा, "इसे जीवन की तकलीफ है। यह कई बच्चों की

बात स... गरीब है। अब फिर इसके पेट में बच्चा है।"

के गाँव ...फेसर ने कहा, "दुर्बल भी अधिक है।"

पक... अंजना बोली, "यही तो ! पेट का बच्चा भी दुर्बल है। पीड़ा होती है, पर बच्चा पैदा नहीं होता। मुझे लगता है कि···"

इतनी बात सुनकर, प्रोफेसर वहाँ से चल दिए। अंजना भी चल पड़ी। नर्स वहीं रही। जब वे दोनों उस कमरे से बाहर निकले तो प्रोफेसर ने अपनी दुर्बल आँखों से ऊपर के तारों-भरे आकाश को देखकर कहा, "यह भी कैसी विवशता है इस इन्सान की कि यह निर्धन है, इसे रोटियों का अभाव है, परन्तु विषय-वासना का दास तब भी बना है। यह बेचारी औरत भी इसी से ग्रसित है।"

खिन्न भाव में अंजना ने कहा, "आदमी कुत्ता है।"

जल्दी से जैसे आतुर बनकर प्रोफेसर ने कहा, "हाँ, हाँ, यही तो। स्वयं तो पतन के मुँह में जाता ही है, इस बेचारी नारी को भी ले डूबता है।"

किन्तु अंजना ने तुरन्त ही फिर कहा, "प्रोफेसर साहब, औरत भी पुरुष के जीवन में अपना रूप देखती है, अपनी आस्था पहचानती है। औरत स्वयं अँधेरे में पड़ी है। मूर्ख बनी है।"

प्रोफेसर बोले, "यह दोनों की विवशता है। पेट की भूख तो परेशान करती ही है, यह शरीर की भूख भी आदमी को पागल बना देती है।"

एकाएक अंजना ने कहा, "ओह ! निरी सड़ाँद · दुर्गन्धपूर्ण···"

प्रोफेसर ने जैसे बेजाने कह दिया, "हाँ, सड़ाँद···जीवन का पाप···"

ग्रौर जब प्रोफेसर ग्रपने कमरे की ग्रोर जाने लगे तो बोले, "शुभदा का ध्यान रखना।"

ग्रंजना ने कहा, "शुभदा सो गई है, उसके बच्चे भी सो गए हैं।"

उसी समय जयन्त घोड़े पर चढ़ा हुग्रा गाँव में लौट ग्राया। वह सीधा शुभदा के कमरे की ग्रोर बढ़ गया।

छब्बीस

एक दिन जब एकाएक गाँव के व्यक्तियों ने जयन्त ग्रौर शुभदा को ग्रपने निकट पाया तो ग्रड़ौस-पड़ौस के नर-नारी उनके घर पर ग्रा पहुँचे। सभी ने जयन्त से नानाप्रकार के प्रश्न किए। उसी समय पड़ौसी मलखान ने ग्रवसर पाकर कहा, "भैया, राधा का क्या हाल है ?"

चकित बनकर जयन्त ने कहा, "कौन राधा !"

"ग्ररे वही कृष्ण की दुलारी राधा ! वह ग्रंजना··"

इतनी बात सुनी तो जयन्त हँस दिया। उस बात ने दूसरों को भी हँसा दिया।

किन्तु मलखान सीधे-स्वभाव फिर बोला, "यह तो देखता हूँ कि रुक्मणीदेवी ग्रपने कृष्ण को मथुरा से द्वारका ले ग्राई हैं, पर कृष्ण का मन तो ग्रपनी उस राधिका के पास ही होगा···हाँ, वह ग्रंजना···"

वहाँ पर ग्राए एक प्रौढ़ व्यक्ति ने कहा, "ग्ररे, मलखान ! तू तो ग्राज बड़ी बुद्धिमानी की बात कहता है, रे ! जयन्त की पत्नी शुभदा को बनाता है रुक्मणी ग्रौर इस गाँव की लड़की ग्रंजना को उपमा दे बैठा है राधा की···वाह-वाह !"

मलखान ने कहा, "चाचा, मुझे यह उपमा सही लगती है। कृष्ण भगवान राधा की ग्रोर इसीलिए तो झुके थे कि वह उनके रंग में रँग गई थी, कृष्ण की बाँसुरी के स्वर में ही ग्रपनी सुध-बुध खो बैठी थी, ग्रपने पति को भी भूल चुकी थी। ग्रौर रुक्मणी ग्रपने कृष्ण पर इस-

लिए अधिकार दिखाती थी कि वह उसके पति थे। इसी तरह देखो न उस अंजना को, इस भरी जवानी में योगिनी बनी है, सेवा-भाव की डगर पर छोड़ बैठी है अपने-आपको ! मैं कहता हूँ, वह अंजना आज भी जयन्तबाबू की कल्पना करती है। रुक्मणी और राधा के समान, इन जयन्तजी को एक ने अपना शरीर दान दिया है, तो दूसरी ने अपनी भावना और अनुभूति प्रदान की है। क्यों मानते हो न, तुम ?"

प्रौढ़ व्यक्ति ने कहा, "सचमुच, दोनों का अपना-अपना विशिष्ट स्थान है, महत्व है।"

मलखान ने अपने स्वर पर ज़ोर देकर कहा, "मैं भावना को महत्व देता हूँ।"

तभी एक व्यक्ति ने कहा, "नहीं रे ! शरीर का समर्पण भी ऊँचा है। उसका मूल्य भी बड़ा है। वह सामाजिक धर्म है।"

मलखान तेज़ स्वर में बोला, "बिल्कुल नहीं। वह तो अपने स्वार्थ की बात है। इच्छापूर्ति की बात !"

"ओह !" वह व्यक्ति जो पास के कस्बे में संस्कृत के अध्यापक थे, बोले, "अरे, मूर्ख ! स्वार्थ दोनों का है। भावना का आदान-प्रदान करना भी शरीर और मन से सम्बन्ध रखता है।"

उस समय शुभदा घर में औरतों से घिरी थी। शारदा नाम की एक लड़की जो अब विवाहित हो चुकी थी और एक बच्चे की माँ भी थी, देर से अपने मन की बात लिये बोली, "तो भाभी, यह तो बताओ, अब उस अंजना का क्या हाल है ?"

इस पर शुभदा कुछ कहती, तभी एक प्रौढ़ा ने कहा, "अरी, उसका हाल क्या, आगे नाथ न पीछे पगहा ! हाँ, वह तो खुली बछेड़ी है। जहाँ चाहे बैठे, जहाँ चाहे जाए। सुनती हूँ, अब तो वह योगिनी बनी है। देखती नहीं, इस एक ज़िन्दगी में कितने रूप बदलती है।"

लेकिन इतनी बात सुनकर एक युवा लड़की तुनक गई, वह बोली, "न, चाची ! मैं तो सुनती हूँ कि वह सेवा और त्याग की साकार मूरत है। देखो तो, उस फौजी कैप्टेन से इतना धन पाकर भी भिखारिन है। उस फौजी के नाम पर अस्पताल भी खोल दिया।"

उस चाची ने मुँह बनाकर कहा, "हाँ-हाँ, मैंने भी सुन ली उसकी

बात ! जब यहाँ गाँव में भोले-भाले जयन्त पर डोरे डाले तो वहाँ शहर में जाकर उस फौजी अफसर पर भी डोरे डाल दिए। अरी, वह औरत क्या बनी, साँड बन गई। अब उसके माँ-बाप तो रहे नहीं, इसलिए, कौन उससे कहे कि तेरा यह काम अच्छा है, यह बुरा है।"

लड़की ने कहा, "तुम भी कैसी बात करती हो चाची ! मैं तो कहती हूँ कि उससे श्रेष्ठ लड़की हमारे गाँव में तो क्या दूर-दूर तक नहीं होगी। भैया मलखान कहता था कि वह अब संन्यासिनी है। समाज की सेवा करना ही अपना कर्तव्य मानती है।"

चाची ने कहा, "मैं सब समझती हूँ। अब वह चार अक्षर पढ़ गई है न, डाक्टरनी बनी है, अब तो आम-के-आम गुठलियों के दाम हैं।" यह कहते हुए वह चाची ही-ही करके हँस पड़ी।

उस युवा लड़की को यह बात असंगत लगी। उसे वह चाची मूर्ख और ईर्ष्यालु दिखाई दी।

लेकिन उस चाची ने शुभदा को लक्ष्य करके कहा, "बहू, तूने यह बुद्धिमानी की बात की जो जयन्त को साथ ले आई। देख तो, यहाँ का सब काम चौपट हो गया। घर बन्द हो गया। गाँव में किसी के घर दुःख-तकलीफ हो तो कोई देखने वाला नहीं रहा। उस अंजना से तू अपने आदमी को जितना दूर रखेगी उतना ही तेरा भला है। वह साँपन है, अवसर पाते ही डस लेगी।"

शुभदा ने साँस भरकर कहा, "चाचीजी, यह मेरी शक्ति की बात नहीं। मेरे भाग्य में जो कुछ है, वह मुझे मिलेगा।"

चाची ने कहा, "अरी बहू ! भाग्य के साथ लड़ना भी पड़ता है। प्रयत्न करना ही आदमी का काम है। और तेरा पति तो हीरा है। ऐसे नग को भला कौन न पाना चाहेगा ! मैं जानती हूँ कि वह अंजना बड़ी चालाक है। है तो चमार की बेटी न ! जाति का स्वभाव क्या सहज में जाता है ? जरूर वह अब भी जयन्त को पाना चाहती होगी। इसीसे कहती हूँ कि तू सावधान रहना। चोर चारों तरफ हैं, अपने पति की चौकसी करना तेरा ही काम है। तू इस घर की चौकीदार है। तेरे ऊपर बड़ा उत्तरदायित्व है। इस घर का बोझ है। जानती नहीं, औरत बच्चे तो पैदा करती ही है पर अपने नटखट पति को भी सुधारती है।

उसकी पुरानी ग्रादतें दूर करती है, नई पैदा करती है। हाँ, तभी तो वह ग्रपने घर के लिए, बच्चों के लिए उस पति को उपयोगी पा सकती है।" यह कहते हुए वह चाची उठकर चली गई।

तभी वहाँ पर बैठी रह गई शारदा ने सहज भाव से कहा, "यह चाची बड़ी समझदारी की बात कह गई है।"

उसी के पास बैठी नर्वदा नाम की लड़की ने कहा, "तू इस चाची का इतिहास नहीं जानती। इसने जो कुछ कहा, ठीक कहा। इस चाची ने ग्रपना ग्रावारा ग्रौर कामचोर पति ग्रादमी बनाया है। विवाह के बाद ही जेठ-जिठानी ने इसे जुदा कर दिया था। इसका पति रामलाल नशेबाज़ था, जुग्रारी था ग्रौर निठल्लू था। लेकिन इस चाची ने उस पर ऐसा जादू किया कि वह कुछ ही दिन में मेहनती बन गया। ग्राज इसका घर जेठ-जिठानी से ग्रधिक हरा-भरा है। बच्चे हैं। घर इसने सँभाला, पति ने बाहर का कार्य सँभाला!"

शारदा ने कहा, "काम ऐसे ही चलता है।"

नर्वदा बोली, "मेरी माँ बताती थी कि पति को परिश्रमी बनाने के लिए यह स्वयं उसके साथ काम करने लगती थी। रात को भरी शीत में गाँव के लोग सोते तो यह चाची ग्रपने पति के साथ घर से दूर जाकर खेत में पानी देती, खेत की रखवाली करती। काम के लिए उसने न दिन देखा, न रात देखी। यह तो मैंने भी बहुत बार पाया कि गर्मी की भरी दोपहरी में यह नारायणी चाची ग्रपने ग्रादमी के साथ खेत काटती पाई गई।"

शारदा ने साँस भरकर कहा, "ऐसे ही काम चलता है। तभी घर बनता है। इस जिन्दगी को निभाने के लिए सभी-कुछ किया जाता है।"

नर्वदा ने हँसकर कहा, "तू ग्रपनी बात बता! तेरा पति तो ठीक है?"

शारदा ने कहा, "ग्ररी, घर-घर यही हाल है। दूर का ढोल सुहावना लगता है। ग्रब तो जमाना यह है कि न तू ग्रपनी कह, न मैं ग्रपनी कहूँ। गुम-सुम ज़िन्दगी चलती रहे। ग्रपनी जो समस्या है वह ग्रपने मन में ही ग्रटकी रहे तो ग्रच्छा है। दूसरा सुनता है तो उपहास करता है। एक की चार बातें बनाता है।"

नर्वदा ने कहा, "यही बात है। आज अपना कोई नहीं है।"

शारदा बोली, "मेरा विवाह क्या हुआ, जीवन ही बदल गया। विवाह के साल भर बाद ही सास-ससुर ने जुदा कर दिया। रहे पति महाशय, उन्हें दुनिया की कोई खोज-खबर नहीं थी। जब सिर पर रोटियों की चिन्ता सवार हुई तो लगे जिस-तिस को नौकरी के लिए कहने।"

नर्वदा ने कहा, "तेरा पति तो समझदार है। सलीकेवाला है!"

शारदा बोली, "अरी, दूसरे क्या जानें पेट का हाल! हाँ, ऐसे क्या ज़िन्दगी का यह पहाड़ उठता है? वह तो यह कहो, भाग्य ने साथ दिया, काम अच्छा मिल गया। चार पैसे आने लगे। नहीं तो, बाबूजी को दिन में ही तारे गिनने पड़ जाते।"

उसी समय कुछ देर पूर्व आई हुई एक बहू ने कहा, "यह शारदा बीबी चतुर हैं। मैंने सुन लिया है कि यह घर चलाना जानती हैं।"

शारदा ने कहा, "जब आदमी चार पैसे न लाये तो औरत की चातुरी भी धूल में मिल जाती है।"

वह बहू बोली, "यह तो ठीक है, पर आदमी चार पैसे भी लाये और घर वाली उनका ठीक से उपयोग न करे तो भला उस घर को क्या भगवान आकर सँवारेगा? तुम्हारी माँ कहती थी कि तुम चतुर हो।"

नर्वदा ने कहा, "शारदा बहिन ने यह गुण अपनी माँ से लिया है। इसकी माँ भी होशियार है।"

उसी समय शारदा ने बात बदली और शुभदा से कहा, "तो खूब पहाड़ों की सैर की, भाभी! मन लगा?"

शुभदा उस समय कुछ अनमनी थी। बैठी-बैठी थक चली थी कि जयन्त के लिए चाय तैयार करे और ट्रे में लगाकर बाहर भेज दे। इस-लिए जब औरतों का आना-जाना बन्द नहीं हुआ तो यह काम उसने नौकर को बताया। तभी उसने शारदा की बात सुनकर कहा, "वहाँ की जलवायु तो अच्छी थी। मैं तो रात में कम्बल ओढ़ती थी।"

एक औरत ने पूछा, "तो अंजना अब गाँव में नहीं आयेगी?" उसने स्वयं कहा, "अब क्या आएगी। उसका यहाँ कौन है? माँ-बाप भी

भगवान के घर गये।"

तभी नर्वदा ने चुटकी ली, "वाह, उसका इस गाँव में है क्यों नहीं कोई···ये जयन्तबाबू···"

उस औरत ने कहा, "अरी, नहीं री ! तू जिस लकीर को पीटती है उसका अब कोई अर्थ नहीं। जयन्तबाबू का अपना रास्ता है, अपना घर है।"

नर्वदा ने कहा, "इस आदमी का कोई भरोसा नहीं।"

उस प्रौढ़ा ने कहा, "भरोसा क्यों नहीं। जो आदमी कल था वह आज नहीं और आज वाला कल नहीं। जानती नहीं कि आदमी भी नित-नित बदलता है। यह दुनिया तो ऐसा साँचा है कि जिसमें सभी को ढाल दिया जाता है। देखती नहीं कि उस अंजना का रास्ता और है, और इस जयन्त का और।"

उसी समय एक-एक कर औरतें खड़ी हुईं और उस घर से लौट चलीं। जब शारदा चली, तो वह बोली, "भाभी, फिर आऊँगी। देखती हूँ तुम दुबली होकर आई हो। सच, कुछ बदली लगती हो।"

शुभदा ने सूखी मुस्कान के साथ कहा, "मैं वहाँ बीमार हो गई थी।"

मुस्कान भरकर शारदा बोली, "शरीर से या मन से ?"

शुभदा सहज भाव से बोली, "समझ लो दोनों से।"

शारदा जाती हुई बोली, "मैं समझती हूँ, मैं भी औरत हूँ न, तुम्हारे मन की पीड़ा पहचानती हूँ, फिर बातें करूँगी।"

शुभदा ने कहा, "हाँ, आना। अब मैं भी थकी हूँ। तुम्हारे भैया ने अभी सुबह से चाय भी नहीं ली है। घर की हालत भी बेढंगी है।"

शारदा बोली, "हाँ-हाँ, बच्चों को भी बुलाओ, उन्हें दूध दो।" वह चली गई।

शुभदा रसोईघर की ओर बढ़ गई।

उसी समय जयन्त बच्चों के साथ घर में आया। वह घर के आँगन में चारपाई पर बैठ गया। बच्चे रसोई में गए, माँ से दूध माँगने लगे।

शुभदा ने स्टोव पर चाय का पानी रख दिया था। बच्चों की बात सुनकर उसने कहा, "हाँ-हाँ, अभी देती हूँ। तुम पापा के पास चलकर बैठो।"

बच्चे फिर पापा के पास लौट आए। चारपाई पर चढ़ गए। ललित जयन्त की गोद में बैठ गया।

उसी समय बाहर से आवाज़ आई, "जयन्त बाबू !"

जयन्त ने कहा, "कौन, हरीश ! आओ, भाई !"

हरीश अन्दर आ गया, साथ में मलखान था। घर में आते ही मलखान ने ऊँची आवाज़ में कहा, "भाभी तुम्हारे हाथ की चाय पीये बहुत दिन हो गए हैं सो आज ऐसा मौका हाथ आया है।" और वह हरीश के साथ चारपाई पर बैठ गया।

उसी समय शुभदा कुर्सी उठा लाई।

मलखान ने कहा, "तुम क्यों लाई, मैं ले आता !"

शुभदा मुस्कराई, "नहीं, ऐसी कोई बात नहीं।"

जयन्त ने हरीश की ओर देखकर कहा, "कहो, कब आये ? अब तो छुट्टियाँ होंगी कालेज की ?" हरीश प्रोफेसर था।

उसने कहा, "हाँ, छुट्टियाँ हैं। यहाँ आकर देखा तो तुम नहीं थे। भाभी भी नहीं थीं। घर बन्द था। घर के नौकर मलादू से पूछा तो पता चला कि तुम्हारे लौटने का उसे भी कोई ज्ञान नहीं कि कब आओगे।"

मलखान ने कहा, "अजी, रूठे हुए पति मनाकर लाए गए हैं। रुक्मणीदेवी को स्वयं मथुरा जाना पड़ा।"

सुनकर हरीश हँस दिया। जयन्त भी मुस्कराया।

उसी समय ट्रे में चाय, मिठाई लेकर शुभदा वहाँ आई।

मलखान ने कहा, "भाभी, मैं तुम्हारी वकालत कर रहा हूँ।"

हरीश ने कहा, "तभी तो यह मिठाई मिल रही है।"

शुभदा बोली, "यह मिठाई तो कभी भी खाते हैं। जब मन में आई, अपनी इस भाभी का सिर आ चाटते हैं। इतनी बातें करते हैं कि मेरा दिमाग खप जाता है।"

मलखान बोला, "तो भाभी, मैं क्या करूँ। जयन्त भाई को तो फ़ुरसत नहीं अपने मरीज़ों से, तब तुमसे ही क्यों न बात करूँ ?"

शुभदा ने कहा, "हाँ-हाँ, तुम खूब बातें करो। देखो, चाय ठण्डी हो रही है, उसे उठाओ। मिठाई खाओ।" और वह फिर रसोईघर की ओर बढ़ गई।

सत्ताईस

यों कई मास बीत गये, जयन्त गाँव में आकर फिर अपने काम पर लग गया। सभी कुछ सुचारु रूप से चलने लगा। किन्तु स्थिति यह थी कि जयन्त पहले के समान अब न तो शुभदा से खुलकर बोल पाता था, न हँस पाता था। मानो वे दोनों एक बार हृदय से जुदे हुए तो फिर जुड़ने के लिए उद्यत नहीं हैं। इस बीच में जयन्त ने एक नई बात यह अवश्य की कि उसके पास जितनी चल और अचल सम्पत्ति थी, वह सभी शुभदा के नाम लिख दी। जिस दिन जयन्त नगर से उस वसीयत का कागज़ लेकर गाँव लौटा तो उस कागज़ को देखकर शुभदा ने एकाएक कहा, "मेरे लिए इसका उपयोग क्या है! औरत को पति चाहिए; वही उसका सम्बल है!"

सुनकर सीधे-स्वभाव से जयन्त ने कहा, "जब सभी को धन-सम्पदा चाहिए तो तुम्हें क्यों नहीं! मेरे खयाल से तुम्हें भी चाहिए।" वह बोला, "और रही पति की बात, वह तो तुम्हारे समक्ष प्रस्तुत है। तुमसे बँधा है।"

तुरन्त ही शुभदा ने कहा, "नहीं, नहीं, पति मुझसे नहीं बँधा। मेरा नहीं!" वह साँस भरकर बोली, "औरत को क्या चाहिए, कदाचित् तुम नहीं समझते। यदि जानते हो, तो कहना नहीं चाहते।"

सहज भाव से जयन्त मुस्करा दिया, "सचमुच, मैं औरत का विज्ञान नहीं जानता। किसी और को समझ सकूँ या नहीं, परन्तु तुम्हें पहचानने की शक्ति नहीं पाता।"

उसी क्षण उसके मन में आया कि कह दे, तुम्हारे मन की स्थिति ठीक नहीं है। तुम्हें प्रमाद का रोग है। और तभी वह शुभदा को यह बताने के लिए व्यग्र हो उठा कि पहाड़ पर तुमने जिस प्रकार मेरी और अंजना की छुपकर बातें सुनीं उसी का यह प्रतिफल है कि तुम्हें चोट लगी। आखिर तुम्हें छुपने की क्या आवश्यकता थी। मेरे पास ऐसी कोई बात नहीं जो गुप्त हो। अंजना अब भी मेरे समीप है, मेरी आत्मा के कोने में स्थित है।

किन्तु जयन्त देखता था कि कदाचित् मेरी और अंजना की बात

सुनकर ही यह शुभदा अब अधिक स्नेहमयी और अनुरागमयी बन चली है। हाँ, इसने समझ लिया है न कि इसके मन का चोर पकड़ा गया है। इसका पत्नीत्व-पद खण्डित हो गया है। उस क्षण के समान यह बात पहले भी उसके मन में आई, परन्तु अपने विचार और स्वभाव के अनुरूप उसने तब भी कहा, नहीं, नहीं, इस शुभदा का भी स्थान है। सभी जीवन में भूल करते हैं। यों इस शुभदा की किसी बीती दुर्बलता को कुरेदना, उसका प्रतिशोध लेना मेरे लिए अनैतिक है, अविचार है। अब यह शुभदा दो बच्चों की माँ है! पति के रूप में क्या मेरी यह भ्रष्टता नहीं कि मैं आज भी उस अंजना के प्रति झुका हूँ, उसी के स्मरण में आनन्द पाता हूँ। भला क्यों?

उसने शुभदा के सिर पर हाथ रखा। उसकी वेदना से भरी आँखों को देखकर बोला, "शुभदाजी, मैं अपराधी हूँ। तुम समझो कि तुम्हारे प्रति मेरे मन में कुछ नहीं है,—हाँ, सच!"

शुभदा भी उस समय अपने मन का चोर प्रकट करना चाहती थी, अतएव अश्रुपूर्ण होकर बोली, "मैं समझती हूँ, तुम मेरी हीनता को पाकर ही…" और उसने तड़पकर अपना सिर जयन्त के घुटनों पर पटक दिया।

जयन्त बोला, "मैं तुम्हारा कोई अपराध नहीं मानता, शुभदा! परिस्थिति सभी कुछ कराती है। एक मुझे देखो न, मेरा यह अपराध कम नहीं कि पत्नी के रहते हुए उस अंजना के प्रति मैं आकर्षित हूँ।"

शुभदा ने कहा, "नहीं, नहीं, वह अंजना इसी योग्य है। वह कल्याणी है। उसे तुम्हारी आत्मानुभूति चाहिए।"

जयन्त बोला, "तुम्हें भी! तुम्हें भी मेरा प्यार और ममता चाहिए, शुभदादेवी! विश्वास रखो, मैं तुम्हारा हूँ, तुम्हारा ही हूँ।"

किन्तु इतनी सांत्वना पाकर भी शुभदा के मन का चोर अडिग था, वह काँप रहा था। अभियुक्त के सदृश खड़ा था। यदि जयन्त अपने मुँह से उस पागलखाने की बात कह पाता तो निःसन्देह शुभदा को सन्तोष होता। तब वह भी अपनी बात कहती। साफ बता देती कि हाँ, वह मेरी विवशता थी। पिताजी की प्रतिष्ठा और कुलीनता की समस्या ने मेरे समक्ष वह स्थिति पैदा कर दी थी।

उसी समय जयन्त ने कहा, "शुभदाजी, मैंने समझ लिया है, हम दोनों एक ही प्रकार के तीर से घायल हुए हैं। जातिवाद और धर्मवाद हमारे पथ में पहाड़ बनकर खड़े हैं। निःसन्देह यह हमारी मानवीय दुर्बलता है, उसी का प्रतीक है। इस बार पहाड़ पर जाकर मैंने यही समझा है।" यह कहते हुए जयन्त उठा और बाहर चल दिया। उसे जाता देख, बरबस, शुभदा ने अपनी आकुल और पीड़ित बनी दृष्टि को उसकी ओर उठा दिया।

यों भी वह किसी बहस में नहीं उलझना चाहती थी। जयन्त ने कोई बात स्पष्ट नहीं कही, यह भी शुभ रहा। क्योंकि जबसे शुभदा पहाड़ से लौटकर आई तभी से उसकी यह आस्था थी कि बहस करना, पति के मार्ग में पत्थर बनना उसका काम नहीं था। पहले वह पति से लड़ती थी, अपना विरोधरूप प्रकट कर पाती थी। लेकिन अब यदि उसे अधिक क्षोभ होता तो उसे बच्चों पर उतारती। शुभदा गुस्सैल और अभिमानिनी थी, यह बात स्वयं भी समझती हो, ऐसा तो कैसे कहा जाए, परन्तु यह उसकी कमज़ोरी अवश्य थी। इसीलिए जब वह पति के साथ गाँव में लौटी तो यह विचार जयन्त पर भी कई बार प्रकट कर चुकी थी कि कुछ दिन के लिए वह अपने पिता के घर जायगी। यद्यपि, जयन्त को इसमें आपत्ति नहीं थी, परन्तु शुभदा किस विचार पर टिककर पिता के घर जाना चाहती है, इतना उसने समझ लिया था। और जयन्त की अवस्था यह थी कि वह कुछ समय के लिए बाहर क्या गया, गाँव में पहले से और अधिक चर्चा का विषय बन गया। उस चर्चा को प्रसारित करने में शुभदा का योग रहा हो या नहीं, परन्तु जो लोग जयन्त की सामाजिक और आर्थिक उन्नति को देख ईर्ष्या करते, उन्होंने अवश्य ही, इस अवस्था से लाभ उठाया। इसका परिणाम यह हुआ कि जयन्त या तो सुबह-शाम मरीज़ों के मध्य रहता अथवा एकान्त में रहता। वह गाँव के लोगों से कम-से-कम मिलने का यत्न करता। गाँव में जो मन्दिर का वृद्ध पुजारी था, वह कुछ परिवारों से सहायता पाकर मन्दिर में दीप जलाता और अपना निर्वाह करता था। जयन्त भी उसे कुछ दे देता। किन्तु इधर कुछ समय से जयन्त ने उसे कुछ न दिया था। उस ओर कोई ध्यान भी नहीं था।

एक दिन जब जयन्त सन्ध्या के झुटपुटे में, अपने घर से दूर, मन्दिर की ओर गया तो सीधा प्रतिमा के सामने जा खड़ा हुआ। कदाचित् उस दिन कोई जातिगत पर्व था, इसलिए पुजारी ने मन्दिर का आँगन साफ किया था। प्रतिमा को भी सजाकर उसके समक्ष दीया जला रहा था। उस दीपक के प्रकाश में जयन्त ने देखा कि कृष्ण की वह प्रतिमा, जिसके हाथ में बन्सरी है, सिर पर मुकुट है, और नीचे से ऊपर तक सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित है, तो उसे लगा कि जैसे समाज ऐसे सुकुमार और राज-कुमार रूप में बने कृष्ण की प्रतिमा को सजाकर अपने भगवान की कल्पना करता है। कुछ क्षण के लिए समाज उसी भावना में डूब जाना चाहता है। जीवन की समस्याओं में फँसा इन्सान जब हार मानता है, शान्ति और आत्म-चेतना की चाहना करता है, तो वह ऐसे ही एक भगवान को देख पाने की इच्छा करता है। यों उस प्रतिमा की ओर देखते हुए जयन्त ने सोचा कि भावना का रूप ही भगवान है। उस कृष्णरूपी मानव की आत्मा ऊँची थी, परम और सात्विक थी, तो वह मानव महामानव बन गया। जन-जन का पथ-वाहक ! शान्ति और प्रेरणा का दूत ! वह अमर और अमरत्व का जीवन-स्रोत !

जयन्त की आँखें भर आईं। उस दिन उसने काफी परिश्रम किया था। थका हुआ था, पेट भी खाली था। किन्तु फिर भी वह दवाखाने से उठकर घर नहीं गया, मन्दिर पर पहुँच गया।

उसी समय पुजारी वहाँ आया। उसकी गर्दन हिल रही थी। पैर काँप रहे थे। पुजारी ने अपने शरीर पर जो कपड़ा धारण कर रखा था वह अत्यन्त जीर्ण और कई स्थानों से फटा था। उस अवस्था में पुजारी को देख जयन्त का मन चीख उठा, "हाय ! ऐसा है, यह पुजारी ! भगवान की सेवा करने वाला भी अभावग्रस्त है !"

किन्तु पास आते ही पुजारी ने कहा, "अरे, तुम जयन्त भैया !"

जयन्त ने कहा, "नमस्कार, पुजारीजी !"

पुजारी ने कहा, "नमस्कार बाबू ! आज तो बहुत दिनों में आये। मन्दिर का रास्ता भी भूल गये। कभी आते थे जब वह चेता की लड़की अंजना थी। पर अब वह भी इस गाँव को छोड़ गई। पता नहीं अब कहाँ है। सुनता हूँ कि वह उपकार के काम में लगी है। उसके मन में

भगवान बोलता है। कोई घर से दूर जाकर गंगा में गोता लगाता है, पर उस अंजना के हृदय में ही गंगा फूट निकली है। वह उसी में गोता मारती है। मलखान मुझे बताता था कि वह अंजना दुःख को देखकर रोती है; भगवान की असली पूजा तो वही करती है।"

पुजारी से इतनी बात सुनी तो जयन्त अनायास ही गद्गद हो उठा। उसने कहा, "तो पुजारीजी, आप भी इस बात को स्वीकार करते हैं? यह मानते हैं कि इन्सान की सेवा ही भगवान की सेवा है?"

अपने स्वर पर जोर देकर पुजारी ने कहा, "हाँ, भैया! वही असली पूजा है। यह मन्दिर में दीया जलाना, चढ़ावा चढ़ाना तो दिखावा है। भला पत्थर में क्या रखा है? केवल भगवान की कल्पना है। पर इन्सान में तो भगवान है। इन्सान रोता है, तो भगवान रोता है। इन्सान हँसता है, तो भगवान भी हँसता है।"

जयन्त उस समय सचमुच ही प्रसन्न हो उठा। उसका रोम-रोम पुलकित हो गया। उसकी जेब में मरीज़ों से प्राप्त फीस के रुपये पड़े थे, जो लगभग सौ रुपये थे, वे सभी उसने निकाले और पुजारी की ओर बढ़ाकर कहा, "मैं बहुत दिन से नहीं आया। अपना हक लीजिये।"

उन रुपयों को देखकर पुजारी ने कहा, "ले लूँगा, भैया! अब तो तुम आ गये हो।"

जयन्त ने कहा, "नहीं, नहीं, लीजिये। आपके कपड़े भी फट चले हैं।"

पुजारी मुस्कराया, "इस पुजारी के कपड़े क्या, यह स्वयं फट चला है, भैया! अब यह शरीर देर तक नहीं रहेगा। तुम सभी प्रसन्न और सुखी रहो, यही मेरी आकांक्षा है।"

जयन्त ने पुजारी को रुपए दे दिए और बोला, "पुजारीजी, मैंने तो धर्मग्रन्थ नहीं पढ़े, परन्तु यह अवश्य सुना है कि इन्सानी समाज की सेवा करना ही सबसे बड़ी पूजा है।"

पुजारी बोला, "भैया, इससे बड़ी और कोई पूजा नहीं।"

जयन्त बोला, "मैंने यह भी सुना है कि पूजा करने का यह अर्थ नहीं कि उस आदमी के पास बड़ी सम्पदा आ जाए। वह सुखी बन जाए। उसका सम्बन्ध तो आत्मा से है जिसमें प्रकाश होता है। ऐसे इन्सान का

दृष्टिकोण ऊँचा और सात्विक बनता है।"

पुजारी ने कहा, "हाँ, भैया, यही बात है।"

जयन्त मुस्कराया, "इस गाँव के मन्दिर की सेवा करते आपका जीवन बीत गया, पुजारीजी ! जाने कितनों को आपने आशीर्वाद दिया, कितनों का भला चाहा। पर बताइए, आपको क्या मिला ? केवल सन्तोष ! वैसे लोगों को यह भी नहीं पता कि आप कहाँ के हैं, धरती के किस छोर पर पैदा हुए हैं। मेरी माँ ने एक बार मुझे बताया था कि आप यहाँ से दूर महाराष्ट्र में पैदा हुए। वहीं आपका विवाह हुआ। पर किसी एक बीमारी में वे सब समाप्त हो गए।"

पुजारी ने कहा, "अब तो वे सब पुरानी बातें हो गई हैं, भैया ! कभी याद आती हैं तो छाती पर एक लकीर-सी खिंच जाती है। सभी की तरह अब मेरा भी यही स्थान बन गया है। राहगीर की तरह, इस मन्दिर के कुएँ पर थका और प्यासा आ बैठा था कि फिर यहीं बैठा रह गया। संसार के अधिकांश मनुष्यों का यही हाल है, पैदा कहीं होते हैं और जाकर कहीं बसते हैं। इस मनुष्य-समाज के डेरे सदा उखड़े रहते हैं।"

जल्दी से जयन्त ने कहा, "हाँ-हाँ, यही बात है, पुजारीजी !"

पुजारी बोले, "मनुष्य स्वयं अपना एक समाज है। जहाँ बैठता है वहीं अपने अभाव की पूर्ति कर लेता है। एक दिन न यहाँ मेरी भाषा बोलने वाले थे, न समझने वाले। मुझे भी अपनी बात कहने में कठिनाई होती थी। पर अब ऐसा हुआ कि सभी कुछ सम हो गया है।"

जयन्त ने कहा, "मलखान आपके पास अधिक आता-जाता है। आज ही वह मुझे बताता था कि आप बीमार पड़े थे।"

पुजारी ने कहा, "मलखान भला है। वह दुःख-सुख पहचानता है, तुम्हारी और अंजना की सदा तारीफ करता है।"

जयन्त ने कहा, "वह मेरा बचपन का साथी है। मेरी भलाई चाहता है।"

"बड़ा अल्हड़ है, बड़ा बातूनी !" पुजारी ने कहा और हँस दिया।

जयन्त ने हाथ जोड़े और चल दिया। जब वह अपने घर गया तो देखता है, मकान के बाहर चबूतरे पर पड़ी चारपाई पर मलखान पड़ा है। वह जाग रहा है। जयन्त को देखते ही वह उठ खड़ा हुआ और

बोला, "तुम कहाँ गए थे, भैया ! मैं देर से बैठा हूँ।"

जयन्त ने कहा, "क्यों, खैर तो है ? जब तुम आते हो तो मुझे बुखार चढ़ आता है। लगता है कि ज़रूर तुम्हारे पास कोई समस्या है।"

मलखान हँस दिया, "अरे, भैया ! समस्याओं से तो यह संसार भरा है। शायद यही जीवन है। आदमी इसी में उलझता है। और मुझमें तो किसी समस्या या किसी की आपदा को सुलझाने की शक्ति है नहीं। इसलिए तो क्यों न तुम सरीखे समर्थ व्यक्तियों का सहारा लिया जाए।"

जयन्त ने कहा, "हाँ-हाँ, मुझे कब इन्कार है।"

मलखान बोला, "अगर तुम अधिक भूखे न हो, तो मेरे साथ चलो। शुभदा भाभी मुझ पर नाराज़ होंगी तो सुन लूँगा।"

जयन्त चारपाई पर बैठ गया और बोला, "कहाँ ले चलना है, रे !"

मलखान बोला, "चमारों के पुरवे में ! धनपत चमार का जवान लड़का जाने कैसे बीमार पड़ गया। दो दिन से बोल भी नहीं रहा है। उसके पास कुछ भी देने को नहीं है, दवा के साथ जो पथ्य बताओगे, उसका पैसा भी···"

जयन्त हँस दिया, "वाह-वाह ! तेरा भला मरीज़ है, रे ! अच्छा, चल ! दवाखाने से पेटी ले।"

दोनों उठ पड़े। दवाखाने से दवा की पेटी के साथ जयन्त ने मेज़ की दराज़ से कुछ रुपए भी निकाल लिये और वह मलखान के साथ चल दिया। जब वह गाँव का पूरा चक्कर काटकर चमारों के पुरवे में पहुँचा तो धनपत चमार के घर में प्रविष्ट होते ही उसे लगा, सचमुच, कहने को इन्सान धरती पर आ पड़ा है, परन्तु जाने क्यों नाबदान के कीड़ों के सदृश यह इन्सान सड़ रहा है। उसने देखा कि धनपत का लड़का जिस कोठरी में पड़ा है वह छोटी-सी है। आले में रखे मिट्टी के दीया से धुआँ चारों ओर फैल रहा है। बदबू उठ रही है। कोठरी के बाहर जो गली है, निश्चय ही, वह वर्षों से साफ नहीं की गई है। उसकी बदबू उस कोठरी में भी रही है। जिस चारपाई पर बीमार पड़ा है, वह भी टूटी पड़ी है। बीमार की कमर धरती को छू रही है, चारपाई पर ठीक से कपड़ा भी नहीं बिछा है, शायद उस घर में किसी के बदन पर शऊर का कपड़ा नहीं है। बीमार की बहू जो जवान है, दो-तीन वर्ष की विवाहिता है,

घूंघट काढ़े वहीं बैठी है। उसका एक बच्चा वहीं ज़मीन पर पड़ा बिलख रहा है और कदाचित् दूसरा पेट में···" बीमार की परीक्षा करने से पूर्व जयन्त ने इतना सब देखा तो वह अनायास सहम गया। उसे लगा कि भगवान दरिद्रता में और बोझ बढ़ाता है, विभिन्नता फैलाता है। उसने बीमार की परीक्षा की। नब्ज़ देखी, छाती देखी, आँखें देखीं। उसने पूछा, "इसे कब से बीमारी है ?"

बूढ़े धनपत ने कहा, "सरकार, दस दिन हो गए।"

"और दवा नहीं दी ? बीमारी बढ़ा दी। इसका मियादी बुखार बिगड़ गया है। सावधानी चाहिए।"

धनपत गिड़गिड़ाया, "डॉक्टरसाहब, मैं गरीब···बूढ़ा···"

आतुर बनकर जयन्त ने कहा, "हाँ-हाँ, गरीब होना कोई पाप नहीं। मन से गरीब मत बनो।" उसने पेटी खोली और कुछ गोलियाँ दीं। बीमार को एक इंजेक्शन लगाया। तभी वह जेब से दस रुपये का नोट उस धनपत के हाथ पर रखता हुआ बोला, "इस बीमार को दूध देना और कुछ नहीं। दिन में चारपाई भी बुनवा लेना। कल शाम को मुझे बताना।"

उसी समय मलखान ने पेटी उठा ली और चलने लगा। धनपत बोला, "भगवान तुम्हारा भला करे !"

जयन्त ने कहा, "चिन्ता न करो। भगवान ठीक करेगा।" वह चल दिया।

रास्ते में मलखान ने कहा, "देखा भैया, कितना गरीब है। रहने को भी ठीक से स्थान नहीं।"

जयन्त ने दुखित मन से कहा, "सचमुच ! इन्सान दुःखी है, मोहताज है। धनपत की कोठरी में रहना तो मौत को निमन्त्रण देना है।"

मलखान बोला, "सड़े हुए नाबदान के कीड़े भी इसी तरह ज़िन्दगी बिताते हैं।"

तेज़ चाल से चलते हुए जयन्त ने कहा, "यह इन्सान भी कीड़ा है··· नाबदान में सड़ता हुआ···निरा बेचारा और दीन।"

अट्ठाईस

गाँव में आकर भी जयन्त इस बात को नहीं भूला था कि जिस समय वह उस पहाड़ी क्षेत्र के अस्पताल से चला तो वहाँ के स्टेशन पर बिदाई देते समय अंजना देर तक अपनी आँखों के आँसू रोके रही थी। निश्चय ही, वह उन आँसुओं का प्रदर्शन करने के लिए तत्पर नहीं थी। किन्तु जब गाड़ी छूटी तो वह अश्रु-जल आँखों के द्वार पर आया और उसके गोरे गालों पर बह गया।

उसी समय प्रोफेसर ने सुनाया, "यह क्षेत्र तुम्हें याद करेगा। तुम्हारा ऋणी रहेगा।"

जयन्त ने कहा, "मैं याद रखूँगा कि यहाँ के वासियों की सद्‌भावना पाई, प्यार पाया। मैं अपना समय यहाँ आकर भली प्रकार बिता सका। हर्ष है कि यहाँ के लोगों की सेवा करने का अवसर पा गया।"

उस समय अस्पताल का वृद्ध चौकीदार और जयन्त के साथ काम करने वाली नर्सें भी रो पड़ी थीं। उन्हीं में एक गौरी नाम की नर्स भी थी। वह अतिशय अल्हड़ और चंचल थी। जब वह अपने आँचल में मुँह डालकर सुबक पड़ी तो जयन्त ने कहा, "अरे, तू भी रोती है, गौरी! तेरा कोई काम हो तो मुझे लिखना। कभी-कभी अपने कुशल समाचार देती रहना।"

प्रोफेसर ने कहा, "मैं आऊँगा। तुम्हारे गाँव में पहुँचूँगा।"

जयन्त ने कहा, "आप आएँ तो मेरा सौभाग्य होगा। पर आपका वहाँ आना कठिन लगता है। क्योंकि आप पर यहाँ का उत्तरदायित्व।"

प्रोफेसर ने कहा, "नहीं। मैं भी स्वतन्त्र बनूँगा। यहाँ का सब काम अंजना का है।"

जयन्त ने कहा, "अंजना अभी दुर्बल है। उसे आपकी सहायता चाहिए।"

प्रोफेसर ने कहा, "हाँ, यह तो मैं देख ही रहा हूँ। इसकी आँखों में भरे ये आँसू भी सिद्ध करते हैं कि मन की ममता अभी नहीं गई। तुम्हारा आना इस अंजना के लिए बहुत सहायक बन गया था।"

जब गाड़ी छूट चली तो अनायास अंजना ने जयन्त के पैरों को हाथ लगाया और कहा, "कुछ कहा हो तो भूल जाना। आ सको तो आना।"

उस समय जयन्त स्वयं इतना आकुल और गम्भीर बन गया कि बोल नहीं सका। यही अच्छा हुआ कि वह रो नहीं सका। उसी समय गाड़ी ने प्लेटफार्म छोड़ दिया।

किन्तु गाँव में आकर जब भी जयन्त एकान्त में होता तो वह प्रायः सोचता कि वह अंजना भिक्षुणी भले ही बन गई, परन्तु जो भावना बचपन से उसे आलोड़ित करती रही, वह आज भी जीवित है। जब किसी मरीज़ को देखने के लिए जयन्त उस हरिजनों के पुरवे में जाता, तो अंजना का मकान देखकर प्रायः ठिठकता और सोचता, एक दिन था कि वह यहाँ आकर बैठता था, मधुर भावना का सृजन करता था। अब वह मकान टूट-फूट गया है। किसी पड़ौसी के ढोर उसमें बँधे रहते हैं। जनहीन बनकर वह मकान भी खण्डहर हो गया है। इसके विपरीत जयन्त का मकान पहले की अपेक्षा अधिक शानदार है। वह नये सिरे से बना है। किन्तु उस खण्डहर बने मिट्टी के ढेर को देख जयन्त के मन में आता कि वह उसे नमस्कार करे, क्योंकि वहाँ पर बैठकर उसने जीवन की नई अनुभूति पाई थी और जाने किस जन्म के संस्कारवश उस अपरिचित अंजना को अपनी पा सका था।

इस प्रकार जब से जयन्त गाँव लौटा, तो वह पहले की अपेक्षा न तो डॉक्टरी के काम में अधिक समय देता और न ही पहले के समान रुपया उपार्जित कर पाता। कोई मरीज़ पैसा न देना चाहता तो वह टाल देता। यों फुरसत के समय वह घर पर भी कम बैठता। वह या तो जंगल में घूमता या अपने बैठकखाने में बैठा हुआ किसी किताब को पढ़ता रहता। उन दिनों उसका अध्ययन का क्रम भी बदल गया था। वह कभी उपन्यास न पढ़ता, कहानी भी नहीं; या तो इतिहास पढ़ता अथवा दार्शनिक ग्रन्थ।

ऐसी अवस्था में ही एक दिन शुभदा ने कहा, "मैं अपनी माँ के पास जाऊँगी।"

सुनकर जयन्त ने तुरन्त कह दिया, "हाँ-हाँ, क्यों नहीं।"

निश्चय ही, उस समय कदाचित् शुभदा यह सुनने की आकांक्षित

थी कि जयन्त उसे जाने से रोके। कह दे, ऐसी क्या ग्रावश्यकता है। किन्तु उसने जब तुरन्त ही दो शब्दों में ग्रपनी सम्मति प्रकट कर दी तो शुभदा फिर बोली, "हाँ, मैं सोचती हूँ, इस ग्रवस्था में मेरा इस घर से भी दूर रहना ग्रच्छा है। कुछ समय के लिए ज़रूर तुम्हें ग्रकेले रहना पसन्द ग्रा सकता है। माँ ने मुझे बुलाया भी है। पिताजी को कुछ तकलीफ है।"

ग्रपने स्वभाव के ग्रनुरूप शुभदा ने जिस स्वर में बात कही थी उससे जयन्त चकित नहीं बना, ग्रतएव वह कुछ नहीं बोला। वह घर के ग्राँगन से उठकर बाहर की ग्रोर चल दिया। वह उस समय दवाखाना बन्द करके ही घर में गया था। ग्रतएव फ़ुरसत में था। किन्तु उस ग्रवस्था में, जिस प्रकार शुभदा ने ग्रपनी बात कही थी, जयन्त ग्रनायास ही विषम ग्रौर गम्भीर बन गया। उसका मानसिक स्तर भी त्रस्त हो उठा। ग्रतः वह एकान्त चाहता था। उन दिनों जंगल में हरियाली थी। चारों ग्रोर खेतों में कुछ-न-कुछ दिखाई देता था। लेकिन ग्रभी जयन्त ग्रपने घर से कुछ दूर ही चला था कि तभी पीछे से हरीश नाम का युवक समीप ग्रा गया। उसने कहा, "मैं तुम्हारी तरफ जा रहा था। कहीं, किधर जाने का विचार हुग्रा है ?"

जयन्त ने कहा, "निरुद्देश्य !" वह बोला, "सुनाग्रो, तुम्हारा कालेज कब खुलेगा ?"

हरीश ने कहा, "ग्रभी एक सप्ताह ग्रौर है। यहाँ समय नहीं कटता। जब कालेज में जाना हूँ तो छुट्टी की इच्छा होनी है, परन्तु इन छुट्टियों में तो···"

बात तोड़ते हुए जयन्त ने कहा, "ग्रादत की बात है। बेकारी में समय नहीं बीतता।"

दोनों गाँव से बाहर निकल चले। उस समय सन्ध्या का समय था, इसलिए किसान खेतों से लौट रहे थे। जो व्यक्ति भी सामने पड़ता वह जयन्त का ग्रभिवादन करता क्योंकि उन दिनों वही उस गाँव का विशिष्ट व्यक्ति था। उससे लोगों का स्वार्थ पूरा होता था।

यह देखकर ही हरीश हँसा, "देखो जयन्त, अब तुम इस गाँव के मुखिया हो, सम्पन्न हो।"

जयन्त मौन रहा। वह सामने से आते हुए आकाश में उड़ते बगुलों के एक दल को देखने लगा जो दिन-भर के बाद अपने घर की ओर लौट रहा था।

किन्तु हरीश ने फिर कहा, "भैया, इस जगत् में जिसका जिससे स्वार्थ पूरा होता है वही सिर झुकाता है। यह स्वार्थ की दुनिया है।"

जयन्त ने कहा, "तो इसमें आपत्ति क्या ?"

हरीश बोला, "आपत्ति तो है, संसार मतलबी है।"

जयन्त हँस दिया। वह एक खेत के डौले पर खड़ा हो गया।

तभी हरीश ने फिर कहा, "मैं तुम्हारे पास आ रहा था, एक नई बात सुनाने के लिए। कालेज के साथी एक प्रोफेसर का पत्र मिला है। उसी में एक व्यक्ति का उल्लेख है। वह व्यक्ति अपनी पत्नी के कारण दुःखी है, त्रस्त है। उसने अधिक शिक्षा-दीक्षा पाई है। बड़े घर की लड़की से उसका विवाह हो गया। लेकिन सांसारिक जीवन में वह इतना उपार्जित नहीं कर पाता कि जितना उसकी पत्नी को चाहिए। वह फैशनेबिल है, अतिशय महत्वाकांक्षिणी। और वह बेचारा दर्शन का प्रोफेसर ! छुट्टियों में वह पहाड़ की कन्दराओं में घूमता है, साधु-संन्यासियों के बीच बैठता है। मेरे साथी ने लिखा है कि ऐसी अवस्था में वह मर जाएगा, देर तक जीवित नहीं रह सकेगा। हाँ, एक दिन मलखान बताता था कि तुम्हारा भी शुभदा भाभी से…"

जयन्त ने कहा, "नहीं, नहीं, मैं इसे पुरुष की दुर्बलता मानता हूँ। तुम्हारे उस दर्शन के प्रोफेसर की कमी को अनुभव करके, मैं अपने को भी दोषी पाता हूँ।"

हरीश ने कहा, "नहीं, भैया ! घर की औरत को, जो पत्नी है, पति के विचारों से सहमत बनना ही चाहिए। उसका यही कर्तव्य है।"

जयन्त ने बात सुनी तो हरीश की ओर देखकर उसने कहा, "तुमने एम० ए० किया है न, तो लगता है अभी कम पढ़ा है। औरत के लिए तुम्हारा उदारपक्ष निर्बल है। लगता है कि तुम्हारे विचार भी दकियानूसी हैं।" वह बोला, "हरीशबाबू, पुरुष के साथ नारी का भी कोई अधिकार है। आवाज़ उसकी भी है। जब वह पुरुष के लिए अपना आत्म-समर्पण करती है तो क्या इतना अधिकार नहीं रखती कि पुरुष से

माँग करे ? वह उसकी शारीरिक इच्छाओं के साथ मानसिक और आत्मिक इच्छाएँ भी पूरी करे ? उसके लिए भौतिक पदार्थों की उपलब्धि करने का प्रयत्न करे ?"

हरीश ने कहा, "इस प्रकार समन्वय नहीं होता, भैया !"

जयन्त ने अपने स्वर पर ज़ोर देकर कहा, "होता है। दोनों को एक मध्यवर्ती मार्ग चुनना पड़ता है। वह प्रोफेसर भला क्यों बड़े घर की लड़की से विवाह करने के लिए तैयार हुआ ? यही अवस्था मेरी भी है। शुभदा बड़े बाप की बेटी है। लाड़-प्यार में पली है।"

हरीश मुस्कराया, "पैसा तो तुम्हारे भी पास है। प्रतिष्ठा है। ऐसा पति क्या सुगमता से मिलता है ?"

क्षुब्ध भाव से जयन्त ने कहा, "नहीं, नहीं, मैं वास्तविकता देखता हूँ। मेरे पास अभी पैसा आया है। मैं एक न्यौता खाने वाले ब्राह्मण का लड़का हूँ जिसके बाप ने सूद लेकर रुपया उपार्जित किया; दमड़ी जोड़-जोड़कर मुझे पढ़ाया। मेरे माता-पिता कितने अभावग्रस्त थे, उसे मैं आज भी याद करता हूँ। लेकिन शुभदा ने तो कभी अभाव नहीं देखा। इसलिए वह पति के घर आकर अधिकतम भोगों की कल्पना करती है। कौमार्य में उसकी अपने पति के लिए जिस प्रकार की कल्पनाएँ थीं, जब उन्हें नहीं पाती तो क्षुब्ध बनती है, विद्रोह से परेशान होती है। निश्चय ही उस दार्शनिक प्रोफेसर की पत्नी भी इसी विद्रोह से भरी होगी। परेशान होगी।"

साँस भरकर हरीश बोला, 'तो अब क्या हो ? उसकी पत्नी भी अतिशय सुन्दर है। अपने नगर के एक सम्पन्न एडवोकेट की लड़की है।"

जयन्त बोला, "अब क्या होगा ! वह प्रोफेसर या तो मर जाएगा या कुढ़-कुढ़कर जीवन बितायेगा।"

हरीश ने कहा, "सचमुच, वह दुःखी है। उसकी मानसिक गति बदल चुकी है। वह पत्नी से दूर रहने की चेष्टा करता है। उसकी वह मधुर और सलोनी पत्नी अपने पिता के यहाँ से एक विलायती कुत्ते का बच्चा ले आई थी, तो वह उसी को अपना प्यार प्रदान करती है। आगे दिन किसी-न-किसी बात पर वह पति से लड़ती है। मैंने तो उस प्रोफेसर को सलाह दी है कि वह पत्नी से त्याग कर ले। पर वह ऐसा

नहीं मानता। वह पत्नी की इच्छाओं को अशोभनीय~ अपनी माँ को वह कुछ कहती है, तो सुनता है, मुस्कराता है।" ने मेरे

जयन्त ने कहा, "तो वह धीर है, गम्भीर है।"

हरीश बोला, "पूरा दार्शनिक है। वह जब एकान्त में होगा तो बड़बड़ाएगा, कभी रो भी पड़ेगा।"

यह सुनकर जयन्त ने साँस भरी और छोड़ दी, उसने कहा, "निःसन्देह वह प्रोफेसर सीधा है, सरल है।"

हरीश ने उल्लास के साथ कहा, "सभी उसको स्नेह करते हैं। कालेज के विद्यार्थी भी उसका अपेक्षाकृत अधिक सम्मान करते दिखाई देते हैं।"

उस समय अँधेरा अधिक बढ़ गया था। गाँव में मन्दिर पर आरती होने लगी थी। शंख-घड़ियाल बज रहा था।

हरीश ने कहा, "अब लौटें ?"

जयन्त ने कहा, "हाँ, चलो।"

दोनों गाँव की तरफ चल पड़े। रास्ते में वे दोनों बातें करते जाते। हरीश बोला, "जयन्त भैया, यह भी विषम समस्या है। पत्नी का विपरीत मिल जाना आदमी के लिए घातक है।"

जयन्त ने कहा, "यही पत्नी के लिए है। मैं ऐसी अनेक स्त्रियों को जानता हूँ कि जिनके पति अच्छे नहीं, दुर्व्यसनी हैं, तो वे नारियाँ रोती हैं, आँखों के आँसू भी छुपाती हैं, जिन्दगी के अँधेरे में पड़ी सिसकती हैं।"

हरीश ने कहा, "मुझे लगता है कि विवाह की परम्परा मिट जाएगी। समय जिस तेज़ी से बदल रहा है, समाज की पुरानी परम्पराएँ अब देर तक नहीं टिक सकेंगी।"

जयन्त बोला, "ऐसा मुझे भी लगता है।"

हरीश ने कहा, "लेकिन यह अनुभूति, यह भावना ऐसे क्या रह सकेगी ? यह भी मिट जाएगी।"

जयन्त मौन ही रहा।

गाँव आ गया था। सामने आते हुए मलखान ने जयन्त को कहा, "कहाँ थे भैया, घर पर एक तार आया है। वह मैंने शुभदा भाभी को दे दिया है।"

सुनकर जयन्त घर की ओर बढ़ गया।

माँग करे ? वह
आत्मिक

तार अंजना द्वारा भेजा गया था। उसमें लिखा था कि प्रोफेसर बीमार हैं। जयन्त को बुलाया था।

उसी समय नौकर ने सूचना दी कि भोजन तैयार है। उस समय जयन्त को भूख तो लगी थी, किन्तु उस तार को पढ़कर वह एकबारगी प्रोफेसर की सीमा में पहुँच गया। क्योंकि प्रोफेसर का वह आभारी था। जो कुछ उसके पास था वह सब प्रोफेसर से प्राप्त हुआ था। अब प्रोफेसर वृद्ध हो चुके थे, कभी भी इस धरती से उठ सकते थे। किन्तु उन्होंने अपने एक जीवन में कितने विद्यार्थियों, समाज के व्यक्तियों का उपकार किया। यद्यपि इसका लेखा-जोखा तो जयन्त के पास नहीं था, तो भी प्रोफेसर के विषय में उसका ज्ञान अपरिमित था। प्रोफेसर बीमार है तो उसे वहाँ जाना अवश्य चाहिए। किन्तु वह अब शुभदा से यह नहीं कह सकता था कि उसे जाना है, प्रोफेसर बीमार है, अंजना ने बुलाया है।

जयन्त बैठा यह सोच ही रहा था कि तभी शुभदा स्वयं वहाँ आई। उसने पूछा, "किसका तार आया है ?"

जयन्त ने सीधे-स्वभाव कह दिया, "अंजना का! प्रोफेसर बीमार है।"

शुभदा ने इतना सुना, तो आतुर स्वर में कहा, "तो तुम्हें बुलाया है!" वह बोली, "बुलाया हो, तो तुरन्त जाओ। उस देवता को बचाना तुम्हारा सबसे बड़ा कर्तव्य है।"

जयन्त ने बात सुनी, तो चुप हो रहा। वह शुभदा की ओर देखने लगा।

शुभदा बोली, "सच, वह प्रोफेसर वीतरागी संन्यासी है।"

जयन्त ने साँस भरकर कहा, "सो तो है ही! प्रोफेसर परम सात्विक है। उसके लिए मैं अपना विसर्जन भी कर सकता हूँ।"

शुभदा बोली, "माँ का पत्र मिला है, बीमार है। कहोगे, तो मैं भी दो-चार दिन उधर हो आऊँगी। माँ को देख आऊँगी।"

जयन्त ने कहा, "हाँ-हाँ, तुम्हें भी माँ की सेवा करना श्रेयस्कर है। तुम्हारा वही पुण्य-तीर्थ है।" वह साँस भरकर बोला, "मेरे तो माता-

पिता अब रहे नहीं कि जिनकी सेवा करता। मैं अब भी अपनी माँ को याद करता हूँ। मैं इस बात को क्या भूल सकता हूँ कि मेरी माँ ने मेरे लिए अपूर्व त्याग किया। उसने मेरे लिए जीवन ही विसर्जित कर दिया।"

शुभदा ने कहा, "मेरी माँ की कोई और सन्तान होती तो ठीक था। एक मैं ही हूँ जिसके लिए उसके प्राण सदा भटकते हैं। पर अब ललित और सुधा को देखने के लिए उसका मन छटपटाता है। उनके लिए मुझसे लड़ती है, फटकार देती है।"

जयन्त ने कहा, "मैं कल जाऊँगा। जल्दी न लौटा तो तुम चली जाना। माँ से मिल आना।" यह कहते हुए जयन्त प्रसन्न भाव से घर के बाहर चल दिया।

वह अपने दोनों बच्चों को साथ लेता चला। वहाँ से जब वह मन्दिर के समीप पहुँचा तो उसने तारों-भरे आकाश की ओर देखकर कहा, "जो बात आज शुभदा ने प्रसन्न भाव से कही, इस प्रकार पहले नहीं कहती थी। इतनी प्रफुल्ल नहीं दिखाई दी थी। सचमुच, यह नारी जहाँ कठोर है, सरल भी है। निश्चय ही, सभी के समान यह शुभदा भी परिस्थितियों से घिरी है, उनकी दास है। यदि यह शुभदा एक बड़े ज़मींदार की पुत्री न होती तो इसके हृदय की भावना यों मोड़ न लेती, इस सरल और भावनामयी नारी को अव्यवस्थित न बनाती। और आज इस शुभदा की कठिनाई है कि वह पत्नी है, माँ है। इन दो स्थितियों में घिरी है। यों मन में आते हुए और विलोड़ित हुए विचारों के फलस्वरूप, जयन्त के मन में आया कि वह अभी घर लौट जाए और उस स्नेहमयी, स्वाभिमानिनी शुभदा को जाकर सुनाए, री शुभदा! सच, तू मेरी बात पर भरोसा कर, मेरी दृष्टि में तू अनुपम है, गंगा का पवित्र जल है। इच्छा होती है कि मैं तेरे चरणों को पखारूँ, तेरा अभिवादन करूँ।

उसी समय मन्दिर के चबूतरे पर खड़े पुजारी ने कहा, "कौन जयन्त बाबू! अरे, तुम वहाँ कैसे खड़े हो! यहाँ आकर बैठो। बच्चों को बुला लो।" और वह स्वयं खेलते हुए बच्चों की ओर बढ़ गया।

सुधा ने कहा, "पुजारीजी, प्रसाद दोगे?"

पुजारी ने गद्‌गद हो कहा, "हाँ बिटिया, क्यों न दूँगा।"

माँग के
ललित बोला, "मैं भी लूँगा।"

पुजारी ने कहा, "हाँ, तुम भी।" उसने जयन्त को लक्ष्य किया, "अँधेरे में रास्ते पर खड़े थे। क्या देख रहे थे, बाबू?"

जयन्त ने कहा, "आकाश की ओर देख रहा था। आज का निकलता हुआ चाँद सुन्दर और कलात्मक लग रहा था।"

पुजारी ने कहा, "त्रयोदशी का चाँद है। छोटा निकलता है, भला लगता है।"

जयन्त बोला, "लेकिन इस धरती पर रहने वाला इन्सान ऊपर क्या पाएगा। आकाश के तारों को गिन भी नहीं सकेगा।"

सुनकर पुजारी मुस्कराया, तनिक हँसा। उसने कहा, "बाबू, तुम तो अधिक पढ़े हो। पर मेरा खयाल है कि आदमी दूर की वस्तु को देखकर आनन्द पाता है। उसी में सुख की कल्पना करता है। दूर से चाँद भी शीतल लगता है, पर उसके उदर में भी आग है।"

जयन्त ने कहा, "सर्वत्र यही लगता है।"

पुजारी बोला, 'अभी तो यही अवस्था है। समीप की वस्तु से सन्तोष नहीं होता। आदमी अपने को जाने कितनी परिस्थितियों में ढालता है इस एक जीवन को अनेक रास्तों पर चलाता है।"

सुनकर जयन्त मौन रह गया। तभी पुजारी ने फिर कहा, "बाबू इस दुनिया में यही होता है। धोखा, छल और ईर्ष्या का धुआँ सभी ओर घुटा दिखता है। प्रणय-भोग के साथ जो समर्पण की परिपाटी है, यह जीव-जगत् उसी की आराधना में लीन बना है। सर्वत्र माया का जाल फैला है, स्वार्थ बढ़ गया है। सदा के समान आज भी आदमी अकेला है।"

यद्यपि किसी और समय भले ही जयन्त पुजारी की उस बात को ध्यान से न सुन पाता, परन्तु उस समय तो स्वयं मन लगाता हुआ बोला "पुजारीजी, रहस्य से पूर्ण है यह इन्सान का जीवन, सच, प्रभावपूर्ण देखो तो, सर्वत्र समर्पण का बोलबाला है। हाँ, इस सजे हुए संसार में क्या कुछ नहीं दीखता? इस भावभरे इन्सान में सदा ही आत्मानुभूति का आभास मिलता है। तुम्हारे मन्दिर की देव-प्रतिमा को जब मैं देखता हूँ तो उसमें भी यही पाता हूँ। समर्पण और आत्म-त्याग के अतिरिक्त भला

क्या है, इस जगत में, इस विश्व के कोलाहल में।"

पुजारी ने कहा, "सत्य है, बाबू !"

जयन्त बोला, "पुजारीजी, फिर भी मनुष्य असन्तुष्ट है।"

पुजारी ने कहा, "यह मन की दुर्बलता है। मनुष्य दुर्बल है। तुरन्त हँसता है, तुरन्त रोता है, परावलम्बी है। एकात्मीय नहीं।" वह बोला, "देर से इस मनुष्य में जड़ता है, दम्भ है।"

अपने स्वर पर ज़ोर देकर जयन्त बोला, "अन्ततः मनुष्य पशु है। शिक्षित और बुद्धिजीवी भी इससे ऊपर नहीं उठा है।"

इसी समय सुधा ने पास आकर कहा, "पापा, चलो घर !"

जयन्त ने कहा, "हाँ, चलेंगे।"

पुजारी ने एक डिब्बा उतारा और उसमें से बताशे निकालकर सुधा और ललित को दिये। वह उनके सिर पर हाथ फेरने लगा।

उसी समय जयन्त बोला, "पुजारीजी, सर्वत्र ममता और प्यार का प्रसार है। इस नर और नारी के जगत ने निरन्तर ही नई-नई अनुभूतियों और प्रगतियों का विकास किया है। देखिए तो, मनुष्य बर्बर है, क्रूर है, आततायी है, तो नारी ने अपना समर्पण करके नई और अनोखी दिशा पर फेंक दिया है।"

एकाएक पुजारी ने प्रश्न किया, "बाबू, अब तो बहूरानी से झगड़ा नहीं होता ? एक बार मलखान कहता था कि शुभदारानी बड़े घर की है, तो···"

तुरन्त ही जयन्त बोला, "पुजारीजी, मैं अपनी भी कमज़ोरी समझता हूँ। सच, शुभदा से मेरा सम्बन्ध नहीं होना था। उसे किसी बड़े घर जाना था। मैं एक देहाती, यों सीधा-सादा, बचपन के संस्कारों से निर्मित महत्वाकांक्षिणी शुभदा को यह सब नहीं रुचेगा। भला नहीं लगेगा।"

पुजारी ने कहा, "यह स्वाभाविक है।"

जयन्त ने कहा, "भूल मेरी थी। मुझे उसका प्रायश्चित्त करना ही ही पड़ेगा। लोग समझते हैं कि औरत झुकती है, पर मेरा खयाल है कि आदमी झुकता है। मुझे भी शुभदा के समक्ष अपनी आकांक्षा को मार देना होगा। यह सच ही है कि मैं भी नारी की कल्पना करता हूँ, धन की इच्छा रखता हूँ। आज तो मुझे लगता है कि मैं सेवा और आत्मत्याग

का झूठा स्वाँग रचता हूँ। मैं स्वयं दम्भी हूँ।"

साँस भरकर पुजारी ने कहा, "नहीं बाबू! तुम्हारी तो लोग बड़ाई करते हैं। तुम्हारी भावना को समझते हैं।"

क्षुब्ध बनकर जयन्त बोला, "यदि मैं अपनी पत्नी को अपने अनुरूप नहीं पाता, उसे अपना स्वरूप नहीं दिखा पाता, तो सब बेकार है। मेरी असफलता है। यदि मेरी पत्नी ही मुझसे असन्तुष्ट हो तो मेरे पास जो कुछ है वह सब बेकार है।"

लड़के ललित ने कहा, "पापा···"

जयन्त ने कहा, "हाँ-हाँ, अभी चलते हैं बेटा!" वह पुजारी से बोला, "मैं फिर यहाँ से जाना चाहता हूँ। मुझे अनुभूति चाहिए, प्रेरणा भी। कल चला जाऊँगा, प्रोफेसर बीमार है। तार आया है।"

पुजारी बोला, "बाबू, जाओ तो जल्दी लौटना। अपने इस समाज को न भूलना। यह गाँव तुम्हारा है। उसीने तुमको पैदा किया है। इसका तुम पर अधिकार है। शुभदा बहू से भी दूर न रहो।"

जयन्त ने कहा, "नहीं, नहीं, मैं उस शुभदा के सदा समीप रहूँगा। उसके प्रति अपना कर्तव्य न भूल सकूँगा। मैं जल्दी लौट आऊँगा।" यह कहते हुए वह खड़ा हो गया। उसने कुरते की जेब में हाथ दिया तो अंजना के तार के साथ अन्य लिफाफा भी उसके हाथ में आ गया। वह उसी को उलटता-पुलटता बोला, "पुजारीजी, ये सभी जीवन के धन्धे हैं, कच्चे धागे हैं, जो कभी टूटते हैं, कभी जुड़ते हैं। मेरे तो मन में है कि यदि मेरी पत्नी मुझे त्यागना पसन्द करे, किसी अन्य व्यक्ति का वरण करे, तो मैं आपत्ति नहीं करूँगा। मैं सहर्ष शुभदा के प्रस्ताव का स्वागत कर सकूँगा!"

एकाएक इतनी भारी बात सुनकर पुजारी बोला, "नहीं, नहीं, शुभदा परम है, पवित्र है।

जयन्त बोला, "हाँ-हाँ, मैं उसे पवित्र मानता हूँ। परन्तु पत्नी की इच्छा के प्रति उपेक्षित बनना मैं अशुभ मानता हूँ।"

बात सुनी तो पुजारी मौन रह गया। वह तारों-भरे आसमान की ओर देखने लगा। उसने सहज ही अनुभव किया कि ज़रूर इस जयन्त के मन में कुछ है, प्रतिक्रिया का भाव है। यह अपने मानस के अन्दर भरे

हरीले धुएँ में छटपटा रहा है। उसने सहज भाव से कहा, "नहीं बाबू, म गृहस्थ हो, बाल-बच्चेदार हो। तुम्हारे ये फूल सरीखे बच्चे..."

जयन्त ने कहा, "इन पर शुभदा का अधिकार है, मेरा नहीं।"

पुजारी बोला, "नहीं, तुम्हारा भी है। क्या तुम इन बच्चों को प्यार रना नहीं चाहते? इनसे ममता नहीं रखते? बोलो, इन्हें समाज का शिष्ट व्यक्ति नहीं देखना चाहते? अब तुम्हारी यही भूख है। केवल क यही आकांक्षा। चिर पुरातन से चली आई यही परम्परा है। अब म्हारी बारी है।"

जयन्त ने कहा, "जी हाँ, यह भी है। परन्तु इन बच्चों के समान, समाज के अन्य बच्चों को भी देखता हूँ। क्या मैं किसी और का नहीं ? पुजारीजी, मैं एक से अनेक में मिल जाना पसन्द करता हूँ।"

पुजारी ने कहा, "यह महान् आदर्श है। मनुष्य का ऊँचा विचार ।"

जयन्त ने कहा, "आप मुझे आशीष दें कि मैं इसी परम्परा का अनु-रण करूँ। मैं समाज के अन्धकार में खो जाऊँ।"

सुनकर पुजारी एकाएक अपना मत नहीं दे सका। वह अपना सिर काये खड़ा रहा।

जयन्त ने कहा, "एक बार कुछ दिन हुए आपने कहा था कि जब पके स्त्री-बच्चे मर गए तो अपना घर और प्रान्त छोड़ दिया। जीवन दरिया में बहते हुए इस गाँव में आ गए। मैं बचपन से देखता हूँ कि त गाँव के सभी आपके बन गए। सभी घरों के बच्चे आपके हो गए। झे आप परम और सुखी लगते हैं।"

पुजारी ने फिर अपनी दुर्बल दृष्टि ऊपर उठाई और कहा, "इन्सान स्वभाव है कि अपने मन का अभाव किसी प्रकार भरता है, पूरा करता । यह सच है कि जाने किस संस्कारवश मैं यहाँ आ गया। हज़ार कोस फासला लाँघकर यहाँ आ पहुँचा।" वह बोला, 'भैया, बड़ा रहस्य-र्ण संसार है यह! आदमी कहीं भी खो जाता है। किसी को भी अपना ना लेता है। यह सच है, ज़ोर-ज़बर्दस्ती से कोई अपना नहीं बनता, त्म-समर्पण नहीं कर पाता। यह तो संस्कारों की बात है। शुभदा बहू र तुम्हारा मेल रहे। तुम्हारा यह सलोना संसार फलता-फूलता रहे,

यही मेरी आकांक्षा है।"

प्रसन्न बनकर जयन्त बोला, "आपका आशीर्वाद चाहिए। समाज जिस लीक पर चल रहा है, मैं देखता हूँ कि इस बदलते समय में वह अर्थहीन है, सारहीन है। उसका उपहास होता है। आज परिवार और बच्चों को कौन महत्व देता है ? बोझ समझा जाता है।"

पुजारी ने कहा, "अब लोगों में धर्म के प्रति निष्ठा नहीं रही। किसी को आत्मवत् बनना भी पसन्द नहीं है। समर्पण और आत्मानुभूति के नारे तो लगाये जाते हैं, लेकिन व्यवहार में उसका कोई अस्तित्व नहीं है।" पुजारी ने साँस भरी और कहा, "देखता हूँ कि संसार सज रहा है, भौतिक पदार्थ बढ़ रहे हैं। नारी सज रही है तो नर भी सज रहा है, परन्तु लोग जितने ऊपर से उजले हैं, मन उनका उतना ही मैला है, घिनौना है !"

जयन्त ने साँस भरी और बोला, "निःसन्देह ! मनुष्य अन्धा है। विवेकहीन है। समाज का अधःपतन हो चुका है। पुरुष के समान नारी ने भी अपना महत्व दूसरे अर्थों में अभिव्यक्त करना आरम्भ कर दिया है।"

जयन्त चल दिया। पीछे से पुजारी ने कहा, "बाबू, नासमझी में कोई कार्य न करना, बच्चों का ध्यान रखना।"

जयन्त ने कहा, "पुजारीजी, मैं भी मनुष्य हूँ, दुर्बल हूँ। इन बच्चों में अपना अस्तित्व पाता हूँ।"

पुजारी ने कहा, "भगवान तुम्हारा भला करे !"

जयन्त चला गया। जब वह घर पहुँचा तो देखा, शुभदा अपने बिस्तर पर पड़ी जाग रही थी। बच्चे उससे जाते ही चिपट गये। माँ-माँ पुकारकर शोर करने लगे।

जयन्त ने कहा, "शुभदा, भूख लगी है।"

शुभदा बोली, "खाना तैयार है। यहीं भेजूँ या कमरे में ?"

जयन्त ने कहा, "यहीं खा लूँगा।"

ललित ने कहा, "मैं पापा के साथ खाऊँगा।"

शुभदा ने कहा, "तुम दोनों अलग खाओ। पापा को खाने दो। एक तो वह ठीक से खाते नहीं और फिर तुम शऊर से न खाओगे न खाने दोगे।"

जयन्त ने कहा, "नहीं-नहीं ! मेरे साथ खा लेंगे ।"

शुभदा बोली, "आप कहाँ गए थे ? कई आदमी आये, लौट गये । लखान भी आया था । वह तो एक-दो जगह आपको देख भी आया ।"

सुधा ने कहा, "पापा मन्दिर गये थे ।"

ललित बोला, "हमने प्रसाद खाया था । भगवान को देखा था ।"

शुभदा हँस दी और कमरे से जाती हुई बोली, "तो तुम भी भगवान को जानने लगे, शैतान !"

जयन्त ने सुधा के सिर पर हाथ रखा और उसे अपने पास बैठाकर कहा, "क्यों बेटी, तू भी भगवान को जानती है ?"

सुधा ने सिर हिला दिया और कहा, "हाँ, मैं भगवान को जानती हूँ । हाथ में मुरली, सिर पर मुकुट, बाल घुँघराले···"

सुनकर जयन्त हँस दिया । उसने ममत्व-भरे भाव में सुधा को और अधिक अपने समीप खींच लिया ।

खाना आ गया । देखा कि उस दिन एक-दो व्यंजन अधिक थे, खीर भी । देखकर जयन्त बोला, "वाह-वाह, खीर भी है !"

शुभदा बोली, "हाँ, सोचा, तुमने बहुत दिन से खीर नहीं खाई । और खीर तुम्हें प्रिय लगती है ।"

जयन्त हँस दिया, "प्रिय तो बहुत कुछ लगता है, पर क्या वह सभी कुछ मिलता है ?"

शुभदा बोली, "लगन सच्ची हो, तो ज़रूर मिलेगा ।"

बलात् जयन्त के मुँह से निकला, "एक तुम्हीं लो न अपनी बात, क्या तुम मेरे प्रति अनुरागमयी बन सकी हो ? मैं कितना तुम्हें प्रसन्न करना चाहता हूँ, पर तुम हो कि मठ की देवी के समान कभी भी रूठ जाती हो ।"

बात सुनी तो शुभदा अपने मधुर होठों से मुस्करा दी ।

तीस

दूसरे दिन के प्रातः जयन्त चला गया। उसी समय वह पहले दिन आया हुआ अंजना का पत्र उसे दे गया। किन्तु भूल से वह पत्र जयन्त ने खोल लिया और पढ़ लिया था, इसके लिए खेद भी प्रदर्शित कर गया।

वहाँ से जाने के तीसरे दिन ही शुभदा को जयन्त का पत्र मिला। कदाचित् वह पत्र उसने रास्ते में लिखा था। संक्षिप्त था। घर से चलते समय वह कुछ आवश्यक बातें शुभदा को बताना चाहता था, वे सभी उस पत्र में लिखी थीं। अन्त में शुभदा के नाम आए पत्र को पढ़ने की भूल पर पुनः पश्चात्ताप प्रकट किया और लिखा, "शुभदादेवी, एक पति अथवा व्यक्ति के रूप में मुझे यह कहना अशोभनीय नहीं लगता कि तुम अपने इस सुन्दर और भावभरे जीवन में पत्नीत्व का भले ही आदर न करो, परन्तु भाग्य से जो मातृत्व तुम्हें प्राप्त हुआ है उसकी रक्षा अवश्य करो। यदि मानवीय दुर्बलताओं ने तुम्हें ऐसा न करने दिया, तो तब, मैं नहीं समझता, फिर तुम्हारे पास क्या रह जाएगा।···पत्र की आत्मा को मैंने समझ लिया है। भरोसा रखो, सदा के समान अब भी मेरे ऊपर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ेगा।"

देर हुई कि जयन्त का पत्र पढ़ लिया गया। वह कब शुभदा के हाथ से छूटकर धरती पर गिर पड़ा, इसका भी उसे ध्यान नहीं रहा। तभी लड़की सुधा आई तो शुभदा को रोती देख वह एकाएक बोली, "ममी रोती हो, तुम!"

शुभदा नहीं बोली। वह सामने दीवार पर आँख लगाए थी, वह उधर ही देखती रही। आश्चर्य कि उसी समय घर के नौकर हरखू से चाय की प्लेट टूट गई तो उसकी आवाज़ सुनकर भी शुभदा कुछ नहीं बोली। अपने स्वभाव के अनुरूप उस पर नाराज नहीं हुई।

किन्तु बच्ची सुधा अपने भैया ललित को भी बुला लाई और शुभदा के पास आकर बोली, "ललित भैया, देखो, ममी रोती हैं।" और उसने तब स्वतः ही अपनी ममी की गोद में सिर रखकर कहा, "न रो, ममी··· मेरी माँ!"

उसी समय ललिता ने कहा, "माँ, पापा कब आएँगे?"

तब शुभदा ने साँस भरी और बच्चे के सिर पर हाथ रखकर बोली, जल्दी आएँगे, बेटा !" शुभदा खड़ी हो गई और कमरे में जाकर चार-ई पर गिर पड़ी। वहाँ जाते ही वह फिर फफककर रो पड़ी।

उसी अवस्था में उसने अपने-आप कहा, "जिसके भाग्य में दुःख और ड़ा लिखी हो, उसे कौन मेट सकता है। मेरा भाग्य ही ऐसा है।" और भी उसे याद आया, एक बार जयन्त ने कहा था, 'भाग्य बनाया जाता । बना हुआ बिगाड़ा भी जाता है।' उसी समय हरखू ने पास आकर हा, "बहूजी तुम सो रही हो, बोलो, अब क्या बनेगा !"

शुभदा ने कह दिया, "कुछ बना ले !" और वह तब उस नौकर ी ओर देखकर बोली, "क्यों हरखू, तू भी मुझे अशुभ समझता है ?" ौर उसने अपने-आप कहा, "हाँ, समझता ही होगा। मैंने सदा ही तुझे झड़कियाँ दीं···फटकारें···"

चकित बनकर हरखू बोला, "नहीं मालकिन, जब कोई कसूर करूँगा ो तुम कहोगी ही।"

शुभदा ने कहा, "नहीं रे ! आदमी तू भी है। तेरा भगवान है। पर तो ऐसे घर में पैदा हुई कि जहाँ इन्सान का सम्मान करना नहीं देखा। क्ति का प्रदर्शन करना ही वहाँ देखा गया है।"

हरखू पढ़ा नहीं था, परन्तु नासमझ भी नहीं था। उसने सहज ही नुमान लगाया कि ज़रूर कोई बात है। बहूजी दोषी हैं और तभी आज तनी उदार और अधीर दिखाई देती हैं। इसीसे, वह शुभदा की बात नकर बोला, "बड़े घरों में यही होता है, बहूजी !"

जैसे झुँझलाकर शुभदा ने कहा, "नहीं रे ! यह तो इन्सानियत का न है।"

हरखू ने कहा, "हमारे बाबूजी नाराज़ नहीं होते। कभी हुए भी, ो बाद में समझाते हैं, जैसे स्वयं ही पश्चात्ताप करते हैं।"

इतना कहकर, अभिवादन करके वह उस कमरे में लौट पड़ा। उसके ाद शुभदा को भी घर के कामों में लग जाना पड़ा।

और जयन्त जब घर से चला तो उसके अगले दिन ही पहाड़ पर स्पताल में पहुँच गया। वह सीधा प्रोफेसर के कमरे में गया। वहाँ ंजना बैठी थी। देखते ही अंजना ने कहा, "आ गये तुम ! प्रोफेसरजी ने

कई बार तुम्हारा नाम लिया था।"

जयन्त बैठ गया, प्रोफेसर की ओर देखने लगा वह। अचेत थे, बोल नहीं सकते थे।

अंजना ने कहा, "अभी चलकर आये हो, आराम कर लो।" उसने पास खड़े चपरासी को लक्ष्य किया और कहा, "चाय और कुछ जलपान का सामान लाओ। मेरे कमरे में रखो।" तभी वह जयन्त से बोली, "आओ उठो, कपड़े बदलकर मुँह-हाथ धो लो। चाहो तो स्नान कर लो।"

जयन्त उठ खड़ा हुआ। अंजना के साथ चल दिया। जब वह उसके कमरे में जाकर बैठा, तो तभी अंजना ने कहा, "बच्चे तो ठीक हैं न? बच्चों की माँ कैसी हैं?"

जयन्त ने सहज भाव से कह दिया, "हाँ, सभी ठीक हैं।"

तभी अंजना ने कहा, "मैंने इतने बीमारों की सेवा की, परन्तु कभी नहीं घबराई। लेकिन प्रोफेसर की बीमारी से मैं चिन्तित हो उठी हूँ। अपने को अकेला भी समझने लगी हूँ। तभी तुम्हें तार दिया था। सोचा, तुम आ जाओगे तो मुझे सहारा मिलेगा। वैसे प्रोफेसर ने कई बार तुम्हारा नाम पुकारा था। कदाचित् उस बेहोशी में अपने आत्मीय का नाम अनायास निकल आया होगा। आत्मा ने पुकारा होगा।"

जयन्त मुस्कराया और बोला, "तुम भी अजीब हो। एक प्रोफेसर बीमार पड़ा तो घबरा गई। और जानती हो, इस धरती पर आने वाले सभी बीमार पड़ते हैं, रोगी हैं। कोई शरीर का रोगी, तो कोई मन का।" वह स्नान के लिए बाहर जाता हुआ रुक गया और बोला, "तुम समझती हो कि मैं स्वस्थ हूँ? मैं भी रोगी हूँ। अन्तर यही है कि मैं चल-फिर रहा हूँ। मैं शरीर से नहीं, मन से बीमार हूँ।" वह चला गया। पीछे कमरे में बैठी रह गई अंजना ने एकाएक ही कहा, "सचमुच रोगी हैं जयन्तबाबू? सुखी नहीं हैं, लगता है कि घर जाकर भी उस शुभदा से मधुर सम्बन्ध नहीं बना। उसने जयन्त की अटैची खोली और उसमें से पहनने के लिए खद्दर का कुरता और पाजामा निकाला। देखा कि कुरते के बटन टूटे हैं। शायद धोबी ने तोड़ दिये होंगे। यह देख अंजना ने तुरन्त ही कमरे की अलमारी से एक डिब्बा निकाला और उसमें रखी सूई-डोरा और बटन लेकर उस कुरते पर टाँकना आरम्भ कर दिया

सी अवस्था में उसने अपने-आप कहा, 'यह काम शुभदा का था, रवाली का। पर लगता है कि वह पति के प्रति सदिच्छा नहीं रखती, उपेक्षा का भाव ही अपने मन में लिये है।' बटन टाँक दिये और कुरता रख दिया। फिर पाजामा देखा कि उसका कमरबन्द ठीक है या नहीं। उसी समय जयन्त स्नान करके लौटा। उसने पाजामा और कुरता पहन लिया, तभी जलपान आ गया। जब वह खाने बैठा तो अंजना से बोला, "तुम भी कुछ खाओ न !"

अंजना ने कहा, "मैं खा चुकी हूँ।" यह कहते हुए वह चाय बनाने लगी। उसी अवस्था में वह बोली, "अब मुझे लगता है कि सचमुच, मनुष्य सामाजिक प्राणी है। अकेला नहीं रह सकता। तुम गये तो मैंने अनुभव किया कि मेरे पास से कुछ चला गया है। मुझसे कुछ चीज़ दूर हो गई है।"

जयन्त ने चाय का घूँट भरा और कहा, "यह कमज़ोरी है। तुम्हारा समाज तो विस्तृत है। तुम्हारे सिर पर काम भी बहुत हैं।"

अंजना ने कहा, "हाँ, काम तो हैं। वे भी इतने हैं कि फुरसत नहीं। रात भी मैं दस बजे के लगभग लौटी थी। प्रोफेसर बीमार न होते तो क्या यहाँ दिखाई देती ?"

जयन्त हँस दिया, "यह अवस्था मुझ पर भी लागू होती है। शुभदा को अपने पिता के घर जाना था। नौकर से कह आया हूँ कि वह रुकना चाहे तो रुक जाये, अन्यथा चली जाये।"

अंजना ने कहा, "तो बताकर नहीं आये कि कहाँ जा रहे हो ?"

जयन्त ने कहा, "बताया तो था। उसे तार का हवाला दिया था।"

उसने चाय पी ली और खड़ा हो गया। अपनी अटैची से स्टेथिस्कोप निकाल लिया। जब वह प्रोफेसर के पास चलने को प्रस्तुत हुआ तो बोला, "अंजनादेवी, कुछ सम्बन्ध मजबूरी में बनते हैं, वे कठिनाई से निभते हैं। मेरा और शुभदा का भी यही हाल है। शुभदा भी रोगिणी है, मन की रोगिणी। उसे जो एक नया रोग लगा, उसका मुझे अभी पता चला है। भले ही वह असाध्य न हो, पर रोग का आरम्भ अवश्य है।"

चकित बनकर अंजना ने पूछा, "वह क्या···हाँ···"

जयन्त ने कमरे के बाहर पैर रखा और कहा, "उसका एक दूर का सम्बन्धी बैरिस्टर किशोर है। वह कुछ दिन पूर्व ही विलायत से पढ़कर लौटा है। शुभदा का और उसका पत्र-व्यवहार होता है। अभी मैंने उसका एक पत्र देखा तो मुझे लगा कि उस युवक बैरिस्टर को शुभदा से बातें करना अच्छा लगता है। वह कुछ समय के लिए शुभदा को अपने पास चाहता है।"

एकाएक जैसे चीखकर अंजना ने कहा, "तो, जयन्तबाबू···"

जयन्त ने कहा, "चिन्ता न करो, इससे मेरे सोचने में कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। मुझे पता है कि यह रोग शुभदा को कहाँ से लगा है। उसका पिता ज़मींदार और सम्पन्न रहा है। उसने अपने जीवन-काल में घर की औरत के अतिरिक्त बाज़ार की नारियों पर भी रुपया लुटाया है। हाँ, अंजना, पैसे का इसी प्रकार उपयोग आदमी करता है। पैसे का सदुपयोग करना तो विरला व्यक्ति ही जानता है।" वह बोला, "तुम सोचती होगी कि इससे मैं उस शुभदा को घृणा करूँगा या त्याग दूँगा। न-न, ऐसा अपराध मैं नहीं कर सकूँगा। मेरा छोटा-सा तो जीवन है, इसमें कितना बोझ उठाऊँगा। तुम्हारे साथ मैंने पाप किया ही, तो अब उस शुभदा के साथ भी ऐसा करूँ? हाँ, अंजना, मुझमें उस नारी के प्रति रोष होता, प्रतिक्रिया का भाव आता तो उस पागलखाने से लौटकर ही और उस युवक की मृत्यु का समाचार पाने के बाद ही उस शुभदा का गला घोंट देता। पर मैं कुछ नहीं करूँगा। मैं सदा ही उस नारी को क्षमा करता रहूँगा।"

रुकी हुई साँस छोड़कर अंजना बोली, "हाँ, यही मेरा कहना है। मेरी भी यही विनय है।"

जयन्त बोला, "तुम निश्चिन्त रहो। मैं अब यहाँ आया तो हूँ, पर जल्दी लौट जाऊँगा।"

वे दोनों प्रोफेसर के कमरे में पहुँच गये। उन्हें देखकर पास बैठी नर्स ने हाथ जोड़े और कहा, "मुझे अभी पता चला कि आप आये हैं। सभी को प्रसन्नता हुई है।"

जयन्त कुर्सी पर बैठ गया। उसी समय अस्पताल का डॉक्टर वहाँ आया। उसने जयन्त से हाथ मिलाया। जयन्त प्रोफेसर की परीक्षा

करने लगा। नब्ज़ देखी, छाती देखी और तब आँखों की पुतलियाँ देखकर उसने डॉक्टर से कहा, "चिन्ता की कोई बात नहीं है, प्रोफेसर साहब ठीक हो जाएँगे। अभी और आपको सहयोग देंगे।" वह बोला, "आपके अस्पताल में तो दवा होगी नहीं, वह कीमती है। लेकिन वह दवा मैं लाया हूँ, इन्हें दीजिएगा। भगवान ने चाहा तो आज शाम तक उनका कफ बाहर आ जाएगा। ठण्ड लगी है। छाती में जकड़न है। आज बोल भी सकेंगे।" उसने नर्स से कहा, "मेरी अटैची में लाल रंग की शीशी होगी, वह ले आओ, उसमें से एक गोली प्रोफेसर को दो।" यह कहते हुए जयन्त उठ खड़ा हुआ।

जयन्त डॉक्टर के साथ अस्पताल के वार्डों में घूमने चल दिया। वहीं पर उसने नर्सों से और अन्य कर्मचारियों से भेंट की। सभी के कुशल-समाचार पूछे। जब दो घण्टे के बाद वह फिर प्रोफेसर के कमरे में पहुँचा तो देखता है—अंजना प्रोफेसर की ओर झुकी है और उनकी किसी बात को सुन रही है। प्रोफेसर ने आँखें खोल दी हैं।

जयन्त ने अपना सिर प्रोफेसर के चरणों में झुकाया और तब कुर्सी पर बैठता हुआ बोला, "मैं आपकी सेवा में उपस्थित हूँ, प्रोफेसर साहब ! आदेश दीजिए !"

प्रोफेसर ने हाथ उठाया, लेकिन मुँह से कुछ नहीं कहा।

जयन्त ने अंजना से कहा, "दवा ने असर किया है। अब एक गोली और दे देना।"

अंजना बोली, "पेट खाली है। पूरे सप्ताह से कुछ नहीं दिया गया।"

जयन्त बोला, "आज दूध देना।"

अंजना ने कहा, "मैंने अभी तुम्हारे आने की बात कही तो बोले, क्यों उनको कष्ट दिया। उन्हें नहीं बुलाना था।" वह बोली, "भला ऐसी अवस्था में तुम्हें खबर न देती तो क्या यह मेरा अपराध न होता ? मुझे यही करना चाहिए था।"

जयन्त हँस दिया, "तुमने ठीक ही किया, अंजनादेवी !"

अंजना बोली, "तुम आये हो तो मुझे सहारा मिल गया। वैसे अस्पताल का डॉक्टर भी अच्छा है, उत्साही है। लालची नहीं है।"

जयन्त ने कहा, "डॉक्टर योग्य और सम्भ्रान्त है। उसके ऊँचे विचार हैं। अभी वह मुझे अपने क्वार्टर पर ले गया था। उसकी पत्नी भी सुसभ्य है। बच्चे सलोने हैं। उसका परिवार सन्तुलित और सुखी है।"

अंजना ने कहा, "डॉक्टर के बच्चे मेरे पास ही अधिक खेलते हैं। तुम्हारे बच्चे गये तो मुझे सूना-सूना लगा। पर इस डॉक्टर के बच्चों ने आकर मेरा वह अभाव दूर कर दिया है।"

जयन्त ने कहा, "यही अवस्था है मनुष्य के मन की।" वह बोला, "मेरा आज संध्या समय का खाना तुम्हारे डॉक्टर के यहाँ ही है।"

अंजना बोली, "अब क्या खाओगे?"

जयन्त ने कहा, "अब मैं सोना चाहता हूँ। रात रेल में सो नहीं सका था। मुसाफिरों की भीड़ ने सोने ही नहीं दिया। हाँ, थोड़ा दाल-चावल ले लूँगा। इस समय हल्का खाना ठीक रहेगा।"

अंजना ने कहा, "यहाँ तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक हो गया था, गाँव जाकर फिर बिगड़ गया। मैं नहीं समझती कि तुम्हारे मन में क्या आ गया।"

जयन्त इस विषय में मौन रहना चाहता था, परन्तु जब अंजना ने सीधा प्रश्न किया तो वह बोला, "स्वास्थ्य का सम्बन्ध मन से है। जब मन स्वस्थ नहीं, तो आदमी का शरीर भी स्वस्थ नहीं रहता। कदाचित् मेरे लिए भी यही बात लागू है।"

अंजना बोली, "तुम भावुक अधिक हो। अपने-आप ही मन पर चोट खाते हो।"

जयन्त कुर्सी छोड़कर खड़ा हो गया। उस समय कमरे में प्रोफेसर को छोड़ अन्य कोई व्यक्ति नहीं था। इसलिए जब जयन्त कुर्सी से उठकर कमरे की खिड़की पर जा खड़ा हुआ तो वहीं से वह अंजना की ओर देखकर बोला, "देवीजी, यदि मैं भावुक न होता, तो निश्चय ही, राज्य के कानून का अपराधी बनता। मैं खूनी हूँ।"

अंजना भी कुर्सी से खड़ी हो गई और जयन्त के पास जाकर बोली, "आह! राम-राम! कैसी बुद्धिहीनता की बात करते हो तुम!"

उसी समय नर्स आ गई। अंजना ने उससे कहा, "तुम यहाँ बैठो। हम जाना चाहते हैं।" और वह जयन्त से बोली, "आओ, हम कमरे में

चलें। तुम आराम करो। अपने मन को स्वस्थ और शान्त बनने दो।"

जयन्त सूखे भाव से मुस्करा दिया और सामने खड़े ऊँचे पर्वत को देखता हुआ उस कमरे से बाहर हो गया।

इकतीस

शुभदा के पिता पण्डित द्वारिकानाथ में सम्पन्नता के साथ रसिकता भी थी, इसका सभी को ज्ञान था। समाज के उच्चवर्ग से इनका सम्बन्ध था। अपने वर्ग के पुराने और दकियानूसी विचारों से उनके विचार मेल नहीं खाते थे। कदाचित् यही कारण था कि उनका अपनी पत्नी नारायणी से भी अनेक बातों में मतभेद रहता। नारायणी नारी थी, इसलिए उसका अपना दृष्टिकोण था। अनेक बातों में नारी की दृष्टि से भी उसे जीवन और समाज को देखना उचित लगता था। शुभदा अपने पिता की लाड़ली बेटी थी। इसलिए पिता-पुत्री में साम्य था। जब शुभदा अपने पत्रों में पति की शिकायत करती, तो नारायणी को यह पसन्द नहीं था, किन्तु द्वारिकानाथजी को यह सब पसन्द था। उन्हें जयन्त पर गुस्सा आता था। प्रायः वह इस बात पर क्षोभ प्रकट करते कि उन्होंने पुत्री को अयोग्य व्यक्ति के हाथों में सौंप दिया। इसलिए वह अपने पत्रों में शुभदा को लिखते कि वह मायके लौट आये, लेकिन नारायणी को यह पसन्द नहीं था। वह कहती थी, अब लड़की के लिए पिता का घर महत्व नहीं रखता, पति का घर ही शोभा देता है। वह कहती, पिता राजा हो तो भी रंक बने हुए पति के समक्ष उसका कोई महत्व नहीं होता। किन्तु पण्डित द्वारिकानाथ कहते, हमारी एक लड़की है, वही लड़का है। उसका दुःखी रहना मैं पसन्द नहीं कर सकता।

सुनकर नारायणी कहती, तुमसे किसी का भाग्य नहीं बदला जाएगा जैसा लड़की के भाग्य में था वह मिल गया। यदि पति अच्छा नहीं मिला तो बुरा भी नहीं मिला।

इतनी बात पर प्रायः पण्डितजी क्षुब्ध बन जाते। वह तुरन्त तड़प-कर कहते, "नारायणी, यह दकियानूसी बात मत करो। विवाह एक प्रथा या चलन नहीं है, अवलम्ब है। शुभदा को यदि जयन्त पसन्द नहीं, तो वह छोड़ा भी जा सकता है···पति तो दूसरा भी···"

एक बार जब शुभदा का पत्र पाकर यही बात चली तो नारायणी की आँखें फट गई थीं। वह विस्मय के साथ बोली, "तो तुम अपनी लड़की का दूसरा विवाह करोगे ? दूसरी बार उसके हाथ पीले करोगे ? एक पति को छोड़कर दूसरा रखाओगे, हे राम !"

पण्डित द्वारिकानाथ ने कहा, "हाँ-हाँ, क्यों नहीं। पति बदलना बुरा नहीं, व्यभिचारिणी बनना बुरा है।"

नारायणी ने कहा, "यह भी व्यभिचार की एक संज्ञा है। एक से अधिक पति की परम्परा को स्वीकार करना ठीक ऐसा है जैसे बाज़ार के पत्ते चाटना, दस घर की रोटी माँगकर खाना।"

पण्डितजी को पत्नी की बात सुनकर क्षोभ तो हुआ, परन्तु उन्होंने कड़ुवे भाव से मुस्कराकर बात को टालने का प्रयत्न किया।

किन्तु नारायणी बोली, "जिस औरत की एक पति से नहीं पटती तो क्या यह आवश्यक है कि दूसरे से पटे ! वह फिर तीसरा घर तलाश करेगी।"

"पण्डितजी बोले, "तो इसमें पाप क्या है ? एक जगह घुटकर मरने से यह अच्छा है। पुरुष नारी पर सदा अत्याचार करता आया है।"

बात सुनी तो नारायणी तीखे भाव से मुस्करा दी और बोली, "यह तुम कहते हो ! शीशे में मुँह देखो, सौ चूहे खाय बिलैया चली हज्ज को।"

सुनते ही पण्डितजी ठहाका मारकर हँस दिये।

नारायणी ने कहा, "शुभदा को लिख दो, वह अपने पति ही के घर रहे। लड़की अब भी नादान है। और वह समझती नहीं कि अब दो बच्चों की माँ है।"

द्वारिकानाथ ने कहा, "मैंने उसे यहाँ बुलाया है। वह बैरिस्टर किशोर भी विलायत से आकर कई बार लिख चुका है कि उसने काफी दिनों से शुभदा को नहीं देखा।"

नारायणी ने आतुर बनकर कहा, "हाँ-हाँ, कभी अवसर आएगा तो भी देख लेगा। अपना विवाह करे तो बुला लेगा।" वह बोली, "मैं देती हूँ, वह किशोर भी अच्छा नहीं है। सुना नहीं तुमने? वह ायत क्या गया, पूरा नशेबाज़ और कबाबी बन आया है। वह ब्राह्मण- में क्या पैदा हुआ, माँ-बाप का नाम भी उछालता है। इसी से तो विवाह नहीं करता। खुला बछेरा बना है। मेरी निगाह में वह अच्छा ीं है।"

पण्डित द्वारिकानाथ ने कहा, "तुम्हारी निगाह पुरानी है। कोई दमी औरत से हँसता या बोलता है तो वह तुम्हें खराब लगता है।"

चिढ़कर नारायणी बोली, "तुम वास्तविकता नहीं समझोगे···सच, ा जन्म में नहीं। पर मैं यह कहे देती हूँ, किशोर यहाँ आया तो मैं भदा को देर तक यहाँ नहीं टिकने दूँगी। मैं उससे साफ कह दूँगी कि ह अपने घर जाए।"

व्यग्र भाव में पण्डितजी बोले, "नहीं, नहीं, शुभदा को कष्ट होगा। ह समझेगी, जब मेरी माँ ऐसा कहती है, तो फिर इस दुनिया में कौन से अपनी समझेगा।"

नारायणी बोली, "समझा करे! मैं न्याय का पक्ष लूँगी। लड़की को मने यह भी नहीं समझने दिया कि उसका कर्तव्य क्या है, पति के घर से किस तरह रहना है।"

पण्डितजी बोले, "अब पहला ज़माना नहीं रहा। तुम देखना कि ब पति-पत्नी का यह सम्बन्ध नाम-मात्र को रह जाएगा। यदि यही थति रही, तो विवाह की प्रथा का अन्त हो जाएगा। आज भी कहने ो आदमी सामाजिक है, धार्मिक है, पर कौन इसे मानता है? सभी काकी हैं, दूर-दूर! मुझे तो लगता है कि मनुष्य शरीर की भूख मिटाने लिए, पेट की भूख की तृप्ति की तरह आचरण करेगा और पैसे देकर ौट आएगा।"

जैसे चिढ़कर नारायणी बोली, "वह तो आज भी है। ये बाज़ार की श्याएँ यही कुछ बता रही हैं। पर कहे देती हूँ, आचरण खोकर हमारा माज जीवित नहीं रह सकता। चरित्रहीन मनुष्य देर तक नहीं टिका हता। ये समाज के घरों में बने हुए चकले···यह बहता हुआ नाबदान···

यह सड़ाँद···हे परमात्मा !"

पण्डितजी ही-ही करके हँस पड़े और बोले, "बहूजी, नारी सदा पुरुष की ओर आकर्षित हुई है और पुरुष ने नारी की दुर्बलता का सदा शोषण किया है। वही तो आज है। अन्तर क्या है ! आदर्श कभी व्यावहारिक नहीं बना। सरकार बाजार से वेश्याओं को उठा रही है, तो घर-घर में चकले खुलते जा रहे हैं, यही न ! भला क्यों !" वह बोले, "जीवन के तेज़ प्रवाह में बहता हुआ इन्सान और अधिक नग्न और क्रूर बन गया है। देखती हो, यह नर-नारी का समाज कितना निर्लज्ज हो गया है ?"

रुकी हुई साँस छोड़कर, आतुर भाव में नारायणी बोली, "हाँ-हाँ, मैं देखती हूँ। तुम शुभदा को लिख देना कि किशोर से अधिक पत्र-व्यवहार न किया करे। वह अपना घर देखे, अपना पति और बच्चे सँभाले !"

पण्डित द्वारिकानाथ ये बातें सुनकर चुप हो गए और वहाँ से चल दिये। वे जाते हुए बोले, "शुभदा आ रही है, उसका पत्र आया है।"

नारायणी ने इतनी बात सुनी तो चकित रह गई। वह क्षणभर के लिए अपने-आप में खो गई। निःसन्देह, उसे यह बात अच्छी नहीं लगी कि शुभदा अपने पति की इच्छा के विरुद्ध आचरण करे, उसकी बिना अनुमति के आए। लेकिन शुभदा आ रही है, उसके बच्चे आ रहे हैं, यह जानकर नारायणी को बुरा नहीं लगा। उसके शान्त और नीरस बने घर में फिर चहल-पहल होगी। बच्चे इधर-उधर दौड़ेंगे, शोर करेंगे। घर नौकर दिन-भर पड़े ऊँघते हैं, मुफ्त के पैसे पाते हैं तो उन्हें अब कुछ काम करना पड़ेगा।

उसी समय वहाँ रसोई बनाने वाली महाराजिन आ गई। वह उस घर में काफी समय से काम करती चली आ रही थी। वह विधवा थी। उसकी एक लड़की थी जो बाल-बच्चेदार थी। मिसरानी को देख नारायणी ने एकाएक प्रश्न किया, "अरी गंगा, बता तो, तेरी लड़की और दामाद में झगड़ा होता है या नहीं ?"

यह अप्रत्याशित बात सुनी तो गंगा और निकट आ गई। बोली, "मालकिन, यह भी कोई कहने की बात है ! जहाँ दो बर्तन होंगे वहाँ खड़केंगे ही। मियाँ-बीवी के झगड़े भी भला कोई झगड़े हैं ! जहाँ एक ने

दूसरे से दो मीठी बात कीं, तो बस, मिट गया झगड़ा।" कहते हुए वह गंगा मुस्करा दी।

नारायणी ने कहा, "तेरी बात तो ठीक है। पर मेरी शुभदा तो बस, जब देखो तब, अपने आदमी की बुराई लिखती है।"

गंगा बोली, "तुम्हारी शुभदा भाग्यवान है। वह समझती है न कि माँ-बाप को भी उसकी आवश्यकता है। ससुराल का घर तो उसकी ओर देखता ही है, मायका भी उसे निहारता है।"

नारायणी ने एक दीर्घ निःश्वास लिया। उसने पानदान का डिब्बा सामने खींच लिया और पान पर चूना लगाने लगी। उसी पान पर सुपारी और तम्बाकू रखकर मुँह में लेती हुई बोली, "गंगा, मेरी यही चिन्ता है कि इस शुभदा की ज़िन्दगी कैसे कटेगी। वह मिज़ाज की कड़ुवी और अक्ल की नादान है।"

गंगा बोली, "न, मालकिन ! शुभदा बिटिया बड़ी भली है। और अपनों पर गुस्सा कौन नहीं करता ! गलत बात पर सभी को कहना आता है। पर शुभदा बिटिया का भाग्य तो सभी तरह से अच्छा है। जयन्तबाबू सरीखा पति मिलना क्या आसान है ?"

नारायणी ने कहा, "अरी गंगा, आदमी तो भला है, नेक है। पर अन्तर यही है कि उसने ऊँचाई की ओर नहीं देखा, उसका बचपन तो गरीबी में बीता। माँ-बाप न्यौता खाने वाले ब्राह्मण रहे। और यह शुभदा बचपन से ही हुकूमत करती रही है। राजे-महाराजों की सन्तानों की तरह पाली-पोसी गई है।"

गंगा ने कहा, "यह बात तो ठीक है, माँजी ! बड़ा अन्तर है। कहाँ राजा भोज, कहाँ कँगला तेली।"

नारायणी बोली, "ब्याह करते समय इस लड़के को देखकर सोचा था कि पढ़ा-लिखा है, शक्ल-सूरत का ठीक है। हम लड़की के साथ पैसा देंगे तो उसे भी सुख मिलेगा। पर जयन्त तो ऐसा निकला कि बस लड़की को घर की मज़दूरनी से अधिक नहीं समझता। वैसे घर के बाहर उदार और दयावन्त बन गया। कैसा भाग्य हमारा !"

गंगा ने कहा, "हाँ, माँजी ! भाग्य की बात है। अपनी समझ से लड़का अच्छा चुना, पर वह भी गलत निकला। भगवान की माया यही

तो है।"

नारायणी बोली, "अब उस जयन्त के पास पैसा क्या आया, मगरू
बन गया है। शुभदा का पत्र आया था तो लिखा था, ऐसे विवाह से
वह क्वारी रहती तो ठीक था।"

गंगा ने कहा, "राम-राम !"

पीकदान में पान का पीक थूककर नारायणी ने क्षुब्ध भाव में कह
"मैं जब लड़की की ऐसी बातें सुनती हूँ तो छाती पर घूँसा-सा खा
हूँ। मेरी एक ही औलाद, और वह भी दु:खी, तो भला मैं शान्ति
सकती हूँ ?"

गंगा ने कहा, "यह कैसे हो सकता है, माँजी !"

माँजी ने कहा, "शुभदा शीघ्र ही आ रही है। अच्छा है, अब आ
की फसल भी आ गई है। बच्चे आम तो खाएँगे। शुभदा को आम
सिरके में पड़ी चटनी भी पसन्द है। कुछ कच्चे आम मँगाना और डा
देना।"

गंगा ने कहा, "अच्छा माँजी !" कहते हुए वह लौट गई। उस सम
गंगा अपना काम समाप्त कर चुकी थी। मालिक और मालकिन भोज
कर चुके थे। जब वह उस कमरे से निकलकर बड़े दरवाज़े की ओर ब
तो तभी घर के तीन-चार नौकरों को आपस में बात करते और चिल
पीते देख, एक को लक्ष्य करती हुई वह बोली, "अरे भोला ! अब सावधा
हो जा, शुभदा बिटिया अपने बच्चों के साथ आ रही है।"

भोला कुछ बूढ़ा था, बागबानी करता था। गंगा की बात सुनी त
बोला, "मुझे क्या सावधान होना, काम तो तेरा बढ़ेगा, गंगा ! खा
अधिक बनाना पड़ेगा।"

तभी रामदीन नाम का व्यक्ति बोला, "ऊँह, काम बढ़ेगा तो क्य
हुआ। इस गंगा का रोज़ मोहनभोग का भोजन भी तो होगा। बच्चे नि
नयी चीज़ें खाएँगे। रसोई महकने लगेगी।"

हँसकर गंगा ने कहा, "क्यों, तेरी जीभ भी पानी छोड़ने लगी
क्या ?"

रामदीन ने साँस भरकर कहा, "अरी, हमें कौन पूछता है।"

उसी समय अपने मन में आई बात को लेकर भोला बोला, "क्य

मिसरानी, बिटिया का ससुराल में मन नहीं लगता ? क्या बात है ? लड़का तो भला है।"

गंगा और पास आकर बोली, "अरे भोला, सब माया के चोंचले हैं, और कुछ नहीं। आदमी तो उसे भला मिला है।"

भोला बोला, "मैंने सुना है कि किशोर जो अब बैरिस्टर बन गया है वह भी आने वाला है।"

गंगा ने कहा, "हाँ, हाँ, क्यों न आयेगा। मालिक की बिटिया को सिनेमा, थियेटर आदि के लिए कोई साथी तो चाहिए ही। हाँ रे, इस माया को पाकर जो न सूझे वही थोड़ा है।"

रामदीन ने कहा, "जयन्तबाबू सरीखा आदमी मिलना आसान नहीं।"

गंगा ने कहा, "भैया, इन बड़े घरों में तो ऐसा ही होता है। एक मेरी लड़की है जिसने कभी नहीं कहा कि मुझे ससुराल में तकलीफ है। ऐसा कभी कुछ कहा जाता है ?"

रामदीन ने कहा, "ससुराल का घर तो अपना घर है, लड़की की अपनी दुनिया है। माँ-बाप के घर पर भला किसकी उम्र बीतती है ?"

गंगा बोली, "इस बार एक लड़का होता तो शुभदारानी के सब मिज़ाज ठिकाने लग जाते। पर अब क्या कमी है, जो कुछ है उसी का है। तभी तो उसके मिज़ाज नापे जाते हैं। पैर भी धरती पर नहीं पड़ते हैं।"

भोला मौन था। उसने हाथ की चिलम रामदीन के पास बैठे सुखिया के हाथ में दे दी। वह खाँसता हुआ चिलम पीते हुए बोला, "गंगा, मैं बताये देता हूँ, यह मेरी बात लिख लो कि शुभदा एक दिन अपना सिर पकड़कर रोयेगी। उसे तब समझना पड़ेगा कि बाप के घर की माया और है और पति के घर की शोभा और है।"

गंगा ने उत्तर दिया, "यह तो होगा ही। भगवान न्याय करता है, वह सब कुछ देखता है।" यह कहते हुए वह आगे बढ़ गई।

बत्तीस

बैरिस्टर किशोर महत्वाकांक्षी और कुटिल स्वभाव का व्यक्ति था उसके यौवनकाल का अधिक समय यूरोप के अनेक देशों में बीता था किन्तु जब वह अपने देश लौटा, तो उसे लगा, वह स्वर्ग से मृत्युलोक में आ गया है। इसका एक कारण तो यह था कि वह जिन सुन्दर कल्पनाओं का पुलन्दा अपने दिमाग में लिए था, देश में उसके विपरीत पाया। घर लौटने पर पहली घटना तो यह घटी कि उसके पिता का देहावसान हो गया। कारोबार बिगड़ गया। मृत पिता ने अपने पुत्र की इच्छापूर्ति के हेतु कुछ भी न उठा रखा था। एक ही तो सन्तान थी, उसकी सभी माँगों को पूरा किया गया। फलस्वरूप, किशोर खर्चीला और विलासी बन गया। उसे यह भी भरोसा था कि वह देश में लौटकर अपनी वकालत से प्रचुर धन प्राप्त करेगा। किन्तु जब उस क्षेत्र में उतरा तो मुवक्किल उसके पास नहीं आए। जो एक बार आया भी तो वह फिर नहीं लौटा। इसका कारण यह था कि भले ही किशोर के पास कानून की ऊँची डिगरी थी, परन्तु उसे व्यावहारिक ज्ञान नहीं था। वह जो मुकद्दमा लेता, उसे हार जाता। उसके समक्ष साधारण वकील जीत जाता।

शुभदा उसकी बचपन की संगिनी थी। दोनों साथ-साथ खेले थे एक बार, बचपन में, किशोर कई मास शुभदा के घर आकर रहा था। उस समय शुभदा की माँ से वचन लिया था कि दोनों का साथ ही विवाह होगा। किन्तु समय आने पर ऐसा नहीं हुआ। किशोर यूरोप चला गया। शुभदा का विवाह अन्यत्र हो गया। लेकिन दोनों का पत्र-व्यवहार चलता रहा। किन्तु जब किशोर अपने देश लौटा, वह शुभदा और जयन्त के परस्पर व्यवहार की कटुता का भी कुछ परिचय पाने में समर्थ बना। उसने अपने पत्रों से शुभदा के मन में आई हुई पति के प्रति विद्रोही भावना को और अधिक प्रोत्साहन दिया। वह अपने पत्रों में यूरोप के नारी-समाज का उल्लेख करता और बताता कि वहाँ की नारी में जीवन है, जागृति है। वहाँ का पुरुष-समाज भी नारी के प्रति न्याय करता है, उसकी स्वतन्त्रता में बाधक बनने का प्रयत्न नहीं करता।"

वह चतुर किशोर इस बात को भी भली प्रकार जानता था कि शुभदा के मन की आकांक्षाएँ अभी मरी नहीं, जीवित हैं। वह अपने पिता के संस्कारों के साए में पाली-पोसी गई है। पिता धनवान है। उसकी उत्तराधिकारिणी शुभदा है। जब शुभदा ने पिता के घर पहुँचने की तिथि लिखी तो किशोर को भी वहाँ आने का निमन्त्रण दिया गया। किशोर तुरन्त ही वहाँ आने के लिए प्रस्तुत हो गया। घर पर काम था नहीं, मन नहीं लगता था। अतएव किशोर अपने उस विचार को कार्य रूप देने के लिए तैयार हुआ, जो कभी भी ज़हरीले धुएँ के समान उसके मन के चारों ओर फैलता? जिसका प्रभाव उसके मस्तिष्क पर भी पड़ता। निश्चय ही किशोर चाहता था कि शुभदा को वह अपने पास आने का निमन्त्रण दे। उससे स्पष्ट कह दे कि यह जीवन है, जिसको भोगना प्रत्येक प्राणी का स्वभाव है। जो व्यक्ति इस जीवन के प्रति निरंकुश है, कठोर है और इसे बरबस ही संसार की भौतिक स्थली से उठाकर त्याग और योग की ओर लगा देना पसन्द करता है, वह मूर्ख है, जीवन की वास्तविकता से दूर है। ऐसा व्यक्ति असमय ही जीवन का गला घोंटता है, उसकी शाश्वत माँग को कुचलता है।"

अतएव, जब किशोर अपने घर से चला तो उसे यह देखकर सन्तोष हुआ कि शुभदा एक सप्ताह पूर्व ही अपने पिता के घर आ चुकी है। वह यह देखकर भी चकित हुआ कि शुभदा अभी भी युवती है, दो बच्चों की माँ बनकर भी वह किसी भी कुमारी के सदृश लगती है। शुभदा अप्सरा सदृश है।

जब वे दोनों मिले तो हँसकर किशोर बोला, "अजीब जीवन है, यह! जैसे तेज़ सैलाब। हाँ, देखो न, कितने समय बाद हम दोनों मिले हैं। तुम किसी कली के समान आज भी मुस्कराती दिखाई दीं, इसके लिए भगवान का धन्यवाद है। मुझे प्रसन्नता है।"

शुभदा ने कहा, "जीवन है तो इसे मारा नहीं जाता। पेड़ के समान इसकी जड़ों में भी पानी दिया जाता है।"

मानो किशोर ने मनचाही बात पाई हो। वह तुरन्त बोला, "निस्सन्देह! आज यूरोप के प्रत्येक नागरिक का यही अभिमत है। वह जीवन को सजाना और उजागर बनाना पसन्द करता है। और एक

हमारा देश है, पग-पग पर धर्म और वैराग्य की बात करता है। य
का नागरिक जिस आदर्श की दुहाई देता है, मुझे तो लगता है कि व
झूठा है, थोथा है। मुझे यहाँ कोई धार्मिक भी नहीं दिखाई देता। स
ओट में शिकार खेलते हैं। समाज को मूर्ख बनाते हैं।"

उलाहना देते हुए शुभदा ने कहा, "कितने पत्र डाले कि एक ब
आओ, पर तुम नहीं आए।"

किशोर बोला, "आ नहीं सका। बैरिस्टरी का काम अधिक ब
गया था। मनुष्य का जीवन क्या है, वह मशीन बन गया है। इसका ए
ही काम है, पैसे का उपार्जन! और मैं कहता हूँ कि वह पैसा क्या ज
जीवन का चैन छीन ले। मानसिक और आत्मिक शांति को पास न आ
दे।" उसने कहा, "सचमुच, मैं आना चाहता था, परन्तु यह भी सोच
मैंने कि जयन्तबाबू पता नहीं क्या समझ लें। हाँ, शुभदा, यह यूरोप न
है। वहाँ का आदमी तो नारी के प्रति उदार है। नारी को विश्वसनी
मानता है। उसका आदर करता है।"

चिढ़कर शुभदा बोली, "यहाँ का आदमी पाषाण है। नारी को घ
की दासी समझता है, पैर की जूती समझता है।"

तुरन्त ही किशोर बोला, "उससे भी कठोर! मैं तो यहाँ के समा
में देखता हूँ तो लज्जा आने लगती है। कभी तो चाहता हूँ कि मैं इ
देश में न पैदा होता तो ठीक था।"

हँसकर शुभदा ने कहा, "तुम यूरोप घूम आये हो तो पूरे साह
बन गए हो। अब वहीं का चिन्तन करते हो।"

उसी समय शुभदा के पास नौकरानी आई और बोली, "तुम्हें मालकि
बुलाती हैं!"

शुभदा ने कहा, "अच्छा!" वह खड़ी हो गई और बोली, "कप
बदलो। स्नान करो। आज मौसम अच्छा है। आसमान में बादल हैं
हवा ठण्डी है क्योंकि रात वर्षा हुई है। दो दिन पूर्व तो बड़ी गर्मी थी
शाम को बाग में चलेंगे।"

किशोर खड़ा हो गया। वह दीवार पर लगे चित्रों को देखने लगा
उन्हीं में एक फोटो शुभदा का था। वह उसी पर आँख गड़ाकर बोल
"खूब! वह फोटोग्राफर भी भाग्यवान था कि जिसने तुम्हारा यह सुन्द

पोज़ लिया।"

सुनकर शुभदा हँस पड़ी, "वाह-वाह ! आप तो कविता करने लग पड़े हैं !"

किशोर ने कहा, "नहीं, भगवान कसम ! इस फोटो की दूसरी कॉपी हो तो मुझे देना ! फोटो स्वाभाविक है, वाह ! कितनी सुन्दर है यह होठों की मुस्कान ! हाँ, ज़रा देखो तो आँखों में कितनी अनुपमता आ गई है ! ये तनिक टेढ़ी और तनिक मिची आँखें कितनी आकर्षक हैं !"

अपने स्वर पर ज़ोर देकर शुभदा ने कहा, "बस-बस, तारीफ के पुल न बाँधो। देखती हूँ कि तुम वही बचपन के गप्पी और बढ़ा-चढ़ाकर बात करने वाले व्यक्ति हो। बैरिस्टर हो न, अब बाल की खाल निकालने लगे !" शुभदा उस कमरे से लौट चली। जब वह माँ के पास गई तो माँ ने उसे कहा, "तेरे पिताजी के पास जयन्त का पत्र आया है। उनसे पूछ तो क्या लिखा है ?"

शुभदा ने मुँह बनाकर कहा, "मेरी बुराई लिखी होगी और क्या होगा !"

किन्तु माँ को बेटी का मत पसन्द नहीं आया। उसने तुरन्त कहा, "नहीं री, जयन्त कभी बुराई नहीं लिखेगा। तेरी यह बात असंगत अवश्य हुई, जब घर पर जयन्त नहीं था तो तुझे अभी यहाँ नहीं आना था। उसका इन्तज़ार करना था।"

शुभदा इतनी बात सुनकर चिढ़ गई। वह बोली, "अब मेरा उस कैदखाने में प्राण निकलना शेष था। क्या तुम्हें भी मेरा मरना पसन्द था ?"

शुभदा की माँ नारायणी ने इतनी बात सुनी तो जैसे उसका सिर घूम गया। उसे यह अच्छा नहीं लगा कि शुभदा ससुराल के घर को कैदखाना समझे। वहाँ का रहना मौत समझे। लेकिन उसने पुत्री से अपने मन का विचार व्यक्त नहीं किया। अपितु उसने कहा, "नहीं री, मेरी पगली बिटिया ! तू क्यों मरेगी, मरें तेरे दुश्मन ! बेटी, वह तेरी ससुराल है, तेरा तीर्थ है ; उसे कैदखाना समझना क्या अच्छा है ? अब जाने तेरे मन में क्या आ गया है कि जयन्त को ऐसा कठोर मानती है। तूने ही तो अपने पत्रों में कहा था कि जयन्त देवता है। इन्सानों में सच्चा

इन्सान है।"

शुभदा ने कहा, "तब मैंने यही समझा था। पर अब मेरा खया
बदल गया है।"

नारायणी ने पूछा, "वह चमार की लड़की···"

शुभदा ने कहा, "अब वह चमार की लड़की नहीं है, पढ़ी-लिखी
सम्पन्न है। अब तो उसने और भी बहुरूपिया वेश धारण किया है
भिक्षुणी का रूप धारण कर लिया है।"

नारायणी बोली, "पर वह तो अस्पताल चलाती है। समाज क
सेविका बनी है। फिर भी ऐसी बनी है!"

शुभदा ने कहा, "माँ, सुनी बात भले ही सत्य न हो पर जो ब
मैंने कानों से सुनी वह क्या भुलाई जा सकती है?"

उसी समय शुभदा के पिता वहाँ आ गए। वह शुभदा को देखक
बोले, "बेटी, किशोरबाबू से भी बात की है? उनका भोजन···"

शुभदा ने कहा, "हाँ, अभी उनके पास गई थी?"

पिता बोले, "उन्हें कोई कष्ट न हो।"

नारायणी ने कहा, "किशोर अभी भी नटखट है। बच्चा है। आ
तो मेरे पैर छूकर फर्श पर ही बैठ गया।"

पण्डित द्वारिकानाथ ने कहा, "किशोर हमें उसी तरह मानता है
आज हमारे घर बहुत दिन में आया है। सुयोग की बात है कि वह आ
तो शुभदा भी यहाँ है। किशोर के पास अब बड़ा अनुभव है, संसार
बड़े-बड़े देश घूम आया है।"

नारायणी बोली, "मैंने उससे पूछा था कि विवाह नहीं करेगा, त
वह कहने लगा, विवाह करना ज़रूरी नहीं है। व्यर्थ का बोझ सिर प
पड़ता है।"

शुभदा के पिता ने बात सुनी तो हँस दिये। बोले, "आजकल
लड़के हवा में उड़ते हैं। आकाश के तारे तोड़ने की कल्पना करते हैं
और नारायणी—उन्होंने पत्नी को देखकर कहा, "अब ज़माना बद
रहा है। देखती हो न, पुरानी परम्पराएँ मिटती जा रही हैं। समय ऐ
ही बदलता रहा, तो देखना सचमुच ही पति-पत्नी का सम्बन्ध एक दि
समाप्त हो जाएगा। समाज में चारों ओर भ्रष्टाचार फैल जाएगा। ज

पुरानी मान्यताएँ नहीं रहेंगी, धर्म की भावना मिट जाएगी, तो तब पुरुष के समान नारी भी अपने इस भौतिक शरीर को सुख पाने के लिए किसी भी भाव पर बेच देगी। पुरुष निर्लज्ज बना है, तो नारी भी बनेगी।"

नारायणी बोली, "नारी तो निर्लज्ज बन गई है। अब कमी क्या रह गई है !"

द्वारिकानाथ ने कहा, "देखता हूँ पुरानी बातें जिस धर्म की चादर में लपेटकर समाज के सामने आईं, वे देर तक ढँकी नहीं रहीं। वास्तविकता जल्दी ही सामने आ गई। कर्म चला, समाज की रीति-नीतियाँ चलीं, तो मनुष्य की नग्न भावनाएँ भी अतृप्त बनकर सदा अपनी जीभ लपलपाती रहीं। प्रतिक्रियात्मक प्रवृत्तियाँ सदा उग्र रहीं। मुझे लगता है, व्यवहार में इन्सान ने कभी भी ऋचाएँ स्वीकार नहीं कीं।"

नारायणी बोली, "मैं कहे देती हूँ, इन्सान ऐसा बना तो समाज नष्ट हो जाएगा। एक दिन धू-धूकर जल जाएगा, तब न बहिन-भाई का नाता रहेगा, न पिता-पुत्री का। पति-पत्नी का नाता तो आज भी कमज़ोर पड़ गया है, वह किसे नहीं दीखता ?"

उसी समय नौकरानी ने सूचना दी कि भोजन तैयार है।

द्वारिकानाथ ने कहा, "अच्छा !" वह शुभदा से बोले, "तुम किशोर बाबू को देखो।" उन्होंने पूछा, "बच्चे कहाँ हैं ?"

शुभदा ने कहा, "वे सो रहे हैं।" कहते हुए वह किशोर के कमरे की ओर चली। जब वह उस कमरे से बाहर निकली, तो तभी, नारायणी ने पति को सुनाया, "यह किशोर यहाँ किसलिए आया है, इसे तुम समझते हो ! मैं यह पसन्द नहीं करती कि शुभदा पति से लड़कर आये और यों इस किशोर के साथ···"

पंडित द्वारिकानाथ ने बात पूरी सुनने से पूर्व कहा, "सुनो, नारायणी ! तुम्हारा यह दकियानूसी विचार अब नहीं चलेगा। शुभदा नये युग की प्रतीक है। और वह किशोर, जानती तो हो, कि पूरा साहब बहादुर है। वह आया है तो यह कैसे होगा कि शुभदा उससे बात न करे, उसके पास उठे-बैठे नहीं !" वह बोले, "नारायणी, अब यह विचार अपने युग के साथ समाप्त हो गया कि नारी छुईमुई बनी रहे, पर-पुरुष

से मिलना-बोलना भी पाप समझे। यह पुरुष के कर्म और स्वभाव की प्रतिक्रिया ही तो है कि आज नारी स्वेच्छा से, कानून-सम्मत बनकर, जीवन में कई विवाह कर सकती है। अब यह पाप नहीं माना जाता।"

नारायणी चिढ़ गई और बोली, "तो क्या तुम्हारी शुभदा भी···?"

पंडित द्वारिकानाथ ने सहज भाव से कहा, "मेरा मतलब यह नहीं है।" किन्तु तुरन्त ही, वह अपना स्वर बदलकर बोले, "यदि ऐसा भी हो, शुभदा को पसन्द हो, तो क्या रोका जा सकता है ? तुम भले ही रोको पर मैं ऐसा नहीं करूँगा। मैं लड़की की इच्छा को प्राथमिकता दूँगा।"

क्षुब्ध होकर नारायणी बोली, "तो तुम इतना भी सोचते हो, इतना··· राम-राम !"

द्वारिकानाथ ने कहा, "मैं नहीं कहता, समय की पुकार है। तुम पुत्री के रास्ते में बाधक बनोगी तो निश्चय ही, वह प्रतिशोध का रूप भी धारण करेगी। बोलो, तब तुम क्या करोगी ? अच्छा यही है कि तुम अपना सम्मान स्वयं अपने-आप सुरक्षित रखो। वस्तुस्थिति को पहचानो।"

नौकरानी फिर आई और बोली, "मालकिन, खाने के थाल लग गये।"

नारायणी उठने लगी। वह बोली, "मैं तुमसे एक ही बात कहती हूँ कि लड़की नादान है, अभी समझदार नहीं है। पुत्री के मोह में तुम भी कोई ऐसी बात न कर बैठना कि जिससे पीछे पछताना पड़े। जब सुबह किशोर आया तो पहाड़ पर जाने की बात करता था। मैं कहे देती हूँ, शुभदा को जाने की अनुमति न दे बैठना। मैं अब अपने जीवन में एक ही बात देखना चाहती हूँ कि मेरी लड़की कोई ऐसा काम न करे जो मेरी आत्मा को रुचिकर न हो।"

पंडित द्वारिकानाथ स्वयं भोजन करने के लिए खड़े हो गये और हँसकर बोले, "एक बात सुन लो। तुम सदा मुझे दोष देती आई हो कि शुभदा पर मेरे विचारों का प्रभाव पड़ा है, पर मैं कहता हूँ, शुभदा स्त्री जाति का प्रतिनिधित्व करती है तो ज़रूर उस पर तुम्हारे जीवन का प्रभाव सर्वोपरि रहेगा, तुम उसकी माँ हो न !"

नारायणी बात सुनकर चुप हो गई। स्थूलकाय होने से वह रसोई-घर की ओर धीरे-धीरे जाने लगी।

तेंतीस

जब शुभदा ससुराल से अपने माता-पिता के घर पहुँची तो तभी से वहाँ के नारी-समाज में विविध प्रकार की शंकाएँ परिचालित हो गईं। फलस्वरूप, जब जयन्त प्रोफेसर के पास से लौटा तो गाँव की स्त्रियों ने उससे शुभदा के विषय में जानना चाहा कि वह पिता के घर क्यों गई है? क्या शुभदादेवी अनुमति से गई है या स्वेच्छा से? पुरुषों ने भी इसी प्रकार की शंका का समाधान चाहा कि क्या सचमुच पति और पत्नी के मध्य कोई अशुभ बात तो नहीं चल पड़ी है? किसी ने कहा, यह तो असंगति है। उसके सद्‌गृहस्थ के लिए अपशकुन है। पति-पत्नी की एकात्मीयता तो प्रत्येक अवस्था में ज़रूरी है।

जयन्त उन कथित बातों को सुनता और सहज भाव से मुस्कराकर रह जाता। लेकिन जब एक दिन दोपहर के समय मलखान आया तो उस समय जयन्त मकान की ऊपरी मंज़िल में पलंग पर पड़ा आसमान में उठते हुए बादलों को देख रहा था। वहीं पर मलखान पहुँच गया। उसने आते ही कहा, "इस सन्नाटे में क्या सोच रहे हो, भैया?"

चौंककर जयन्त ने उसको देखकर कहा, "कुछ नहीं। आओ, बैठो।"

मलखान बैठ गया। वह बोला, "तुम्हारे बच्चे क्या गये, घर सूना हो गया। बताओ तो, क्या शुभदा भाभी से कुछ कह दिया था?"

जयन्त ने कहा, "क्या तुम ऐसा समझते हो?"

मलखान ने कहा, "यही तो भैया! आज चौपाल पर यह बात चली तो मैंने कहा कि जयन्तबाबू उदार हैं। वे क्या अपनी पत्नी से कुछ कहना उचित समझते हैं?"

जयन्त बोला, "लगता है, यह विषय सभी की चर्चा का बन गया

है। इससे स्पष्ट है कि लोग दूसरों की बात में रस लेते हैं। लोगों के दिमागों की यह कषैली वासना है !"

मलखान बोला, "यह स्वाभाविक भी है। हम सभी तो समाज से बँधे हैं।"

क्षुब्ध भाव में जयन्त ने कहा, "परन्तु लोगों की यह बुरी आदत है।" वह बोला, "शुभदा गई है तो आ जाएगी, आखिर माँ-बाप के पास जाना क्या अनुचित कहा जाएगा ? जाने से पहले उसने बताया था कि माँ बीमार है। उसे जाना ही था।"

मलखान ने कहा, "परन्तु भाभी को तुम्हारे लौटने पर जाना चाहिए था। घर क्या नौकर पर छोड़ना था ? लोगों को यही शिकायत है। आखिर जब कोई अजीब बात करे, लोक-चर्चा का विषय बने, तो कहा ही जाएगा।"

जयन्त ने कहा, "शुभदा का पहले से ही निश्चय था। मुझे तो अकस्मात् जाना पड़ गया।"

मलखान बोला, "भला नौकर क्या ठीक से भोजन बनाता होगा ? घर आकर बच्चे भी याद आते होंगे।"

साँस भरकर जयन्त ने कहा, "बच्चे तो समाज में बहुत हैं। सभी अपने हैं।" और वह तब आसमान की ओर देखता हुआ बोला, "मलखानसिंह, जानते तो हो, मेरे और शुभदा के विचारों में अन्तर है। मैं चाहता तो हूँ कि वह सन्तुष्ट रहे, परन्तु विवशता मेरी भी है कि उस शुभदा को सदा प्रसन्न नहीं रख पाता। तुम चिन्ता न करो, शुभदा आ जाएगी। वह ज़्यादा दिन तक अपने पिता के घर नहीं रहेगी। उस शुभदा के मन में अपने पिता की सम्पत्ति के लिए जो महत्वाकांक्षा और अभिमान है, मेरा खयाल है कि वह भी एक दिन उसके हृदय से उतर जाएगा। वह यदि धनिक माँ-बाप की पुत्री न होती तो उसके लिए शुभ होता।"

मलखान ने कहा, "तो भैया, यह पैसा इतना निकृष्ट है ? तुम्हारी दृष्टि में तुच्छ है ?"

आतुर बनकर जयन्त ने कहा, "पैसा एक नशा है। इन्सान को मदहोश बनाता है। यह समाज की बड़ी शक्ति है। यह भी देखना पड़ता

है कि वह पैसा किस रास्ते से आता है। शुभदा के पिता पण्डित द्वारिकानाथ ने अपने किसानों का शोषण किया है। जो ज़मींदारी उनके पास है वह भी मुफ्त में मिली है। उनके पिता ने गदर के समय एक ऐसे अंग्रेज़ अधिकारी को शरण दी थी, जिसने सैकड़ों देशवासियों का वध कराया था। न्याय तो यह कहता है कि आज उन्हें फाँसी पर चढ़ा दिया जाए। मुफ्त में पाया गया धन इन्सान को ऊपर नहीं उठने देता। पण्डित द्वारिकानाथ कैसे चरित्र के व्यक्ति हैं, यह सर्वविदित है।"

मलखान बोला, "भैया, तुम्हारे हृदय में रोष है। बात संगत होते हुए भी आज उसका उल्लेख करना क्या ठीक है! वैसे मेरा खयाल है कि पैसा इसी प्रकार आता है। मेहनत से तो आदमी केवल गुज़र कर पाता है।"

जयन्त ने बात सुनी तो मौन रह गया। वह मलखान की बात के अन्तराल में डूब गया।

कुछ रुककर उसने कहा, "शुभदा मेरी पत्नी है और वह दो बच्चों की माँ है। इन दोनों अवस्थाओं को मैं कभी नहीं भुला सकता। वहाँ मेरे प्रति कोई दुर्भाव की बात न हो, इसलिए मैंने पत्र लिख दिया है।"

मलखान उठकर चलने को उद्यत हुआ। जयन्त ने कहा, "क्यों, अभी और बैठो न!"

मलखान बोला, "भैया, अब खेत पर जाऊँगा। शाम को आऊँगा।" यह कहकर मलखान चल दिया। जब वह चला गया तो उसके बाद ही, जयन्त उठकर बैठ गया और अलमारी से एक किताब निकालकर पढ़ने लगा। किन्तु मलखान के आने से जयन्त की मानसिक अवस्था स्वस्थ नहीं रही। अतः उसने किताब रख दी और अपने दोनों हाथों को पीछे से बाँध कमरे में घूमने लगा। उस अवस्था में घूमते हुए ही उसकी दृष्टि मेज़ पर रखे एक फोटो पर गई। उस फोटो में वह स्वयं था, शुभदा थी और उसके दोनों बच्चे थे। उसका वह कितना सुन्दर संसार था! वे दोनों सलोने और सुन्दर बच्चे! क्षणभर उस ओर देखते हुए ही जयन्त ने झटका-सा खाकर अपना मुँह फेर लिया और मन में कहा, ये बच्चे मेरे नहीं हैं, शुभदा के हैं। इन पर उसी का अधिकार है। किन्तु उसी क्षण उसने देखा कि उन बच्चों के कुछ कपड़े खूँटी पर टँगे हैं, मैले हैं। तभी

जब नौकर वहाँ आया तो जयन्त उसे लक्ष्य करके बोला, "अरे, हरखू !
देख तो बच्चों के ये कपड़े मैले पड़े हैं। इन्हें धोबी को दे देना।"

नौकर ने वे कपड़े खूंटी से उतार लिये और वहाँ से ले चला। जाते हुए हरखू को जयन्त ने कहा, "देख हरखू, बहूजी के मैले कपड़े उनके कमरे में पड़े हों तो उन्हें भी ले आना। उन्हें धोबी को दे देना।"

इतनी बात सुनकर हरखू रुक गया और बोला, "पर बाबू, आप अपने कपड़े क्यों नहीं धोबी को देते ? अपने कपड़े तो स्वयं हाथ से धोते हो कितनी बार कहा मैंने कि मैं धो दिया करूँ तो मुझे भी आप नहीं धोने देते।"

जयन्त ने कहा, "रे हरखू ! जानता तो है तू, मैं गरीब माँ-बाप का लड़का हूँ। अब पैसा आ गया तो क्या, मन तो वही रखता हूँ।"

हरखू ने कहा, "नहीं बाबू, मैं सब जानता हूँ। राजा का भी कभी ऐसा दिल नहीं होगा जैसा कि आपका है।"

जयन्त केवल हँस दिया।

किन्तु हरखू तो अपने मुँह पर आई बात कहने पर तुला था। वह बोला, "इस गाँव में ही किसको आप क्या देते हो, मैं जानता हूँ। बाबू ऐसा डॉक्टर क्या कभी मैंने देखा कि आपके समान दवाई भी मुफ्त दे और पैसा भी साथ दे !"

जयन्त ने आतुर बनकर कहा, "अरे, जिसका है, वह लेता है। हरखू मेरा अपना क्या है, इस धरती पर जैसे अनायास आया हूँ उसी प्रकार एक दिन चला जाने वाला हूँ।"

साँस भरकर हरखू बोला, "बाबू, यह तो सभी के लिए है। आप सुनते हैं या नहीं पर गाँव का बच्चा-बच्चा आपको देवता मानता है तभी तो आज कहते हैं लोग···"

एकाएक जयन्त ने पूछा, "क्या ?"

"यही कि बहूजी को ऐसे नहीं जाना चाहिए था।"

जयन्त ने कहा, "न हरखू, तेरी बहूजी को जाना था। माँ ने बुलाया था।"

हरखू के मन में कुछ और था। वह कहना चाहता था। पर मालिक नाराज़ न हो इससे वह डरता था। वह जयन्त की ओर देखने लगा।

यह देख जयन्त ने कहा, "और क्या···"

हरखू बोला, "बुरा न मानो तो एक बात कहूँ। कल ही वहाँ का मेरा एक सम्बन्धी आया है। उसका बड़ा भाई ज़मींदारबाबू के यहाँ नौकर है। वह कहता था कि मालिक की लड़की दूसरे शहर से आये एक बैरिस्टर के साथ···"

आतुर बनकर जयन्त ने कहा, "अरे हाँ, मुझे पता है। वह बैरिस्टर शुभदा का सम्बन्धी है।"

लेकिन हरखू तो अपनी समस्त बात कह देना चाहता था। बोला, "बाबू, वह बैरिस्टर अच्छा आदमी नहीं है। मेरा सम्बन्धी कहता था कि वह ज़मींदारबाबू की सम्पत्ति पर निगाह रखता है। और हमारी बहूजी सीधी और भोली हैं, इसे तुम भी जानते हो।"

बात सुनी तो जयन्त मौन रह गया। वह बाहर की ओर देखता हुआ बोला, "जाओ, एक प्याला चाय बना लाओ।"

हरखू चला गया। जब वह मकान के नीचे के हिस्से में पहुँचा तो उसने अपने-आप पर खेद प्रकट किया कि उसे इतना सब बाबू से नहीं कहना चाहिए था। उन्हें ज़रूर दुःख मिला होगा। उसने स्टोव जलाया और चाय का पानी रख दिया। उस अवस्था में ही उसने अपने-आप फिर कहा, "भाग्य की बात है कि आदमी इतना अच्छा और बहू ऐसी! हाँ, अब बाबू का स्वास्थ्य भी गिर गया है। खाना भी कम खाते हैं। मैं जो कुछ बनाकर रख दूँ, उसी को चुपचाप खा लेते हैं। यह भी नहीं कहते कि यह चीज़ अच्छी है, यह अच्छी नहीं।"

हरखू ने चाय का प्याला तैयार किया और ऊपर ले गया। उस समय जयन्त मेज़ के पास बैठा हुआ किताब पढ़ रहा था। जब हरखू चाय रखकर लौट चला, तो जयन्त ने उसे रोककर कहा, "हरखू, सुनो एक बात।" जयन्त उसकी ओर देखकर बोला, "देखो, बहूजी के विषय में कभी किसी से बात न करना। तुम यह भी न सोचना कि बहूजी इस घर को छोड़ किसी और की चिन्ता करती हैं। कोई और कहे तो उसे भी समझाने का प्रयत्न करना।"

हरखू बोला, "बाबू, मैं कसूरवार हूँ। क्षमा माँगता हूँ।"

जयन्त ने कहा, "नहीं, नहीं, तुम जो कुछ कहते हो उसमें शुभेच्छा

अधिक है, परन्तु मन में ऐसी शंका लाना भी मैं इस घर के लिए अशुभ मानता हूँ।"

विनीत बनकर हरखू बोला, "अच्छा बाबू !" और एक अपराधी के समान वहाँ से चला गया।

किन्तु उसके पीछे अपने कमरे में चाय पीते हुए जयन्त अपने-आप बोला, 'शुभदा की अपनी इच्छा है, उसकी आकांक्षा का भी मोल है मैं बाधक क्यों बनूँ ? वह यहाँ आए तो धन उसका है। मैं उसे लेने नहीं जाऊँगा। मैं उसकी सुविधा के लिए अपने इस जीवन को क्लिष्ट नहीं बनाऊँगा।'

जयन्त ने चाय पी ली और वह खड़ा हो गया। संध्या आ गई थी अतएव, वह मकान से उतर दवाखाने की तरफ चल दिया। निश्चय ही उसका मन उस समय किसी काम को करने में नहीं था। अतएव कम्पाउण्डर से कह दिया, "पुराने मरीज़ों को दवा दे देना। मैं अब नए मरीज़ों को न देख सकूँगा।" वह वहाँ से जंगल की ओर चल दिया। उस समय उसके मन में बात थी कि सच, वह गाँव के समक्ष अपराधी है अभियुक्त है। क्योंकि उसकी पत्नी जिस प्रकार अपने पिता के घर गई वह अवांछनीय ढंग था। किसी को भी पसन्द नहीं था। गाँव की परम्परा के अनुकूल नहीं था।

उस अवस्था में ही, एक खेत के डौले पर खड़े होकर, जयन्त ने नितान्त दीन और कातर बने स्वर में कहा, "तो मैं क्या करूँ ! शुभदा की अपनी इच्छा है ! जब मैं उसके अनुरूप नहीं बन सकता, तो तब, मुझे क्या अधिकार है कि शुभदा ही मेरी इच्छा के अनुसार आचरण करे ?"

दूर जंगल में उसने देखा कि गाँव की श्मशान-भूमि में किसी की चिता जल रही है। देखते ही जयन्त ने समझ लिया कि गड़रिये रामलाल की बहू की है। वह प्रातः उसकी हालत देख आया था। वह रामनाथ से कह आया था कि उसकी अवस्था शोचनीय है। किन्तु जब इतनी बात उसने रामनाथ से कही थी तो वज्र का हृदय रखने वाला भी उस गड़रिये की अवस्था को देख पिघल जाता। सचमुच, वह रामनाथ अतिशय दीन और याचक बना था। वह कह रहा था, "बाबूजी, मेरा घर बरबाद हो जाएगा…मेरे छोटे-छोटे बच्चे…"

और तभी जयन्त के मन में विचार आया, हाय, अब उसके बच्चे अनाथ हो गए होंगे। अपनी माँ के लिए बिलख रहे होंगे।

इतना देख-समझकर जयन्त का मन और अधिक खिन्न हो गया, कुण्ठित हो गया। उसे लगा कि सच इस धरती का इन्सान अत्यन्त दुर्बल है, असहाय है। वह स्वयं भी कमज़ोर है। घर पर एक शुभदा नहीं है तो उसका घर भी जैसे श्मशान बना है ममत्वहीन···

जयन्त ने अपने सिर के बालों में उँगलियाँ दे लीं। उस दिन सिर में तेल भी नहीं डाला था। प्रातः के समय स्नान से पूर्व, नियमानुसार वह हजामत बनाता था पर उस दिन नहीं बना सका। सुबह ही रामनाथ गड़रिया आया तो उसके साथ चल दिया था। इसलिए दाढ़ी भी बढ़ी थी। उस समय डॉक्टर जयन्त का विचित्र वेश बना था जिसे देखकर कोई भी समझता कि उस जयन्त के मन में कुछ है, अशान्ति है, अपने प्रति कलह है, पीड़ा है।

उसने सिर के बालों से हाथ हटा लिया और हाथों की मुट्ठी बाँधकर बोला, "मूर्ख ! उस शुभदा का चिन्तन करता है तू ! वह देख न, रामनाथ गड़रिये की औरत बीमार पड़ी और मर गई। अब जलकर बन जाएगी राख का मुट्ठीभर ढेर ! आखिर, इस जीवन की डगर पर जो मिलते हैं, वे सभी तो याद नहीं किए जाते, सभी तो हृदय में नहीं उतारे जाते। सबके अपने-अपने रास्ते हैं। पत्नी का भी, पुत्र का भी···"

जयन्त जिस डोले पर खड़ा था उससे आगे बढ़ गया, अँधेरा बढ़ चला था। तभी वह चलते हुए रुक गया, सहम गया। उसने देखा कि सामने कोई जानवर है जो जंगली है, खूँखार है। उसकी मशाल की तरह जलती हुई आँखें उसको घूर रही हैं। ऐसे समझ रही हैं, यह इन्सान···उसके पेट का भोजन ।

किन्तु वह जानवर स्वयं ही डर गया। खेत में घुस गया। तब जयन्त पैर बढ़ाकर तेज़ी के साथ आगे बढ़ा। वह गाँव की ओर लौट पड़ा। जब वह एक खेत को पार कर रहा था तो तभी, सामने से आते एक किसान ने उसे रोककर कहा, "बाबू, इस ओर से नहीं, उस ओर से ! अभी मैं देख आया हूँ कि काला साँप बैठा है, क्या जाने कि वह···"

जयन्त मुस्कराया और बोला, "यही न, मुझे काट खाएगा ? वह

बनाए मेरा भोजन !" वह आगे बढ़ता गया। सचमुच, उसके मन में
बात थी कि ऐसा जीवन क्या जिसमें अशान्ति हो, विषमता हो। कम्
शुभदा ने मेरा जीवन बरबाद करना पसन्द किया है।"

वह खेत भी निकल गया। साँप नहीं मिला। जब जयन्त घर प
तो हरखू ने उसके हाथ पर एक लिफाफा रखा दिया। वह शुभदा
माँ का पत्र था। वह उसे लेकर मकान में चला गया।

चौंतीस

उन दिनों शुभदा के मन की अवस्था सचमुच ही, एक ऐसी दि
की ओर मुड़ चली कि जिसकी कल्पना सम्भवतः पहले नहीं की
सकती थी। किशोर लम्बे प्रवास का विचार करके पण्डित द्वारिका
के घर नहीं आया था, परन्तु जब वहाँ आया तो उस मायानगरी में
खो गया कि मानो उसका अपना कोई अस्तित्व ही नहीं हो। जमींद
बाबू की नई मोटर उसके लिए सुरक्षित थी। वह कभी शुभदा के स
नगर में सिनेमा देखने जाता, कभी कहीं और चला जाता। कभी-क
पण्डित द्वारिकानाथ भी उन दोनों के साथ घूम आते।

धनिया नाम का एक नौकर उस भवन में दरबान के काम पर नि
था। उस धनिया को पहलवानी का शौक था। जब किसी उत्सव
ज़मींदारबाबू कुश्ती कराते तो धनिया अपने मालिक से इनाम पात
इस प्रकार वह मालिक और मालकिन दोनों का विश्वासपात्र और कृ
पात्र बनने में सफल हुआ था। एक दिन जब किशोर और शुभदा मो
में बैठकर नगर गये, तो तभी नारायणी ने धनिया को अपने प
बुलाया। जब वह सामने आ खड़ा हुआ तो नारायणी ने पूछा, "अ
मोटर कहाँ गई है ? कौन-कौन गये हैं ?

उस अप्रत्याशित बात को सुन धनिया कुछ चकित बन गया। लेकि
वह तुरन्त ही बोला, "मालकिन, ड्राइवर कहता था कि बीबीजी श

जाएँगी ··वे किशोरबाबू भी साथ में···"।

नारायणी के मन में भी यही बात थी। सुनकर वह मौन रह गई, तदन्तर ही बोली, "धनिया, देख तू इस घर का पुराना आदमी है। कौन जाता है, इसका ध्यान रखना तेरा काम है। पर देखती हूँ कि तू भंग का गोला चढ़ाकर नशे में झूमना जानता है। जब देखो तब पान चबाता फिरता है।"

धनिया कुछ सकपका गया। वह सहज स्वर से बोला, "मालकिन, तुम्हारा हुक्म क्या भूल पाता हूँ ? सिर-माथे लगाता हूँ।"

किन्तु नारायणी के मन में तो क्रोध था अपनी बेटी पर, उस किशोर पर। और वे तो उस समय वहाँ थे नहीं, इसलिए उस क्षुब्ध भाव का कुछ वेग धनिया पर निकलना स्वाभाविक था। फिर भी नारायणी उस धनिया से भी कुछ अधिक नहीं कह सकती थी। वह नौकर था। नारायणी के मुँह से बात निकलने का अर्थ यह था कि वह बात सभी नौकरों में फैल जाती। फिर उन्हीं के द्वारा समाज में। और इतना सब नारायणी को कदापि पसन्द नहीं था। शुभदा उसकी पुत्री थी, उस घर की प्रतिष्ठा। यदि लड़की अपनी प्रतिष्ठा का ज्ञान नहीं रखती तो माँ को तो रखना चाहिए। इसलिए उस धनिया को पास बुलाकर भी नारायणी अपने मन की बात नहीं कह सकी। किन्तु वह चतुर धनिया मालकिन के मन का भाव समझ गया। वह इतना बुद्धू तो था नहीं कि स्वयं आगे बढ़े और अपने मन में रखी बात को सहज में मालकिन के समक्ष खोलकर रख दे। वह जानता था, बड़े आदमी का क्या भरोसा, पल में सिर पर उठा ले, पल में धरती पर पटक दे।

उसी समय नारायणी बोली, "रे धनिया ! देख तुझे इस घर का नमक खाते वर्षों बीत गये। उस नमक का भुगतान तुझे करना चाहिए। हाँ, बता तो ऐसे ही भैंसे सरीखी काया लिये फिरता रहेगा। कुछ धर्म-कर्म की बात भी सोचेगा इस जिन्दगी में !"

धनिया ने अपने सिर की पगड़ी उतार ली और नारायणी के पैरों में रखकर बोला, "मालकिन, मेरी माँ ने तो मुझे केवल पैदा किया था पर आदमी तो मैं तुम्हारी छत्रछाया में रहकर बना हूँ। भगवान की कसम, तुम्हारे आदेश पर मैं अपना सिर उतारकर न रख दूँ तो मेरे मुँह

पर कालिख पोत देना।"

आतुर बनकर नारायणी बोली, "अरे, नहीं, नहीं ! इतनी कठो
कसम क्यों खाता है। मुझे तुझ पर भरोसा है। तभी तो बुलाया है
इतने बड़े भवन में कोई नहीं जानता कि मैं कितनी दुःखी हूँ। और तु
पता है, नारी के रूप में मैं भी सब औरतों के बराबर हूँ। मेरी भी वै
ही इच्छा है, वैसे ही विचार हैं।"

धनिया कुछ खुलने को उद्यत हुआ और बोला, "अम्माजी, मैं ख
समझता हूँ। तुम और कुछ पीछे हो, पहले माँ हो। और प्रत्येक माँ व
स्वभाव है, अपनी सन्तान की भलाई सोचना। सो, आज वही तो
तुम्हारे मन में। वह शुभदा बिटिया रानी··"

नारायणी एकाएक बोल पड़ी, "अरे, यह शुभदा मेरे प्राण ले लेगी
मुझे लगता है, मेरी मौत का कारण हो जाएगी।"

धनिया ने कहा, "नहीं माँजी ! बिटिया रानी अभी नासमझ
भोली हैं। और बैरिस्टर किशोर· वह नारी के रूप और धन व
लोभी ··" वह बोला, "चौका-बरतन करने वाली भानुमती कहती थी
ज़मींदारबाबू का नया मेहमान औरत का भूखा है। किसी जवान औ
को भेड़िये की तरह घूरता है। हाँ माँजी, भानुमती उसके कमरे से च
के बर्तन उठाने गई तो हज़रत उसे ऐसे घूरते थे कि जैसे चूहे को बिल
घूरती है। भानुमती कहती थी, "नौकरी छूटने का डर न होता तो व
हाथ में लिया जूठा बर्तन उस बाबू के मुँह पर दे मारती !"

साँस रोककर नारायणी ने बात सुनी तो बोली, "भानुमती
मुझसे कहना था, बताना था।"

धनिया बोला, "माँजी, आपसे सभी डरते हैं। हम सब गरीब हैं

नारायणी बोली, "अरे, मैं क्या किसी का बुरा चाहती हूँ ? जि
तरह मैं अपनी शुभदा की खैर मनाती हूँ, उसी तरह समाज की प्रत्ये
लड़की को अपनी मानती हूँ। भानुमती इस घर का काम करती है
क्या उसने अपनी आबरू बेच दी है ? इस अर्थ में शुभदा और वह दो
बराबर हैं।"

धनिया ने कहा, "माँजी, तुम पुण्या हो। सब नौकर-नौकरानि
तुम्हारी बड़ाई करते हैं।" वह बोला, "मालकिन, मुझसे जो कुछ कहोग

वह मैं करूँगा। पर यह बताये देता हूँ माँजी, यह किशोरबाबू इस घर के पसे पर और जागीर पर निगाह रखता है। वह शुभदाजीजी को भी पथभ्रष्ट करना चाहता है। रानी बिटिया को ढाल बनाकर ही वह तलवार चलानी चाहता है।"

नारायणी ने अपने स्वर पर ज़ोर देकर कहा, "वह कमीना है, चोर है। उसका मनसूबा क्या इस जिन्दगी में पूरा हो सकता है, कभी नहीं !"

धनिया बोला, "मैं किशोरबाबू के पास आता-जाता हूँ। एक दिन बातों-बातों में उनके मुंह से निकल ही पड़ा, "अरे धनिया, जाल तो डाला है, शिकार फँस गया तो देखना, मैं इस घर का सब रंग बदल दूंगा।"

सुनकर नारायणी ने कहा, "हूँ।"

धनिया बोला, "किशोरबाबू सिगरेट और शराब मुझसे मँगाते हैं। प्रसन्न होते हैं तो कुछ मुझको भी इनाम दे देते हैं।"

नारायणी बोली, "मैं जानती हूँ, तू पूरा शैतान है।"

धनिया ने जल्दी से कहा, "माँजी, ऐसे आदमी से मैं जितना घुलूं-मिलूं, उतना ही अच्छा है।"

नारायणी ने कहा, "यह ठीक है, अब जा। कोई और बात मालूम दे तो मुझे बताना।"

धनिया लौट गया। उसी समय पण्डित द्वारिकानाथ यहाँ आये और बोले, "क्यों नारायणी, शुभदा पहाड़ पर जाने की बात कहती है, भेज दूं ?"

बरबस नारायणी ने पूछा, "किसके साथ ?"

पण्डितजी बोले, "किशोर के साथ।"

बात सुनी तो नारायणी जैसे पहाड़ से नीचे गिर पड़ी। वह अतिशय मर्माहत बनकर बोली, "मैं कहती हूँ, तुम्हारी अक्ल तो नहीं चली गई ? सुनूं तो, क्या है तुम्हारे मन में ! क्या लड़की का जीवन बरबाद करने पर तुले हो ?"

इस बात पर पण्डित द्वारिकानाथ ने ज़ोर का ठहाका मारा, नारायणी को भी चौंका दिया।

नारायणी बोली, "तुम्हारे पास पैसा न होता, तो ठीक था।"

वह बोले, "तब तुम पर इतना गोश्त न चढ़ता। यह गले में प सोने का हार भी नहीं दिखाई देता।"

चिढ़कर नारायणी बोली, "मुझे यह भी स्वीकार था। उस अवस में शान्त और सुन्दर जीवन तो प्राप्त होता।" उसने कहा, "एक ब कहती हूँ। कान खोलकर सुन लो, शुभदा जयन्त की है, उसी रहेगी। उसके बगैर इस शुभदा की ज़िन्दगी नरक रहेगी। वह भले की वस्तु है, बाज़ार की नहीं बनेगी।"

पण्डित द्वारिकानाथ ने गम्भीर बनकर कहा, "शुभदा अब उस नहीं जाएगी। वह कहती है, मेरा गला घोंट दो, पर वहाँ मत भेजो किशोर इस बात के लिए सहमत है कि वह इस ज़मींदारी का मैनेज बनकर सभी काम संभाल लेगा।"

विस्फारित बनकर नारायणी बोली, "तो मुझे लगता है, बाप-बे ने सभी मार्ग पहले ही से बना लिए हैं। शुभदा अपनी ससुराल न जाएगी और किशोर इस ज़मींदारी का मैनेजर बन जाएगा। वाह-वा क्या सिद्ध-साधक की जोड़ी बना दी है, तुमने! बात तो तुमने पक्की क ली, तो फिर मुझसे क्या पूछने आये हो?"

पण्डितजी ने कहा, "नहीं, नहीं, बात कोई पक्की नहीं हुई। निण तुम्हारा होगा। वही मान्य होगा।"

कठोर और संयत स्वर में नारायणी बोली, "तुम्हारे मन में कुछ है वह अभी इस देश में नहीं चलेगा, कम-से-कम मेरे घर में तो ऐ नहीं चलेगा। अच्छा यही है कि किशोर स्वयं चला जाए। वह साँप है इस घर की प्रतिष्ठा और सम्पदा को डसना चाहता है। और तु समझते हो कि वह दो बच्चों की माँ बनी शुभदा के समक्ष अपने समर्पित करना चाहता है? न, न, वह बात बनाता है। उसे पता है इस घर की उत्तराधिकारिणी शुभदा है। तुमने नहीं सुना तो क्या, मैं सभी कुछ सुन लिया है। वह तो तालाब में बंसी डालकर मछली फँस आया है।"

उदास और गम्भीर स्वर में पण्डित द्वारिकानाथ ने कहा, "मैं इत सब नहीं जानता। मैंने तो सोचा, हमारी शुभदा दो बच्चों की माँ है अब वह स्वतन्त्र रहना चाहती है तो रहे। किशोर ज़मींदारी का क

सँभाल ले तो वह भी यहाँ रहे। दोनों का मन लग जाएगा। फिर किशोर का विवाह कहीं करा दिया जाएगा।"

मुँह बनाकर नारायणी बोली, "उसे कौन लड़की देगा ? कोई भला घर तो देगा नहीं। किशोर आवारा है, पूरा गुण्डा है। तुम बुरा मानो तो मानो, मुझे तो उसका यहाँ रहना अब एक-एक दिन खलता है।"

वहाँ से लौटते हुए पण्डितजी बोले, "जब तुम्हारे मन में यह बात है तो यही होगा। किशोर चला जाएगा।" यह कहकर वहाँ से चल पड़े।

किन्तु नारायणी ने पति की पीठ पर फिर कहा, "मैं कहती हूँ कि इस बुढ़ापे में तो समझ लो कि इस ज़िन्दगी की असलियत क्या है। औरत की वास्तविकता क्या है। तुमने बेटी पर जितना लाड़-प्यार किया, उसी का तो आज यह सब परिणाम निकला दीखता है।"

पण्डित द्वारिकानाथ फिर मुड़ आए और धीर भाव से बोले, "तुम्हारे तो वही पुराने विचार हैं। तुम्हारे मन में भय है कि तुम्हारी लड़की···"

नारायणी ने तुरन्त आर्त बनकर कहा, "भय नहीं है, सत्य है। देवता सरीखा पति ठुकराकर तुम्हारी बेटी यहाँ आई है। मैं कहे देती हूँ यदि तुम्हारी शुभदा ने जयन्त से बिगाड़ कर लिया तो मेरे लिए यह सुख-सम्पदा राख के ढेर से अधिक नहीं लगेगी। जिस दिन से किशोर इस घर में आया है, नौकर-नौकरानियाँ भी आगे-पीछे बात करने लगे हैं।"

पण्डितजी ने क्षुब्ध बनकर कहा, "मैं नौकरों की बात पर नहीं जाता। वे छोटे आदमी हैं, उनके छोटे विचार हैं।"

नारायणी ने अपने स्वर पर ज़ोर दिया और कहा, "यह तुम्हारा खयाल है। जो समाज की परम्परा है वह सभी के लिए है। धर्म सभी के लिए है। धनिक आदमी धर्म और विवेक को छोड़ दे, यह कौन-सी पुस्तक में लिखा है ? प्यार से पाली गई बेटी यदि चरित्रभ्रष्ट बनी तो क्या तुम्हारे लिए सन्तोष का विषय हो सकता है,···कदापि नहीं !"

पण्डितजी ने हँसकर कहा, "अच्छा, अच्छा, तुम्हारा आदेश सर्वोपरि रहेगा,···मेरा नहीं !"

नारायणी ने ग्राँखें तरेरीं ग्रौर कहा, "यह मुझसे मत कहो। ग्रा
तुम्हारा है, मेरा नहीं। तुम मेरे देवता हो।"

ग्रपने सैंडिलों से खटखट करती हुई उसी समय शुभदा वहाँ
गई। बच्चे भी साथ थे। बच्चे नारायणी से चिपट गए। किन्तु शुभ
उदास ग्रौर उन्मन बनी माँ के पास बैठ गई।

नारायणी ने बच्चों से कहा, "ग्ररे, ठहरो तो, यह बताग्रो क
गए थे।" वह शुभदा की ग्रोर देखकर बोली, "ग्रौर तू उदास है, ते
मुँह कैसे चढ़ा है?" किन्तु शुभदा मौन रही। बोल नहीं सकी।

सुधा ने कहा, "नानी, बड़ी ग्रच्छी तस्वीर देखी थी हमने। गाने
सुने थे।"

ललित ने कहा, "नानाजी, ग्राज खूब गाने सुने।" उसने बता
"माताजी तो कुछ बोली नहीं। ग्राज हँसी भी नहीं।"

नारायणी ने कहा, "क्यों री, शुभदा! क्या बात ग्राई है तेरे
में? कोई नई बात?"

किन्तु शुभदा ने बात टाल दी। वह कमरे की छत की ग्रोर देख
लगी। निश्चय ही उसके मन में कोई गहरी बात थी, जो उमड़-घुम
रही थी।

पण्डित द्वारिकानाथ का ध्यान उस ग्रोर नहीं गया। उन्होंने पत
से कहा, "तुम तो कभी सिनेमा देखती नहीं। देखो तो समझो कि ग्रा
के युग में कितनी उन्नति हुई है, इन पर्दे की तस्वीरों में। तुमने क
नाटक-नौटंकी देखे होंगे, सिनेमा नहीं।"

विद्रूप भाव में नारायणी ने कहा, "जब बाप-बेटी देखते हैं,
मुझे क्या देखना। मुझे तो यह दुनिया ही सिनेमा लगती है। मेरे लि
यही ग्रच्छा है। ग्रौर इस दुनिया का ग्रादमी ही तो उस पर्दे पर नाचत
गाता है।"

बात सुनी तो पण्डितजी ने हँस दिया। तभी उन्होंने सामने बै
शुभदा की ग्रोर ग्रपना मुँह उठा दिया। उससे कहा, "शुभदा, सिने
में ग्राज क्या देखा?"

कठिनाई से शुभदा ने कहा, "ग्राज मेरा मन नहीं लगा। कुछ दे
नहीं पाई।"

पिता बोले, "वाह ! गईं, पैसे खर्च किए और कुछ नहीं देखा।" वह नारायणी से बोले, "इस दुनिया का इन्सान कितना आगे बढ़ गया है, इस प्रकार घर में बैठकर नहीं समझा जा सकता। तुम भी कभी नगर में आया-जाया करो।"

नारायणी ने कहा, "तुम तो पढ़े-लिखे हो, सब कुछ समझ सकते हो, पर मैं गँवार की बेटी हूँ। मेरे लिए काला अक्षर भैंस बराबर है। पर यह कहे देती हूँ, दुनिया का और ज़िन्दगी का ज्ञान पुस्तकों से नहीं मिलता, ज़िन्दगी की डगर पर चलकर मिलता है। किताब का पढ़ने वाला तो ऊपर-ही-ऊपर तैरता है, गहराई में नहीं उतरता।"

पण्डित द्वारिकानाथ ने कहा, "तुम्हारी बात पते की है।"

और इतनी बात होने पर भी शुभदा फिर भी चुप रही।

नारायणी उसकी ओर देखकर फिर बोली, "अरी, कुछ मुँह से तो कह, शुभदा !"

शुभदा ने एकाएक रोकर कहा, "माँ, मैं कल लौट जाऊँगी !" नारायणी ने एकाएक ममत्व से भर कहा, "पगली कहीं की ! तो इसमें रोने की क्या बात !"

उसी समय नौकरानी पत्र लाई और पण्डितजी के सामने रख गई।

नारायणी ने पूछा, "किसका पत्र है ?"

शुभदा से पण्डितजी बोले, "जयन्त का लगता है। अक्षर उसीके हैं।" पत्र पढ़ा। फिर पत्र की अन्तिम पंक्ति सुनाई, जयन्त ने लिखा था—

"मैं आपका सेवक हूँ। शुभदा मन बहलाने उस ओर गई है, तो रहे, मेरा काम चलता है। वैसे, इस शंका का मैं कोई कारण नहीं देखता कि शुभदा में और मुझमें कोई मतभेद हो, विचार-विभिन्नता हो। आज के समान सदा ही मुझे इसका आदर करना पड़ेगा।"

पण्डितजी ने शुभदा की ओर देखा और खिन्न भाव से, विचलन-भरे मन से उससे कहा, "शुभदा, इस पत्र को पढ़ लेना। मैंने आज तक तेरी माँ की अधिकांश बातों की उपेक्षा की, परन्तु आज लगता है कि सच, मैं अँधेरे में रहा, तेरी माँ प्रकाश में रही।"

पैंतीस

शुभदा माँ के कमरे से निकलकर अपने कमरे में जाकर जयन्त का पत्र पढ़ने लगी। पत्र पढ़ते ही वह कटी डाल की तरह पलंग पर गिर पड़ी। संयोग की बात थी कि तदन्तर ही किशोर वहाँ आया। शुभदा के दोनों बच्चे भी उसके साथ थे। वे बच्चे अब उससे अधिक हिल-मिल गए थे। वहाँ आते ही किशोर ने देखा कि शुभदा आँखों पर बाँह रखे उदास पड़ी है। इतना देखते ही उसने चाहा कि लौट जाए, परन्तु उसे कुछ कहना था। अतः आना था उसके पास। वह निकट होकर बोला, "शुभदाजी!"

शुभदा ने आँखों से हाथ हटा लिया। किशोर की ओर उन उदास और पीड़ा से भरी आँखों को कर दिया। उसी अवस्था में उसने तड़प-कर कहा, "आप जाइए, चले जाइए मेरे पास से!"

किशोर गया नहीं, ढीठ था। वह सहज भाव से बोला, "जाना तो मुझे होगा परन्तु अभियुक्त के रूप में, क्या अपना अभियोग समझ लेना मेरे लिए उचित न होगा? हँसती हुई आईं, तो बार-बार कहती आईं कि मैं भी नायिका बनती। अपने नायक के साथ मैं भी कोई सुन्दर अभिनय करने में समर्थ बनती।"

"ओह! आप अब भी नहीं समझ रहे हैं कि मैं बात करने की स्थिति में नहीं हूँ। मैं आपसे क्षमा माँगती हूँ।" शुभदा ने कहा और फिर मुँह फेर लिया।

किन्तु किशोर सहज में छोड़ने वाला नहीं था। मानो उसने शुभदा की कमज़ोरी पकड़ ली हो। फिर भी वह कितनी रहस्यमय है, यह जानने की उसे उत्सुकता थी। वह कुर्सी पर बैठ गया और अपने-आप बोला, "अहा! आज भी आसमान में बादल छाए हैं। ठण्डी हवा चल रही है। शुभदाजी, आओ, कुछ देर के लिए बाग में चलें। मैंने कुछ असंगत कहा हो, तो क्षमा करें। लगता है, सिनेमा में कोई बात मुँह से निकली तो उसी पर···हाँ, मैं अवरुद्ध और अनजान तो हूँ ही।" उसने कहा, "आज माँ का पत्र आया है। मुझे बुलाया है। बोलो, तुम्हें क्या कहना है?"

शुभदा ने मुँह उठाकर कहा, "अच्छा तो है, माँ ने यदि बुलाया है

तो आपको यहाँ से जाना ही पड़ेगा ?"

अवसर पाते ही किशोर बोला, "किन्तु मैं अब स्वर्ग से नरक में नहीं जाना चाहता।"

तड़ित बनकर शुभदा ने कहा, "उस स्वर्ग का क्या मोल कि जो अस्थायी हो ! जिसका न सिर हो, न पैर हो।"

लेकिन किशोर ने कहा, "स्वर्ग और नरक की कल्पना तो अपने मन पर आश्रित है, शुभदाजी !"

शुभदा ने कहा, "जी, यह भुलावा है। कह सकती हूँ कि आपके मन की दुर्बलता है। दिखता है, निर्लज्ज आदमी पाप को भी पुण्य मानता है।"

इस समय, निश्चय ही, बाहर आसमान में काले-काले बादल उठ आए थे, ठण्डी हवा चल रही थी। उस हवा से कमरे की वस्तुएँ भी हिल रही थीं। किन्तु किशोर के मुँह पर पसीना था। वह कुरते की जेब से रुमाल निकालकर बार-बार अपने मुँह का पसीना पोंछ रहा था। उसी अवस्था में वह बोला, "तुमने प्रातः क्या कहा था, उसे याद करो, शुभदादेवी !"

शुभदा ने जैसे क्षुब्ध बनकर कहा, "महाशय, मैं क्या याद करूँ ? आप देखते हैं कि मैं इस समय दुःखी हूँ। अपने-आप में कायर और हीन बनी हूँ। आप समझते हैं कि मेरे पास कुछ है ?···क्या है मेरे पास ? अब तो मेरा अपनापन भी मेरे पास नहीं है !"

किशोर बोला, "शुभदा, मैंने सुन लिया कि इसी डाक से जयन्त-बाबू का पत्र आया है। ज़रूर, उसी में कुछ लिखा है। मैंने यह सत्य, जीवन के प्रथम चरण में ही समझ लिया कि पुरुष हमेशा से इस नारी पर शासन करता आया है। यह क्रूर और मदान्ध इन्सान··।"

शुभदा ने कहा, "लेकिन इस नारी को ठौर कहाँ है, भला यह नारी किस अवस्था में स्वतन्त्र है ? आगे क्या व्यवस्था हो, मैं नहीं जानती, परन्तु अभी तो यही अवस्था है कि नारी को इस नर की इच्छा के अनुरूप चलना है।"

किशोर ने ज़मीन पर पैर पटका और कहा, "नहीं, नहीं, आज का युग पुकार कर रहा है, चेतना और जागरण का मन्त्र दे रहा है कि नारी

उठे और अपना स्वत्व पहचाने !" वह बोला, "शुभदादेवी, वास्तव में, तुमने अपना महत्व नहीं समझा। तनिक घर के बाहर निकलकर देखो ! दूसरे देशों में जाओ कि कितना प्रकाश है, नारी कितनी चेतना से भरी और मननशील है ! जीवन का ऐसा कौन-सा क्षेत्र है कि जिसमें नारी अग्रणी नहीं, कार्यरत नहीं ! और तुम हो कि आज उसी पुराने स्वर में कराहती हो और कहती हो कि मैं भाग्यहीना हूं।"

खिन्न भाव से शुभदा ने अपने सूखे होंठों पर जीभ फेरी और कहा, "किशोरबाबू, आप मेरे मन की आग को न कुरेदें। मैं यह भुलाना नहीं चाहती कि आप इस घर के पुराने सम्बन्धी हैं। मुझे ऐसी सीख न दें कि मैं अपने साथ तो भूल कर ही बैठूं, परन्तु अपने बच्चों का अधिकार भी छिना दूं। मैं इस संसार में कुछ पाने की यदि इच्छा करती हूँ, तो केवल एक बात, बच्चों का अधिकार···इन बच्चों का बाप···"

किशोर ने फिर अपने मुँह का पसीना पोंछा और कहा, "हाँ, हाँ यह अधिकार तो तुम्हारा सुरक्षित है। तुम्हें पाना है। इस देश की नारी की यह पुरानी आस्था है।"

शुभदा बोली, "पर यह भाव मैं खो चुकी हूँ। प्रातः सिनेमा-हाल में बैठे हुए आपने जिस तरह मेरा हाथ दबाया और अपने मन का उच्छ्‌वास प्रगट किया, उसे क्या मैं भूल सकती हूँ ? पर दोष मेरा है। मैं स्वयं अपने पथ से विचलित बनी हूँ। मैं यदि आपका पत्र पाकर पति के घर से न आती तो क्या आपसे इतना सुनने का अवसर पा सकती थी ? सोचा होगा न आपने, यह शुभदा आकांक्षिणी है, भूखी है, अपना सहारा खोकर अन्य सहारे की तलाश में जाएगी।"

"ओह, शुभदादेवी ! तुमने बहुत कुछ सोचा ! बहुत कह दिया !"

शुभदा ने कहा, "किशोरबाबू, कहा न मैंने, यह मेरी विवशता की बात है कि मैं आपको अपना अतिथि पाती हूँ। आपने अब तक अपने भ्रमण की जितनी कथाएँ सुनाईं, मैं अब सोचती हूँ कि उनका अर्थ ही केवल यह था कि नारी अपने जीवन को खेल मानती है। वह जीवन में खेलना पसन्द करती है। इस देश की परम्परा जीर्ण है, जिसे मानकर यहाँ की नारी स्वतः ही अँधेरे में पड़ी सिसक रही है, यही न ! यह है आपकी शिक्षा !" किशोर मौन रहा। वह शुभदा के मुँह पर आया क्षोभ

देखता रहा।

तभी शुभदा ने कहा, "ऐसी अवस्था में दुराचार क्या है ? नारी की नग्नता क्या है ? पुरुष उच्छृङ्खल और नग्न है, यह कथा तो मैं हमेशा से सुनती आई हूँ। आज आपका जो रूप मैंने देखा, मन की ज़हरीली भावना को पाया, तो मैं उसे भी मनुष्य की उद्दण्डता और विवेकहीनता का रूप समझ पाती हूँ। मेरे पति ने एक बार नहीं, अनेक बार मुझे सुनाया कि आचरणहीन मनुष्य देर तक जीवित नहीं रह सकता। वह समाज में जी नहीं सकता। आपके अनुरूप, यूरोप का इन्सान प्रगति अवश्य कर रहा है, परन्तु वह धर्महीन बनकर और नैतिक पतन करके, कब तक जीवित रहेगा, मैं नहीं सोच पाती।"

उसी समय किशोर कुर्सी पर पीछे को पीठ लगाकर बोला, "तो तुम्हारा भी यह खयाल है। इस देश में बहुत-से आदमियों का है। परन्तु देवीजी, इस देश का नागरिक धर्म-कर्म की बातें तो सदियों से करता आया है। बताओ, इसे मिला क्या है ! क्या पाया है, हमारे देश ने ! केवल भुखमरी, पराधीनता और अयाचित भावना ! कहा सन्तुलन है, कहाँ समता है, हमारे और उन देशों के बीच में ! मानो आकाश-पाताल का अन्तर है। एकदेश का समाज सजग है, निर्भय है और प्रगति के पथ पर अग्रसर है और एक है यह देश, अन्धकार में पड़ा हुआ·· सिसकता हुआ···जीवन की कठोर साँसें लेता हुआ···" वह कुर्सी के हत्थे पर हाथ मारकर बोला, "मुझे खेद है कि मेरा कहा तुम्हें रुचिकर नहीं लगा। और मेरा इतना कहने का केवल एक ही कारण था, वही आधार भी था। तुमने अपने पत्रों में सदा ही कहा कि तुम दुःखी हो। तुम जीवन के अंधकार में डाल दी गई हो। और चाहे मैंने यह समझने में भूल की हो, लेकिन मैंने सदा ही तुम्हें अपने समीप पाया। हो सकता है कि यह केवल मेरी भावना हो, जो प्रायः धोखा देती है, बेकार सिद्ध होती है। सचमुच, वही आज मैं पा सका हूँ।"

अतिशय क्षुब्ध भाव में शुभदा ने कहा, "किशोरजी, निःसन्देह, भूल मेरी थी। आपने मेरे पत्र सुरक्षित रखे हैं, यह जानकर सुखी हूँ। पर भला क्यों ? किसलिए ? क्या मेरा प्रदर्शन करने के लिए ? मैंने स्वयं अपना तमाशा बनाया है। आपने आज के चित्र में नायिका का नख-शिख

देखा, अभिनय देखा, परन्तु मैंने देखा वह दृश्य कि जिसमें आपकी मन-पसंद नायिका स्वयं अपनी भूल से, इच्छा से, मानस में भरे दम्भ से, समाज की दृष्टि में तमाशा बनी थी। वह अपने सुन्दर और भले पति को छोड़ अपने चहेते के साथ···"

एकाएक किशोर चीख उठा, "शुभदा···"

उस अवस्था में ही शुभदा की आँखें भर आईं। वे उसके गालों पर तैर गईं। किन्तु उसने उन्हें नहीं पोंछा। अपितु उसने कहा, "किशोर-बाबू, आपकी आभारी हूँ कि मुझे एक अच्छा चित्र दिखाया। चाहे आपका उद्देश्य कुछ और रहा हो, जिसे मैंने समझ लिया। मैं एक सप्ताह से इस बात को लिये थी कि आपका मन स्वतः ही बुद्धि का साथ छोड़ बैठा है। निश्चय ही कल रात आप मेरे कमरे की तरफ आए थे। रामसुक्खा न बोलता, तो आप···हे राम ! भला बताइये तो, वह चौकी-दारी करता रामसुक्खा आपको देख पाता, अँधेरे में आपके सिर पर लाठी मार देता, तो क्या होता ? अपराध तो उसका होता नहीं, पर आपका अन्त हो जाता। उस दिन बाग में आप जिस तीखी दृष्टि से मुझे देख रहे थे, मेरे बाल, आँखें और होंठों की प्रशंसा कर रहे थे तो बताइये, आप सरीखे सम्भ्रान्त के लिए क्या शोभनीय था ? और यह सब किस कारण ? किस अर्थ के लिए ? मेरे इस शरीर को पाने ही के लिए न ! जिसमें अब उल्लास नहीं, सरस भावना नहीं, प्रेम नाम के बोल पर समर्पित होने की शक्ति नहीं, तो भला आप इससे क्या पाएँगे ! आप सोचते होंगे कि शुभदा की छाती के नीचे यौवन है, मोहजाल या माया-जाल है। पर मैं साफ कहती हूँ, अपनी छाती खोलकर दिखा सकती हूँ कि उसमें बच्चों के लिए दूध हो सकता है और कुछ नहीं। यह मेरा पार्थिव शरीर जो क्षणिक है, स्वयं निर्मम है, इस पर मेरे बच्चों के पिता का तो अधिकार हो सकता है, किसी और का नहीं।"

देर की रुकी हुई साँस छोड़कर किशोर बोला, "मैं समझ गया कि तुम्हारा मन भ्रामक है, हवा के झूले पर झूल रहा है। उसमें कोई स्थिरता नहीं है।"

विषादभरे ढंग से शुभदा मुस्कराई और बोली, "सचमुच ! मेरा मन भ्रमा गया है। मैंने जागते में एक ऐसे स्वप्न की कल्पना की जिसका

कोई अर्थ नहीं था। आपके मन की महत्वाकांक्षा तो समझ में आती है, पर मैंने जो कुछ सोचा, उसकी रूपरेखा आज तक नहीं दिखाई दी। मैं तो निरी जड़ और पत्थर बन गई। निःसन्देह, मैं भूल गई कि आप जीवन में दो वस्तुएँ चाहते हैं—धन और नारी।''

किशोर ने कुर्सी का हत्था ज़ोर से पकड़ लिया और कहा, ''शुभदा, तुम्हें आज क्या हो गया है ! क्या सचमुच···''

शुभदा ने तुरन्त ही कहा, ''किशोरबाबू, मेरा सिर फिर गया है। मैं पागल हो जाना चाहती हूँ। चाहें तो आप भी मेरे मुँह पर ज़ोर का तमाचा मार दें। आप अपने लिए क्या धारणा निश्चित करते हैं, यह आप जानें, पर जिस धन को और नारी को आप इतना महत्व देते हैं, मेरे बच्चों का पिता उसे नगण्य मानता है। यही उसकी सार्थकता है। आप तो उसके समक्ष कुछ नहीं हैं। लीजिये, यह पत्र पढ़िये। फिर अपने को समझिये।''

किशोर ने पत्र ले लिया और पढ़ा। उसका एक पैराग्राफ था, ''आपकी पुत्री मेरी पत्नी है, दो बच्चों की माँ है। इसलिए भले ही मैं उसका आदर न करूँ, परन्तु वह नारी है, सुसंस्कृत है तो मुझे उसका सम्मान करना ही होगा। नारी को ठगकर, उसे हीन समझकर मैं जीवित नहीं रह सकता। अपने इस पार्थिव शरीर को देर तक नहीं रख सकता। ऐसी अवस्था में मेरे विचार मर जाएँगे। मेरी आत्मा धू-धू करके जलती हुई चिता में राख का ढेर हो जाएगी। इसलिए मैंने निश्चय किया है कि मेरे पास जो भौतिक सम्पदा है, यह मेरी नहीं, आपकी पुत्री की है। उसी का अधिकार है। उसकी रजिस्ट्री आपकी पुत्री के पास भेज दूँगा। मैं देखता हूँ कि जिस गाँव में पैदा हुआ, पालित-पोषित हुआ, वहीं के समाज में आपकी पुत्री के कारण मैं लोक-चर्चा का विषय बना हूँ। मैं प्रायः सुनता हूँ, लोग प्रश्न करते हैं कि आखिर शुभदा क्यों घर से गई ? इस अवस्था में क्यों गई, भला मैं क्या उत्तर दूँ। यह तो सत्य है कि समाज के कुछ नियम हैं, परम्पराएँ हैं, वे पुरुष और नारी के लिए समान रूप से हैं, इसलिए घरू-जीवन में, अपनी दाम्पत्य अवस्था में, पुरुष और स्त्री एक उत्तरदायित्व लेकर चलते हैं, उसे निभाते हैं। वे दोनों प्रेमी-प्रेमिका का रूप धारण नहीं करते, अपितु सुसंस्कृत

ग्रौर सांस्कृतिक बनकर जीवन की लीक पर चलते हैं; उस अवस्था में ही वे समाज को दया, ममता ग्रौर समर्पण का पाठ भी प्रदान करते हैं। अतएव जिन त्यागमयी भावनाग्रों पर यह समाज का जीवन टिका है, उसका मूल स्रोत नारी है, पत्नी है ग्रौर माँ है। पुरुष उसका सहायक मात्र है, प्रोत्साहन देने वाला है।''

उसी पत्र में जयन्त ने ग्रागे लिखा, ''ग्रापकी पुत्री धनिक परिवार में पैदा हुई है, पाली-पोसी गई है; इसलिए उसकी ग्राकांक्षाएँ ग्रसीमित हैं, ग्रपरिपक्व भी हैं। मैंने सदा उन्हें देखा ग्रौर भुला दिया। ग्रापके सम्बन्धी कोई किशोरबाबू हैं, शुभदा के पास उनके पत्र ग्राते हैं। निश्चय ही, उन पत्रों में वे बातें होंगी जिनका इस धरती से ग्रधिक सम्बन्ध नहीं, पत्नी से नहीं, बहिन से नहीं, माँ से नहीं। तब किससे? यह बताना मेरे लिए सुसंगत नहीं। परन्तु मेरा खयाल है, शुभदा ग्रक्षत है, यही रहेगी। पति उसकी रक्षा नहीं कर सकता, तो उसे ग्रन्धकार में जाने से उसकी सन्तानें रोकेंगी; यह मेरा विश्वास है। शुभदा भले ही ग्रच्छी पत्नी न बने परन्तु योग्य माँ बने, यही मेरी ग्राकांक्षा है। बच्चे ग्रपनी माँ को कुलटा या दुराचारिणी न कहें, मेरी यही एक ग्रभिलाषा है!''

किशोर ने पत्र लौटा दिया ग्रौर कहा, ''यदि मैं इस जयन्त को पाता तो गोली मार देता। वह पागल है।''

ग्रपनी वे ग्रश्रुपूर्ण ग्राँखें ग्राधी मींचकर शुभदा बोली, ''जी! ग्रौर ग्रौर कर ही क्या सकते थे, ग्राप!''

किशोर खड़ा हो गया ग्रौर बोला, ''मैं भ्रम में था, मूर्ख बना था।''

शुभदा ने कहा, ''निश्चय ही ग्राप मूर्ख थे।'' वह पलंग से उठ बैठी ग्रौर बोली, ''मेरे हाथों के नाखून तेज़ होते तो मैं ग्रापका मुँह नोच लेती।''

बात सुनी तो किशोर दाँत भींचकर रह गया। वह तेज़ी के साथ कमरे से बाहर चला गया।

उसी समय द्वारिकानाथ कमरे में ग्राये ग्रौर गम्भीर स्वर में बोले, ''शुभदा, पत्र पढ़ लिया?''

शुभदा ने कहा, ''जी।''

द्वारिकानाथ ने कहा, "अफसोस है, तुमने मरा मुंह काला कर दिया, उस जयन्त ने तुम्हारे मुंह पर तो तमाचा मारा ही, पर मेरे मुंह पर भी स्याही फेर दी।" यह कहते हुए उनमें कम्पन उठा। उनका भारी-भरकम शरीर हिलने लगा। आँखों में लाल डोरे पड़ गये और चौड़ा माथा सिलवटों से भर गया।

यह देख शुभदा आगे बढ़ी और पिता के पैरों में बैठकर बोली, "मैं अपराधिनी हूँ, मुझे मार दो पिताजी!"

लेकिन द्वारिकानाथ ने शुभदा को ठुकरा दिया और उसकी ओर से मुंह फेरकर कहा, "अरी दुष्टा! तुझे इसलिए पाला था मैंने? तुझे बेटी नहीं समझा, बेटा समझा था।"

अपने कमरे में बैठी हुई नारायणी को पति की आवाज़ सुनाई दी। वह स्वर नौकरों ने भी सुन लिया था। यह सबको पता था कि जब मालिक क्रोध में आते हैं तो उस विशाल भवन का वातावरण बदल जाता है। फिर वहाँ हर्ष नहीं रहता, विषाद का वातावरण छा जाता है। फलस्वरूप जब नारायणी उस कमरे में आई तो शुभदा को सिर झुकाये बैठी देख, उसने कहा, "यह क्या है?" उसने पति से कहा, "देखती हूँ, जीवनभर भूल-पर-भूल करते जाओगे। अब तुम्हारा इस शुभदा पर अधिकार नहीं है। यह दूसरे की वस्तु है।"

खिन्न भाव में द्वारिकानाथ ने कहा,"नहीं,नहीं, मैंने इस कुलटा को पैदा किया है, मैं ही इसका अन्त कर दूंगा। मैं पिस्तौल की एक गोली से मार दूंगा।"

नारायणी ने एकाएक अपना सिर पकड़कर कहा, "ओह, मेरे परमात्मा!" उसने कहा, "अब तुमको इसका भी अधिकार नहीं। तुम यहाँ से चलो। घर सुन रहा है। ये नौकर...अपनी कमज़ोरी का बखान करना क्या अच्छा है!"

द्वारिकानाथ ने फिर कुछ नहीं कहा। वह लौट पड़े और जूते की खट-खट करते हुए बड़े बैठकखाने में पहुँच गये। उनके जाते ही नारायणी ने शुभदा के सिर पर हाथ रखा और कहा, "उठ, बेटी! आज यह भी होना था। जिस बाप ने आज तक तुझे कुछ नहीं कहा, उसने भी आज कह दिया। और यह नहीं सोचा, जो बात आज चली है,

जिसकी जड़ फैली है, उस विष-बेल को लगाना इन्हीं का काम था। बाप ने ही बेटी को इतना सिर पर चढ़ा लिया है।"

छत्तीस

अगले दिन की प्रातः बैरिस्टर किशोर उस घर से प्रस्थान क गया। किन्तु उस विशाल भवन का वातावरण जब एक दिन पू विषाक्त बना, तो वह दूसरे दिन और अधिक चिन्तनीय हो गया पिछली रात में ही शुभदा को बुखार आया, तो वह प्रातः तक इतन तीव्र बना कि वह प्रलाप करने लगी। माता-पिता के सिर पर नई चिन्त आ गई। उसी दिन जयन्त के पास आदमी भेज दिया गया।

किन्तु जयन्त उस समय घर पर नहीं था। वह जैसे कुछ समय लिए अज्ञात और अनभिज्ञ रहना चाहता था। उसने स्वतः ही अपना ग छोड़ दिया था। उसके पड़ौसियों ने समझा था कि वह गाँव से अंज के पास जाएगा, परन्तु वह वहाँ भी नहीं गया। कहीं दूर गया। उ दिनों अपने सभी परिचितों से अनभिज्ञ रहना उसे रुचिकर था। क्यों शुभदा के जाने पर, अनायास, जिस प्रकार की बातें उसे सुनाई गईं, भले ही, सहानुभूति की सूचक थीं, परन्तु उन्हीं से जयन्त पीड़ित बनत विषम बन जाता। स्थिति यह थी कि वह शुभदा के प्रति जो कु सुनता, उससे भी भय खाता, अपने तईं अशुभ मानता। शुभदा उस पत्नी थी, अतएव, उसी के लिए अशोभनीय बातें सुनना, उसे सुखक नहीं लगता था। फिर भी, यह उसने एकान्तरूप से स्वीकार किया शुभदा ने सामाजिक अपराध किया है। वह मन की दुर्बल है। अवि वाहित अवस्था में उसने जिस युवक को पागल बनने और मर जाने लिए बाध्य किया, वह भले ही, उसका अनजाने में किया गया कर्म ह परन्तु विवाहित बनकर, दो बच्चों की माँ होकर भी, वह दूसरे पु का चिन्तन करे, यह नैतिक दृष्टि से न्याय नहीं कहा जा सकता थ

इस प्रसंग में, जयन्त ने अपने-आपको भी दोषी पाया। उसके मन का चोर बार-बार सिर उठाता और उसको सम्बोधित करता, पाप तुम्हारा भी था। तुमने भी अंजना का चिन्तन किया। शुभदा के प्रति जो उपेक्षा एक बार तुम्हारे मन में आकर बैठी, तो वह सदा ही फलती-फूलती रही। तुमने पत्नी के प्रति उदार पक्ष नहीं अपनाया। दुर्बल नारी को तुमने जिस प्रकार का दण्ड दिया, वह क्या नैतिक दृष्टि से ग्राह्य था! अतएव, उस अवस्था में जयन्त, बरबस ही, कोलाहल से भर गया। उसका मानसिक सन्तुलन क्षुब्ध हो चुका था। घर से चलते समय उसने दवाखाने का काम कम्पाउण्डर को सौंप दिया और घर का भार हरखू नौकर पर छोड़ दिया। वह कब लौटेगा, यह भी उसने किसी को निश्चित रूप से नहीं बताया।

यों घर से चलकर, पर्यटन में, जयन्त दूर-दूर तक गया। उसके मन में बार-बार आया कि वह संन्यासी बन जाए, परन्तु इस विचार पर भी वह स्थिर नहीं था। वह सोचता, संन्यासी बनना आज के युग में बुद्धि की बात नहीं है। समाज कुछ काम चाहता है। संन्यास लेकर योग का पाठ पढ़ना तो अपना स्वार्थ है, आत्मा का स्वार्थ! लेकिन यह मनुष्य तो सामाजिक प्राणी है, समाज की वस्तु है, तब क्यों न इसे समाज के चरणों में अर्पित किया जाए। फलस्वरूप, जयन्त उस मार्ग से विमुख था। उसे यह भी अच्छा नहीं लगता था कि अंजना भिक्षुणी बनी रहे, जीवन की शाश्वत माँग का अनादर करती रहे। उसे जीवन के सभी अंगों का अध्ययन करना चाहिए। मानसिक रूप से वह नीरस बन गई है, उदास हो गई है। ऐसे कब तक वह अंजना जीवित रहेगी। देर तक नहीं। जयन्त कहता, अंजना जिस आदर्श पर टिकी है, वह दुर्बल है, शंकित है। वह कहाँ ठोकर खाये, कहाँ फिसले, जीवन की किस धारा में उसका प्राण तिरोहित हो जाए, इसका उसे क्या सहज में पता चल सकता है—कदापि नहीं!

फलस्वरूप, अपने मन में उठती हुई भावना को लिये ही जयन्त जब घर से चला, तो अंजना के पास नहीं गया। वह एक अन्य पहाड़ पर गया। वह स्थान समुद्र-तल से कई हज़ार फुट ऊँचा था। जयन्त अभी एक सप्ताह ही उस स्थान पर रह सका था कि तभी वहाँ पर भुखमरी

ग्रौर बीमारी का प्रकोप फैला। निःसन्देह जयन्त वहाँ मन की करने पहुँचा था। उसके पुराने मित्र ग्रौर कालेज के साथी ने उसका ग्रावाहन किया था। वह व्यक्ति उस क्षेत्र का प्रसिद्ध व्यवसायी था। वहाँ पहुँचते ही, जयन्त का यथोचित सत्कार किया गया था।

किन्तु जब जयन्त ने उस क्षेत्र की ग्रवस्था देखी, तो उसका हृदय कोलाहल से पूरित बन गया। उसे लगा कि इस सजे हुए ग्रौर मांगलिक कल्पनाग्रों से पूरित संसार में इतनी विषमता क्यों······मानव का यह हाहाकार क्यों ? फलस्वरूप, वह ग्रपने मन ग्रौर मस्तिष्क की ग्रवस्था को भूल, समाज के उस वैषम्य पर टिक गया ग्रौर वह सब ग्रोर से ग्राँखें मूंद उस पीड़ित मानव-समाज के चरणों में समर्पित हो गया। इसका परिणाम यह हुग्रा कि जयन्त न शुभदा की बात पर टिका, न ग्रपने बच्चों की याद कर सका क्योंकि प्रातः से रात तक वह कार्यरत रहता। जब बिस्तर पर पड़ता, तो थका हुग्रा तुरन्त सो जाता। उस क्षेत्र में जयन्त ने मुर्दे उठाए, भूखों को भोजन बाँटा ग्रौर रोगियों को ग्रौषधि दी। वह डॉक्टर तो था ही, परन्तु उस समाज का ग्रन्नदाता भी बन गया। उस समाज का सेवक···भगवान···

विवाह से पूर्व जयन्त ने ग्रनेक बार कल्पना की थी कि वह मुक्त-भाव से जनता-जनार्दन का भक्त बनेगा। परन्तु परिस्थितियों के ढांचे में वह ऐसा ढला कि दूसरी ग्रोर मुड़ गया। लेकिन जब से वह कैप्टेन रमाकान्त के ग्रस्पताल से लौटा, डॉक्टर के रूप में वहाँ कुछ समय बिता ग्राया, तो उसके मनःप्रदेश में फिर कोलाहल हुग्रा, जैसे उसे ग्रपरोक्ष भाव से उद्बोधन प्राप्त हुग्रा कि वह ग्रपने संकल्प को पूरा करे। फलस्वरूप, ग्रवसर पाकर, उस पर्वतीय स्थान में ग्राते ही, प्रकृति के उस विराट रूप को देखकर, जयन्त के मन में फिर भूचाल उठा, मानो किसी दैवी शक्ति ने उसे संकेत दिया हो, हाँ, जयन्त ! तुमने सांसारिक जीवन का भी उपभोग किया, नारी का सामीप्य पाया, ग्रपने बच्चों को प्यार किया। परन्तु पीड़ित समाज के ये बच्चे, ये नारियाँ, ये पुरुष भी किसी का ग्राभार पाना चाहते हैं। उन्हें सहयोग मिले तो यह समाज भी जीवन पाना चाहता है। सृष्टि का मूर्त्त रूप···

ग्रवसर की बात थी, एक संध्या में जब जयन्तकुमार इस प्रकार की

भावना से अभिप्रेत था, मानसिक उद्वेलन में फँसा था, तभी उसका मित्र समीप आया और बोला, "जयन्तबाबू, यहाँ का समाज आपका ऋणी है। आपने बहुत सहयोग दिया, आपने इतना श्रम किया। आपने अपना पैसा भी खर्च किया।"

उस अप्रत्याशित बात को सुन, जयन्त ने कहा, "पैसा नगण्य है, सुधीरबाबू! यह मानव-समाज ममता चाहता है, प्यार चाहता है।"

सुधीरबाबू ने कहा, "निःसन्देह, यह अमर सत्य है। यहाँ का समाज इस बात की चर्चा करता है कि आपने पीड़ितों को जो सहयोग दिया, उसमें पैसे का स्थानीय योग होना चाहिए था। सचमुच, आपने सबको आभारी किया।"

जयन्त ने हँसकर कहा, "मैं डॉक्टर हूँ तो किसी धनिक का उपचार करके वह धन प्राप्त कर सकता हूँ।"

सुधीरबाबू ने हँस दिया और कहा, "धनिक अपने ऊपर अधिक पैसा खर्च करता है।"

जयन्त ने नाराज़ होकर कहा, "वही पैसे का उपयोग करता है। वह भूल जाता है कि पैसा उसका नहीं, समाज का है। परन्तु इतना सोचना तो दूर, वह पैसा जिन श्रमिकों के श्रम से उपार्जित किया जाता है, धनिक को भूखा और नंगा देखकर किलकिलाता है, अट्टहास करता है।"

"ओह, आपके मन में तो आग है। ज़हरीला धुआँ घुट रहा है।"

जयन्त ने कहा, "यह तो होगा ही। मैंने समाज की पीड़ा को, व्यथा को, आँखों से देखा है। भुखमरी की कराह को सुना है।"

सुधीरबाबू ने कहा, "आपका मिशन पवित्र है, जीवन का लक्ष्य ऊँचा है। निःसन्देह, ऐसा व्यक्ति पुण्यतीर्थ है। आपने कई मास का समय दिया। यहाँ आकर अपने बच्चों को भी स्मरण नहीं किया। देखिए तो, आपका रूप भी कैसा बन गया है! यह दाढ़ी, सिर के बढ़े हुए बाल···"

सहजभाव से जयन्त मुस्करा दिया, "समय नहीं मिला। यहाँ आया, तो भगवान ने अधिक काम दे दिया।"

सुधीरबाबू ने कहा, "आपने अपने स्वास्थ्य का भी ध्यान नहीं रखा। यहाँ का समाज आपका सार्वजनिक रूप से अभिनन्दन करने की योजना

बना रहा है।

जयन्त ने कहा, "इसकी आवश्यकता नहीं है। मेरा जो काम
उसका सम्पादन मैंने किया। मैं नेता या विशिष्ट व्यक्ति नहीं हूँ।"

सुधीरबाबू ने सुना और सहज भाव से मुस्करा दिया।

उसी दिन की संध्या में जयन्त को प्रोफेसर अतुल का पत्र मिल
शुभदा बीमार है। वह अपने पिता के घर है। उसका रोग असाध्य
जीवन के कुछ दिन शेष रह गए हैं। उसी पत्र में लिखा था कि अं
स्वत: शुभदा की सेवा में लगी है।

अपने पत्र में प्रोफेसर ने लिखा, "तुम्हारे जीवन का कोई पुण्य
तो हो, परन्तु तुमने यह पाप ज़रूर किया कि शुभदा की सुन्दर काय
मिट्टी का ढेर बना दिया। तुम बाहर न जाते, यों उससे दूर न होते
निश्चय ही, उसके मन पर ऐसे पश्चात्ताप का पहाड़ न टूटता।
तुमने उसका दिल तोड़ दिया है। तुमने अपनी सड़ी हुई दुर्भावन
शुभदा के समक्ष व्यक्त कर दिया कि तुम उससे घृणा करते हो। आ
क्यों? बोलो, तुमने नई बात क्या की? पुरानी और जर्जरित पुरुष
अहं भावना ही इस नारी के समक्ष प्रस्तुत कर दी। मैं समझ
तुम्हारी शिक्षा-दीक्षा और नवयुग की प्रेरणा पुराने संस्कारों पर
नहीं पा सकी। तुम नहीं समझ सके, नारी के शरीर की भूख
है, मन की भूख और। निश्चय ही, तुमने समझा होगा कि यह दो
की माँ बनी हुई शुभदा अब भी शरीर की भूखी है, मन की भाव
की सर्जक नहीं है। हाय! आदिपुरुष का यह कैसा रोमांचक ना
प्रदर्शन कर दिया, तुमने!"

प्रात: हुआ और जयन्त उस पर्वतीय स्थान से अपने सभी स
तोड़कर लौट पड़ा। सुधीरबाबू तथा अन्य सहयोगियों ने उसे दो दि
लिए और रोकना चाहा, परन्तु वह नहीं रुका, किसी अवस्था
सहमत नहीं हुआ। तीसरे दिन वह पण्डित द्वारिकानाथ के घर
गया। जयन्त को देखते ही उस बड़े महल में शोर मच गया कि जयन्
आ गये हैं। वह सीधा ही शुभदा के कमरे में पहुँच गया। वहाँ देख
सभी अभिभावक उपस्थित थे। अंजना और प्रोफेसर अतुल बैठे
जयन्त पलंग के पास जाकर शुभदा की ओर झुक गया। वह बोल

देय तिथि	देय तिथि
4.10.80	
13.10.80	

स्तक निश्चित तिथि पर न लौटाने पर 5 पैसे प्रतिदिन
ड देना होगा ।

पुस्तकाध्यक्ष